हिन्दु विजय-युग प्रवर्तक

हो. वे. शेषाद्रि

सुरुचि प्रकाशन
केशव कुञ्ज, नयी दिल्ली – ११००५५

लेखक : हो. वे. शेषाद्रि
मूल कन्नड़ ग्रंथ : युगावतार
अनुवादक : अशोक भण्डारी

प्रकाशक : सुरुचि प्रकाशन
(सुरुचि संस्थान का प्रकाशन विभाग)
देशबन्धु गुप्त मार्ग, झण्डेवाला,
नयी दिल्ली - ११००५५
(दूरभाष - ७५३४६७२)

प्रथम संस्करण : युगाब्द ५१०१ (सन् १९९९)

© सुरुचि प्रकाशन

मूल्य : रु. १००

मुद्रक : अमरनाथ प्रेस प्रा. लि., कीर्तिनगर (टिम्बर मार्केट), नयी दिल्ली.

समर्पण

"जिनकी असामान्य तपस्या और प्रतिभा से
आलोकित मराठी में 'शिव छत्रपति'
महाग्रंथ का निर्माण हुआ है और जिसकी
कथावस्तु तथा शैली के पुण्य प्रसाद के रूप में
यह ग्रंथ भी अवतरित हुआ है उन
आदरणीय ब.मो. पुरन्दरे जी को
यह ग्रन्थ कृतज्ञतापूर्वक समर्पित है।"

शिवराय की कीरत धन्यमयी,

विश्वव्यापी बनकर।

दुष्टसंहार किया खड्ग से,

शिष्टों का परिपालन कर।

हृदगत

मूल कन्नड़ ग्रंथ 'युगावतार' में और इस हिन्दी अनुवाद के 'हिन्दु विजय–युग प्रवर्तक' दोनों में युग शब्द का जो प्रयोग किया हुआ है, उसके सन्दर्भ में दो शब्द।

अपने देश के इतिहास में विगत एक सहस्र वर्ष की कालावधि अत्यंत महत्त्वपूर्ण थी। इस अवधि में अनेकों संदर्भों में हमारे देश का भाग्य, जीवन–मरण की सीमारेखा पर दोलायमान हुआ था। घोर अत्याचारी, आक्रमणकारी एवं उनके साथ साँठगाँठ कर अपनों के विनाश के लिए ही उद्यमरत व आतुर बने देशद्रोही एक ओर तो दूसरी ओर इस भूमि की संस्कृति, स्वराज्य तथा स्वातन्त्र्य के लिए अपने पौरुष–पराक्रम से संघर्ष करनेवाले देशभक्त–वीर। ११९३ ई. में दिल्ली स्थित पृथ्वीराज के हिंदु–सिंहासन के पतन के बाद इन दोनों शक्तियों का संघर्ष अधिकाधिक प्रखर होता गया और विद्रोही शक्ति भी क्रमशः बलवती होती गयी। विजयनगर जैसा 'अविस्मरणीय साम्राज्य' भी कुछ समय के पश्चात् अरिदों के लिए खंडहर बनकर रह गया। तब इस देश का स्वातन्त्र्य–सूर्य मानो सदा के लिए ही अस्तंगत हुआ; ऐसा अनुभव कराने वाला कराल घनांधकार समस्त भारत में फैल गया। परंतु उस अंधकार को चीरने वाली आशा की किरण पश्चिमी घाट पर खड़े सह्याद्रि के गर्भ से प्रस्फुटित हुई। उसने धीरे–धीरे समूचे देश का अंधकार ही मिटा दिया। स्वातंत्र्य–सूर्य फिर से एक बार उन्नत आकाश में प्रखरता से जगमगाने लगा।

यह नकारा नहीं जा सकता कि साधारणतः ख्रिस्त सन ११०० ई. से १८०० ई. तक के उन सात सौ वर्षों के मुसलमानी आक्रांताओं के साथ लगातार संघर्षों में निर्णायक, अंतिम विजय के शिल्पकार छत्रपति शिवाजी ही थे। उन्होंने ही मुसलमान आक्रमणकारियों के साथ एक सहस्र वर्षों तक संघर्ष करते हुए हमारे समाज के पाये सब अनुभव, पाठ आदि को अपने जीवन में उतार कर, परिस्थिति को मात करते खड़े हुए शिवाजी महाराज, उस कालावधि के अत्यंत गुणवंत, नीतिज्ञ राष्ट्रपुरुष थे। इस सत्य को कोई भी झुठला नहीं सकता। इसी प्रकार वे उस संघर्ष–युग के विजय के प्रतीक, विजय–युग के प्रवर्तक थे। ग्रंथ के शीर्षक में आये "युग" शब्द की परिधि यही है।

अब तक अनेक प्रख्यात संशोधकों, ग्रंथकारों ने छत्रपति शिवाजी के बारे में विद्वत्तापूर्ण ग्रंथों का लेखन किया है। हाल में ही अनेक प्रकांड पंडितों के प्रामाणिक ग्रंथ मराठी भाषा में प्रकाशित हुए हैं। उनके द्वारा शिवाजी के जीवन–कार्य पर प्रकाश डालने वाले नये नये, विविध प्रकार के साक्ष्याधार सामने आये हैं। इससे पाठशालाओं में सीखी हुई हमारी अनेक गलत धारणाएं दूर हो गयी हैं। उन सब मूल संशोधकों के कथन या साक्ष्याधारों से अलग, कोई नयी बात यहाँ नहीं है। उन्हीं बातों को एक सूत्र में पिरोकर, इतिहास की पगडंडी थोडी–सी भी न छोड़ते हुए उसे कथा शैली में यहाँ प्रस्तुत किया है। यहाँ लेखक की भूमिका कथाकार की है; शिवा–चरित्र कथा रूप में ही बताया गया है। वही अब मुद्रित किया है; यहाँ 'कथाकार' ही 'लेखक' बन गया है, इतना ही।

इसीलिए मूल कथावस्तु उपलब्ध करा देने वाले उन सब विख्यात विद्वानों को सर्वप्रथम मेरा प्रणाम। विशेषकर, हाल ही में मराठी भाषा में श्री ब.मो. पुरंदरे जी ने अपने २० वर्षों की अथक तपस्या के फलस्वरूप "राजा शिवछत्रपति" नामक एक बृहत्तर ग्रंथ की रचना की है। शिवाजी के व्यक्तित्व की सुगंध की यदि कुछ मात्रा कन्नड़ की इन पंक्तियों में उतरी है, तो वह बहुशः श्री पुरंदरे जी की लेखनी का ही पुण्यप्रसाद है ऐसा कहा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। मैंने महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध इतिहास–व्याख्याता, साहित्याचार्य, महामहोपाध्याय श्री बालशास्त्री हरदास की 'पुण्यश्लोक छत्रपति', तथा सांप्रत में तीन सौ से भी अधिक पृष्ठों की प्रस्तावना लिखकर ग्रंथ रचना का सकल आधार संग्रहित करने वाले आकस्मिक दिवंगत हुए श्री त्र्यं.शं. शेजवलकर द्वारा लिखित उस प्रस्तावना का उपयोग किया है। डॉ. बालकृष्ण, श्री जदुनाथ सरकार आदि इतिहासवेत्ताओं का ऋण भी मुझ पर है।

युगावतार के लेखन के समय मेरे साथ लगातार बैठकर सहायता करनेवाले नामवन्त कवि श्री शिवरामु और पुस्तक छपने के पश्चात् उसका आरम्भ से अन्त तक ध्यानपूर्वक पढ़कर कई अच्छे सुधार करने वाले दक्षिण कन्नड़ जिले के श्री कृष्णैया जी और कर्नाटक के सुप्रसिद्ध लेखक एवं समालोचक श्री एल.एस. शेषगिरिराव, इन तीनों का अतीव आभारी हूँ और कथामाला को सबसे पहले कथामाला के रूप में प्रस्तुत करने का सुअवसर

प्रदान करने वाले 'राष्ट्रोत्थान परिषद्' के प्रमुखों का भी उनके सहयोग के लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

इन सारे तथ्यों को बेंगलूर की प्रबुद्ध जनता के सामने कथामाला के रूप में प्रस्तुत करने का अवसर कर्नाटक के प्रख्यात साहित्य प्रकाशन–संस्थान 'राष्ट्रोत्थान परिषद्' द्वारा प्रदान किया गया था। उन्हीं भाषणों को और थोड़ा–सा परिष्कृत करते हुए 'युगावतार' नाम से कन्नड़ में प्रकाशित किया गया, जिसको तीन–चार बार पुनः मुद्रित भी किया गया। अब उसी का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

बेलगाँव (कर्नाटक) के श्री अशोक भण्डारी ने अत्यन्त श्रद्धा एवं तत्परता के साथ 'युगावतार' का हिन्दीकरण करके दिल्ली के भाषा के अच्छे जानकार, श्री समरेन्द्र को परिष्करण के लिए भेजा गया। इन विद्वानों ने भी काफी परिश्रम उठाकर इस ग्रंथ को प्रकाशन के लिए सिद्ध कर दिया। इन आत्मीय ध्येयवादी, सहकारी मित्रों के प्रति मैं हृदय से आभारी हूँ।

इस कृति द्वारा श्री शिवाजी महाराज के अप्रतिम व्यक्तित्व का अध्ययन और भी गहराई से करने की आसक्ति निर्माण होकर, उस महोज्ज्वल आदर्श की दिशा में चार कदम क्यों न हो, आगे रखने की प्रेरणा हिन्दीभाषी वाचकों में उत्पन्न हुई, तो उससे अधिक कोई दूसरी सार्थकता इन अल्प प्रयत्नों की नहीं होगी।

जिस प्रेरणादायक महापुरुष के स्मरण ने इस प्रथम व्याख्यानमाला की तथा अब इस ग्रंथ रचना की स्फूर्ति दी, उसी के पुण्यस्मृति को ही यह छोटा कृतिपुष्प समर्पित करता हूँ।

बेंगलूर **– हो.वे. शेषाद्रि**

आभार

बेलगाँव (कर्नाटक) के श्री अशोक भण्डारी ने अतीव लगन एवं तत्परता से "युगावतार" का कन्नड़ से हिन्दी में अनुवाद किया। हिन्दी पाठकों के लिए यह अनुपम देन है।

प्रकाशक उनके तथा सहयोग देने वाले सभी बंधुओं के आभारी हैं।

प्रकाशक

अनुक्रमणिका

		पृष्ठ
१.	शिवावतार - स्वराज्य का शुभारंभ	११-४३
२.	प्रथम प्राणसंकट - दैत्यसंहार	४४-८०
३.	पन्हालगढ़ - पावनखिंड	८१-१०७
४.	शाइस्ता खान का शासन - सूरत की लूट	१०८-१२९
५.	जयसिंह की दक्षिण मुहिम - छत्रपति शिवाजी का उत्तर में प्रयाण	१३०-१७७
६.	राज्यविस्तार - राज्याभिषेक	१७८-२१७
७.	दक्षिण दिग्विजय - महाप्रयाण	२१८-२४९
८.	राष्ट्रीय युगावतार - मानवता का अमर आभूषण	२५०-२७९

शिवावतार

— स्वराज्य का शुभारंभ

माँ, उतर आइए,
पूजापीठ से पराक्रम करने!

सामान्यतः १०० वर्ष पूर्व की बात है।

एक आह्लादकारी चांदनी रात में चेन्नई (मद्रास) के दक्षिण तट पर एक भव्य महल खड़ा है। उछलता, बल खाता, नर्तन करता सागर–जल का घन गंभीर स्वर तरंगों पर तैरता आ रहा है। महल के आंगन में एक तेजपुंज तरुण संन्यासी बैठा है। सागर के सुर में अपने स्वरों को संजोते हुए अपनी मधुर आवाज में गा रहा है :

दावा द्रुम दंड पर,
चीता मृगझुंड पर,
भूषन बितुंड पर,
जैसे मृगराज है।
तेज तम अंस पर,
कान्ह जिमि कंस पर,
त्यों म्लेच्छ बंस पर,
शेर शिवराज है।।

जिस प्रकार वनवृक्षों पर दावानल का, हिरनों के झुंड पर चीते का, मत्त हाथियों के समूह पर मृगराज का, घने तिमिर पर सूर्य का, तथा कृष्ण का जिस प्रकार कंस पर अधिकार था, वैसा ही म्लेच्छ वंश पर यह सिंह सदृश्य शिवराज है। इस प्रकार कविता के चरण के बाद चरण झरने के समान उस संन्यासी के मुख से उछल रहे हैं।

यह क्या? स्वामीजी जैसे संन्यासी के मुँह से एक बागी, डकैत, शोषक के लिए ऐसी मुक्त प्रशंसा आ रही है! यह सब सुन रहे उनके शिष्य के मन को बड़ा धक्का लगा। वह अपने उद्वेग को रोक नहीं पाया। उसने स्वामी जी को टोकते हुए पूछ ही डाला, "यह क्या स्वामीजी, वह एक चोर, डाकू, कपटी, खूनी था। गुंडों की टोली बनाकर लूटपाट, दंगा–फसाद करता था। ऐसे व्यक्ति की आप प्रशंसा कर रहे हैं?"

तन्मयता से गा रहे संन्यासी ने अपना गाना रोक दिया। उनका मुख क्रोध से तमतमा उठा। शिष्य की ओर उग्र दृष्टि फेंकते हुए संन्यासी ने मानो अंगारों की ही बरसा कर दी; "छी, शर्म नहीं आती तुझे? वैसे परम तेजस्वी, महापराक्रमी धर्मपुरुष के बारे में कितनी अभद्र बातें कीं तुमने ? जिस समय हमारे धर्म–संस्कृति का नामोनिशान मिटाया जा रहा था, हमारा समूचा समाज ही विनाश के गर्त में डूबा जा रहा था, ऐसे विषम काल में हमारे धर्म एवं समाज का उद्धार करने वाला महान राष्ट्रपुरुष था वह। उनके समान अवतारी पुरुष के बारे में इतनी भद्दी बातें? परकीयों द्वारा तुझे पिलायी गयी गलत इतिहास की घुट्टी का विषफल है यह। तुम्हारे धर्म, संस्कृति, परंपराओं के प्रति तिल मात्र भी आदर, गौरव, सहानुभूति न रखने वाले वे लोग तुम्हें अपने पैरों तले रौंदकर, अपना साम्राज्य खड़ा करने के एकमात्र उद्देश्य से यहाँ आये थे। ऐसे लोगों द्वारा लिखे इतिहास की तुमने आँख मूँदकर केवल तोता रटंती की है। वास्तव में, उस महापुरुष के आगमनार्थ कितने ही साधु–संतों ने गहन तपस्या की थी। म्लेच्छों के कराल मृत्यु–जबड़ों से इस भूमि की संतानों को मुक्त करने वाला वह उद्धारकर्ता कब आयेगा, इसकी वे सब राह देख रहे थे। ऐसे समय में अवतार धारण कर, अधर्म का विनाश कर, धर्मराज्य की स्थापना करने वाला युगपुरुष था वह; प्रत्यक्ष शिवजी का अवतार। हमारे सब प्राचीन महाकाव्यों में, शास्त्रों में वर्णित अभिजात नायक के सकल सद्गुणों का सजीव, साकार रूप, उसके समान श्रेष्ठ, शूर, सत्पुरुष तथा भगवद्भक्त राजा कोई दूसरा दिखाई देता है ? भारत की आत्मचेतना का मूर्त रूप ही था वह! भारत के भव्य भवितव्य का आशादीप था वह!"

शिष्य स्तंभित हुआ। अपने घोर अज्ञान के लिए परितप्त होकर धीमे स्वर में उसने पूछा, "स्वामीजी! यदि वैसा है, तो उस सत्पुरुष के बारे में मुझे और भी जानकारी दीजिए; हमारी विकृत धारणाएं मिटाइए।"

संन्यासी ने अपनी अनुपम भावोत्कट शैली में उस महान विभूति की जीवन–गाथा का वर्णन आरंभ किया। श्रोता के चित्त को ढाई शताब्दियों के के इतिहास की रोमांचकारी घटनाओं का दर्शन होने लगा। घंटों के

बाद घंटे किस प्रकार बीतते गये, किसी को पता नहीं चला.....।

वह युवा संन्यासी कोई ऐरा–गैरा नहीं था। वे आधुनिक भारत के पुनरुत्थान का महान राष्ट्रद्रष्टा स्वामी विवेकानंद ही थे। डॉ. एम. सी. नंजुंडराव उनके वे शिष्य थे, जिन्होंने "वेदांत केसरी" में इस घटना का उल्लेख किया है। श्री भट्टाचार्य जी के घर में जब स्वामी जी का निवास था, उसी समय वह प्रसंग घटित हुआ था। अब स्वामी जी द्वारा ही उन्हीं के भावपुष्पों से अलंकृत महोज्ज्वल जीवन–चित्र व चरित्र किसका है ?

उसके पुण्य नाम का उच्चारण करने के पूर्व हम अपना हृदय पवित्र भावनाओं से भर लें। हम अपने समस्त प्राचीन ऋषि–मुनियों की तपस्या, शूरवीरों की ओजस्विता का स्मरण करें। हम हृदय खोलकर उसमें भक्ति का दीप प्रज्वलित करते हुए उसका नामोद्घोष करने के लिए तत्पर हों, चूँकि, उस महिमामय का रूप ही वैसा है। त्याग, तपस्या, तेजस्विता, ओजस्विता आदि घनीभूत होकर उसके दिव्य रूप में साकार हो उठे थे और इस प्रकार वह प्रेरणाप्रद स्वरूप बन गया था। उसके नामोच्चार से ही इस व्याख्यानमाला के आराध्य देव की प्राण–प्रतिष्ठा होनी है। छत्रपति श्री शिवाजी — यही वह पुनीत पावन नाम है।

छत्रपति शिवाजी के पवित्र, तेजपुंज जीवन का संदर्शन ही हम आज यहाँ करने जा रहे हैं। रंगबिरंगे कल्पना–विलास या उत्प्रेक्षा अलंकार की सहायता के बिना ही, निजी महानता के बलबूते खड़ा होने की क्षमता रखने वाले एक जीवनाश्चर्य की यह सत्यकथा है। निष्पक्ष इतिहास–संशोधकों द्वारा शोध कर, परिष्कृत की हुई वास्तविक घटना ही इस कथन का आधार है। यहाँ पूर्वाग्रहों को स्थान नहीं है। विदेशी, विधर्मी चरित्रकर्ताओं द्वारा प्रस्तुत निराधार तथा खोखले दोषों अथवा विकृत अर्थों के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। आपको यहाँ पर बतायी जा रही हर एक घटना के पीछे प्रमाण के रूप में इतिहासकारों की प्रामाणिक सामग्री साक्षी है। आज भी सह्याद्रि की भूमि पर सीना तानकर खड़े या गिरे–पड़े गढ–किले तथा अगम्य गिरि–गह्वर इसके साक्षी हैं। शिवाजी के अश्वों के टापों की आवाजों को गुंजित करने वाली प्रस्तर–कंदराएँ इसकी साक्षी हैं। असंख्य

स्वदेश–स्वधर्म भक्तों के विजय–विक्रमों की, त्याग–बलिदानों की प्रदीप्त गाथाएं साक्षी हैं। उनके पवित्र शोणित से अभिषिक्त सह्याद्रि के गगनचुंबी गिरि–शिखरों की अविचलता साक्षी है। वहाँ पर प्रवाहमान भागा–भीमा, कृष्णा–कोयना तथा इनसे और दक्षिण की ओर बहने वाली कावेरी, तुंगभद्रा आदि पुण्यमयी, जीवनदायिनी जलधाराएँ इसकी साक्षी हैं। इतना ही नहीं, सह्याद्रि के शीर्ष–वक्ष पर आभायमान उस स्वातंत्र्य–सूर्य की तप्तता में दग्ध वैरियों की अस्थिभस्म भी इसकी साक्षी हैं। उनकी कब्रें तथा पीठ दिखाकर उनके पलायन का दृश्य देखने वाले समरांगण भी इसके साक्षी हैं। इन सभी से महत्त्वपूर्ण साक्षी हैं उस ज्वलंत इतिहास की प्रेरणा–स्रोत, शिवप्रभु की कुलस्वामिनी साक्षात् तुलजा भवानी।

आज यहाँ हम बैठे हैं, यह स्थान भी इसका एक बड़ा साक्षी है, क्योंकि छत्रपति शिवाजी के जीवन–इतिहास के निर्माण में बेंगलूर नगर ने भी एक महत्त्वपूर्ण ही नहीं, अपितु अत्यंत महत्तर भूमिका निभायी है। छत्रपति शिवाजी के अंतःकरण में उनके जीवनध्येय का सुस्पष्ट चित्र अंकित करने की महान भूमिका इस बेंगलूर ने ही निभायी है। उनके अंतर्मन में "हिंदवी स्वराज्य" का बीजारोपण तथा उसे पूर्ण आकार यहीं पर प्राप्त हुआ।

..... २ .....

शिवाजी को उनके महान जीवनकार्य की प्रेरणा उनके जन्म से ही स्फुरित हुई होगी। शिवा के गर्भ में रहते ही माँ जीजाबाई के मन में सामान्य तौर पर उठी गर्भिणी की आकांक्षाओं की उर्मियाँ भी उसी प्रकार की थीं। सुखशय्या, सुगंधित द्रव्य, विहार, विलास, रुचिकर खानपान आदि में से उसने कुछ भी नहीं चाहा था। गिरिदुर्गों का आरोहण करने की आकांक्षा उनकी रहती थी। युद्धकवच धारण कर, हाथों में शूल–खड्ग पकड़कर समरांगण पर प्रयाण करना चाहिए, ऐसा उनको लगता था। छत्र–चमर सहित स्वर्ण सिंहासन पर विराजमान होने का उनका मन रहता था। सबसे अति अद्भुत याने शस्त्रधारिणी–व्याघ्रवाहिनी बनकर संचार करते रहने की आकांक्षा उनके हृदय में बलवती बनती गयी।

साक्षात् दुर्गा के समान! उदर में शिवशक्ति अवतरित होने के समय उस माता की और कौन सी आकांक्षाएं हो सकती थीं ?

१६३० ई. की १६ फरवरी को शिवनेरी किले में शिवा का जन्म हुआ। शके १५५१ शुक्ल नाम संवत्सर फाल्गुन वद्य तृतीया की तिथि हिंदुभूमि के इतिहास में ही अमृत घटिका सिद्ध हुई। जीजामाता के वक्ष से उमड़ रही वात्सल्य की धाराओं के साथ–साथ उनकी तेजस्वी वाणी से प्रवाहित होने वाले धर्मरस, वीररस का आकंठ पान करते–करते बड़ा होता गया वीर शिवा! दिनों–दिन पेट तथा घुटनों के बल पर आगे खिसकते–सरकते वह रेंगने लगा। उसने घर की दहलीज पार की। कल इसी तरह अपना पुत्र असंख्य ग्राम–नगर–दुर्गों की दहलीज भी पार करे, विजय की मंजिलें चढ़ते–चढ़ते संपूर्ण देश ही पादाक्रांत करे, अपना साम्राज्य स्थापित करे, स्वधर्म–स्वदेश का संरक्षक हो, ऐसी महत्त्वाकांक्षा उस माता के मन में पनपने लगी। आज चार दीवारों के घरौंदे में ही उछलने वाला यह शैशवावस्था का पंछी अपने विशाल पंख फैलाता हुआ गरुड़ बनकर, असीम आकाश पर अपना प्रभुत्व स्थापित करे, ऐसी उस महामाता के हृदयांतरंग की कामना थी। उसे दिये गये स्तनपान के एक–एक घूँट एवं खिलाये गये अन्न के एक–एक निवाले के साथ, उसमें जाज्वल्य स्वदेशाभिमान तथा स्वधर्मनिष्ठा का परिपोष उस माँ ने किया था। वीर सरदार शाहजी राजा का हाथ थामने वाली जीजाबाई ने राजनीति एवं युद्धनीति में भी निपुणता प्राप्त की थी। कालांतर में उसने अपने पुत्र को उसी राजनीति की घुट्टी भी घोलकर पिला दी।

पिता शाहजी परायों की सेवा कर, बुरी तरह से पस्त हुए एक शूर सरदार थे। इसलिए उनके अंतर्मन की इच्छा थी कि अपना पुत्र शिवाजी स्वातंत्र्य एवं स्वाभिमान के जलवायु का आकंठ पान करता हुआ ही बड़ा हो। यही कारण था कि उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र संभाजी को बेंगलूर में अपने साथ रख कर उसके प्रशिक्षण की व्यवस्था की थी तथा दूसरा पुत्र शिवा किसी अन्य स्थान पर सिंहशावक के समान स्वतंत्र रीति से बड़ा हो सके, इस विचार से उसे शिवनेरी से पुणे भेजने का निर्णय किया।

पुणे शाहजी की जागीर का एक भाग था। शिवा की देखभाल तथा शिक्षण के लिए शाहजी ने वहाँ पर दादाजी कोंडदेव नामक एक वयोवृद्ध, ज्ञानवृद्ध, राजकार्य में धुरंधर को नियुक्त किया। जीजामाता एवं दादाजी कोंडदेव के साथ पुणे पहुँचा हुआ शिवा तब केवल छः वर्ष का सिंह शिशु था। गुरु दादाजी तथा जीजामाता के शिक्षण से उतनी कम आयु में ही उसमें एक–एक कर सब अद्भुत सद्गुण अंकुरित–पल्लवित होने लगे। माँ उसे राम–कृष्ण, भीम–अर्जुन, हनुमान आदि की वीर–कथाएँ बड़े प्रभावी ढंग से सुनाती थी। शिवा उन्हें बड़ी अभिरुचि के साथ सुनता था। इन महापुरुषों के जीवन का एक मात्र संदेश उसके अंतःकरण में अंकित हुआ था– "दुष्ट निर्दलन, शिष्ट परिपालन!"

पुणे तब मुसलमानों के हमलों से उजड़ा हुआ एक नगर था। जहाँ देखें वहाँ ध्वस्त देवस्थान, मंदिर–मठों के भग्नावशेष, कलाविहीन उखड़े रास्ते। शिवा की स्वाभाविक उत्सुकता उमड़ रही थी। उसकी बुद्धि भी बड़ी तेज़ थी। यह मंदिर किसने तोड़ा ? यह मूर्ति क्यों टूट पड़ी ? क्यों यहाँ लोग कंगाल बने ? ऐसे सैकड़ों प्रश्न वह अपनी माता से पूछता रहता था। अब राजा हमारा नहीं है; उन विधर्मियों ने ही हमारे मंदिरों का विध्वंस किया है; हमारा धर्म संकट में है – माता ऐसे उत्तर देती रहती थी। यह सब सुनकर बाल शिवा तिलमिला उठता था। विधर्मी लोगों का वह राक्षसी अट्टहास देखकर शिवा क्षुब्ध हो जाता था। असंख्य सीता–द्रौपदियों के चीत्कार, हाहाकार उसके हृदय को भेदते थे; उसके अंतःकरण को चीरकर प्रश्नों के पहाड़ खड़े कर रहे थे, "इन सबका परिहार कौन करेगा?" इस प्रश्न के उत्तर में शिवा स्वतः की ही सिद्धता करने लगा। शस्त्रविद्या एवं शास्त्रविद्या दोनों में उसकी पैठ असामान्य गति से आगे बढ़ी। खेलना–कूदना–फांदना उसके प्राण थे। समवयस्क बालकों को अपने साथ लेकर माटी के किले बनाकर लड़ाई का खेल खेलना उसका प्रिय खेल था।

७० वर्ष की वृद्धावस्था में भी दादाजी कोंडदेव कर्तव्यनिष्ठा, कठोर अनुशासन की मूर्ति थे। तब पुणे के चहुँओर मावल क्षेत्र में स्थानीय

देशमुख ही अपनी–अपनी सूबेदारी चलाते थे। स्वार्थी, दुरभिमानी, विलासप्रिय ये सूबेदार स्वधर्मी जनों पर ही भयंकर बलात्कार, दौर्जन्य, अत्याचार ढा रहे थे। उस ध्वस्त जनजीवन को फिर से बसाने का काम दादाजी ने अपने हाथों में लिया। वे दोषी लोगों को कठोर दण्ड देने लगे। किसानों को सुरक्षा का भरोसा देकर उन्होंने काश्तकारों को प्रोत्साहित किया। धीरे–धीरे बारह मावल प्रांतों में सुव्यवस्था स्थापित होने लगी। पुणे आने पर दादाजी ने 'श्री गणेशजी' की प्रतिष्ठा कर एक मंदिर का निर्माण किया। शिवा के निवासस्थान लालमहल की नींव रखी एवं पुणे का सब कारोबार शिवा के नाम पर ही चलाना प्रारंभ किया। किस प्रकार जागीर का प्रशासन दक्षता से चलाना चाहिए, इसके बारे में दादाजी ने अपने आचरण तथा आदर्शों द्वारा शिवा को बताया, समझाया। इन सबके लिए शाहजी राजा की मौन सम्मति थी; इसी कारण ये सब बातें संभव हुईं।

शिवा दस वर्ष का हुआ था। तब बेंगलूर में रहने वाले शाहजी राजा को पुत्रदर्शन की चाह उत्पन्न हुई। उन्होंने उसे अपने पास आने का बुलावा भेज दिया। जीजामाता भी साथ में आयी। शिवा को शिक्षा का एक पड़ाव समाप्त कर, अगले पड़ाव तक पहुँचना था। बेंगलूर में ही उसकी सर्जनशील प्रतिभा विकसित होनी थी।

शाहजी राजा उस समय बीजापुर आदिलशाह के अधीन कार्यरत थे। वे अपने अधिकारक्षेत्र कर्नाटक प्रदेश में प्रायः स्वतंत्र हिंदू वातावरण का ही पोषण कर रहे थे। बेंगलूर तो कमोबेश लंबे समय तक विजयनगर हिंदू साम्राज्य के शासनाधीन प्रदेश रह चुका था। इस प्रकार राजधानी बेंगलूर में विजयनगर के आदर्श हिंदू साम्राज्य के सुगंधमय, मुक्त वातावरण में तब भी साँस ले सकते थे। शाहजी का राजदरबार विजयनगर दरबार की एक प्रतिकृति था। विजयनगर के विध्वंस के पश्चात् उस साम्राज्य के मुत्सद्दी, दरबारी लोग, मंत्रीगण सब के सब कचरे की भांति फेंके गये थे। वहाँ के दरबारी रीति–रिवाजों, राजकारोबारों की सत्प्रथाओं में निष्णात उनके वंशजों को भी देश–निकाला दे दिया गया था। उन सबको हिंदुत्वनिष्ठ शाहजी की छत्रछाया में ही आश्रय मिला था। उनके राजप्रासाद

होम–हवन, धर्मकार्य, वेदघोष, विद्वत्सभाएं नियमित रूप से चलती थीं। हजी की दिनचर्या भी हिंदु धर्म के आचारानुसार ही चलती थी। प्रति न भोर में जगना, अश्वत्थ वृक्ष की वंदना, सूर्यदर्शन, स्नान, पूजन आदि हिंदू आचार उनके नित्य जीवन के अभिन्न अंग थे। बाल शिवा राजप्रासाद का यह हिंदुत्वमय परिसर बहुत ही भाया था। यह सब कर उसका हृदय पुलकित हो उठा था।

उन दिनों महाराष्ट्र में कहीं पर भी इस प्रकार का वातावरण दिखाई असंभव था। राजपूताने के शेष स्वतंत्र हिंदु–संस्थान भी हिंदु राजव्यवहार रीति–नीतियाँ बचा नहीं पाये थे। वहाँ के राजदरबारों का स्वरूप, ति, शब्दावली, सभी मुगल दरबार की सस्ती नकल बनकर रह गये इतना ही क्यों, स्वयं शिवा के पितामह मालोजी राजा ने अपने दोनों का नाम मुसलमानी तौर–तरीके का याने शाहजी व शरीफजी रखा इस सीमा तक मुसलमानी आचार–विचारों का प्रभाव तब हिंदु घरों में श कर चुका था। वह अपमानास्पद दासत्व का संकेत लगने के बजाय ता का द्योतक बन गया था। स्वाभिमान की भावना दूर बहिष्कृत हुई कर्नाटक के बाहर समस्त हिंदुस्थान में कहीं पर भी परिशुद्ध हिंदु न का दृश्य तब देखने को भी नहीं मिलता था। इसीलिए विधायक में हिंदु साम्राज्य की स्थापना करने की शिवा की भव्योदात्त कल्पना उदय होने के लिए बेंगलूर का परिवेश ही मूल कारण बना होगा, इसमें संदेह नहीं।

तब मैसूर के रणधीर कंठीर व नरस राजा ने हिंदू स्वातंत्र्य की री निनादित की थी। हिंदु धर्म की रक्षा करने के लिए जन्मे श्री ह के ही वे अवतार थे, ऐसी कन्नड़ जनों की धारणा थी। उसके संरक्षक खड्ग 'विजयनारसिंह' की ख्याति सब दूर फैली थी। 'चामुंडी द' के रूप में प्राप्त वह अप्रतिम ऐसा आयुध था। 'गो–ब्राह्मण पालक' विरुद से नरस राजा सब स्थानों पर पूजार्ह बना था। बेंगलूर वास के समय शिवाजी के लिए कंठीर व नरस राजा के सकल पुण्य व से अस्पर्शित रहना असंभव था।

तथापि तिरुपति के दर्शन, कर्नाटक के विभिन्न ऐतिहासिक स्थानों का भ्रमण आदि बातों से शिवा की भावग्राही बुद्धि को विजयनगर के भग्नावशेषों ने अपनी दुर्धर कर्मगाथा बतायी होगी! अपने सुहाने सपने साकार होने के पहले ही मृत विजयनगर के वीर योद्धाओं की अतृप्त आत्माओं ने शिवा के कानों में चिल्ला–चिल्ला कर अपना दुखड़ा रोया होगा। बाल्यकाल से ही असीम साहसी, ध्येयवादी रहे शिवा ने यह सब देखते–सुनते ही अपने जीवन की ध्येयज्वाला को सँवारने के लिए आवश्यक स्फोटक सामग्री वहाँ पर ही संग्रहित की होगी। काल के दर्पण में विजयनगर ही प्रतिबिंबित होकर 'हिंदवी स्वराज्य' का एक महोज्ज्वल नमूना उसे दिखाई दिया होगा। उस दृश्य से द्रवित उसका हृदय रोमांचित हुआ होगा। यही कारण था कि शिवाजी ने केवल शत्रु–विध्वंसक की नकारात्मक भूमिका नहीं निभायी, बल्कि आदर्श हिंदु साम्राज्य के निर्माण की विधायक प्रेरणा पाकर विशुद्ध भारतीय अस्मिता के आधार पर एक आदर्श राज्य खड़ा करना उनके लिए संभव हुआ।

..... ३ .....

बेंगलूर में शिवाजी का प्रवास लगभग दो वर्ष रहा था। तब शाहजी राजा को एक बार बीजापुर जाना पड़ा था। उनके साथ शिवा, जीजाबाई तथा दादाजी भी गये।

पहली बार शिवाजी की ध्येयनिष्ठा निकष पर चढ़ायी गयी। उस राजनगरी में कदम–कदम पर उसे वहाँ के अपूर्व, अद्‌भुत दृश्य देखते–देखते चलना पड़ा। वह प्रचंड दुर्ग, गगनचुंबी मीनारें, सुंदर उद्यान, बादशाह की मेहरबानी प्राप्त करने के लिए घुटने टेकने, कोर्निस करने, घोड़ों पर सवार होकर आ रहे अतिरथी–महारथी जिनमें उनके मराठा वीर भी थे और स्वयं शिवा के पिता शाहजी राजा भी। उनके साथ समवयस्क किशोर–युवक तथा रिश्तेदार भी। सब वस्तुओं तथा सब लोगों का सूक्ष्मता से निरीक्षण करता शिवा; स्थान–मान, संपत्ति–वैभव उसे अंगुली दिखाकर बुला रहे थे। किंतु किसी अगम्य कारणवशात् उसके मन को उसमें से कुछ भी नहीं भाया। उसके हृदय ने उस बुलावे को अस्वीकार कर दिया।

कारण ये सब वस्तुएं उसे पारतंत्र्य की जूठन लगीं। ये सब उसके [illegible]बांधवों के शोणित से गीले हुए थे। उसका हर एक दृश्य दासता, [illegible]रकीयता, अभिमानशून्यता की काली छाया से घिरा हुआ था; आत्मग्लानि [illegible] कलंक भी उसमें घोला गया था। वह सब देखते ही उसके मन में घृणा [illegible]दा हुई। उन सबको कठोरतापूर्वक नकारते हुए उनका धिक्कार किया।

वैभव के साथ–साथ उस साम्राज्य की शैतानी शक्ति भी शिवा की [illegible]ष्टि के सामने आये बिना नहीं रही। राक्षसतागड़ी में विजयनगर के [illegible]शाल सैन्य को पूरा निगल कर हजम करनेवाली वह दैत्यकाय 'मुल्क [illegible]दान' तोप, उत्तंक (यमराज) की गुफा के समान खुला हुआ उसका [illegible]ड़ा; दुर्ग–तट के अंतिम छोर तक पंक्तिबद्ध खड़ी सेना की टुकड़ियाँ; [illegible]दशाह के खिलाफ खड़े सभी लोगों को मटियामेट किया गया; अनगिनत [illegible] का नामोनिशान मिटाया गया; उनकी असंख्य हृदय–विदारक [illegible]नाएँ–कथाएँ एक–एक कर बाल शिवा को संबोधित कर कह रही थीं, [illegible]बरदार, खबरदार!" वे आगाह कर रही थीं, "बादशाह के खिलाफ [illegible]द्रोह में खड़ा होने का पागलपन करोगे, तो होशियार; देखो, वह [illegible]विख्यात विजयनगर भी जमींदोज हो गया, तब तुम किस पेड़ की पत्ती [illegible]? तुझे और तेरे सपनों का स्वराज्य दोनों को ही एक ही घूंट में पीकर [illegible]प्त कर देंगे। हमें विरोध करने की क्या कीमत चुकानी पड़ेगी, जानते [illegible]? अपार यातना, पीड़ा, संकट, विनाश, कदम–कदम पर मौत के साथ [illegible]ना — ये सब न केवल तेरे, बल्कि तेरे कहलाने वाले सब लोगों के [illegible] आयेगी! तुम्हारे समस्त जीवित–वित्त को सर्वनाश की कृष्णछाया घेर [illegible]। फिर एक बार ये सारी बातें याद कर और अपने सपने के बारे में [illegible] बार फिर से सोच!" ऊँची आवाज में बार–बार चेतावनी दे रही थीं।

परंतु आश्चर्य! शिवा इनमें से किसी भी चेतावनी से न डिगा, न [illegible]! उसके हृदय ने स्वातंत्र्य देवी के पावन कर–कमलों का अमृतस्पर्श [illegible]प्त किया था। शत–शताब्दियों से वीरात्माओं, हुतात्माओं के रुधिर से [illegible]मंत्रित तुलजामाता का वरदहस्त उसके सिर पर था। भग्न मूर्तियाँ, [illegible]टी पड़ी चूड़ियाँ एवं मंगलसूत्र, उजड़ी हुई बस्तियाँ प्रतिशोध लेने के लिए

उसे हाथ हिला-हिला कर बुला रही थीं।

बाल शिवा के बीजापुर में रहते ही प्रचलित हुई लावणी (लोकगीत का एक प्रकार) में वर्णित एवं जन-मन में अमिट रूप से अंकित वे दो मार्मिक प्रसंग उसके तत्कालीन मनस्थिति का अतीव सुंदर दर्पण बन गये हैं।

एक बार शाहजी अपने पुत्र शिवा को बीजापुर बादशाह के दरबार ले गये थे। दरबार का वैभव, जगमगाहट, बादशाही रौब आदि का क्या बखान करें? सब सरदार, सामंत बादशाह के तख्त तक झुके सिर ही जाकर, तीन-तीन बार कोर्निस करते थे और झुके सिर ही अपनी-अपनी जगहों पर उलटे पाँव वापस लौट के खड़े होते थे। शाहजी की बारी भी खत्म हुई। बाद में शिवा का हाथ पकड़ कर आगे ले गये। शाहजी उसकी खिदमत में अपने पुत्र को लाया है, यह देखकर अली आदिलशाह की तबियत खुश हो गयी। तख्त के सामने रुककर, शाहजी ने शिवा को बताया, "शिवा, सुल्तान को सलाम करो।"

बारह साल के उस बछड़े के मन में वह प्रसंग मानो कानाफूसी कर गया, "हाँ, सिर झुकाओ, यही तेरे सौभाग्य का क्षण है। बादशाह तेरा बहुमान करेगा। तू आगे चलकर एक बड़ा सरदार बनेगा।" उसी क्षण उसके अंतःकरण के अंतराल से एक अन्य स्वर भी चीखते हुए उमड़ पड़ा, "क्या, तू इस क्षुद्र विधर्मी के सामने अपना सिर झुकायेगा ? क्या तू अपना धर्म, परंपरा आदि भूल जायेगा ? जीजामाता द्वारा बतायी और सुनायी हुई राम-कृष्ण, भीम-अर्जुन की कथाओं का स्मरण कर! तुझे कैसा भय, किसका भय? आ, मेरे अभेद्य, गगनचुंबी शिखरों का वन्दन स्वीकार कर; मेरे गिरि-कंदराओं को अपने पद रज से पुलकित कर! दासता की शृंखलाओं से मेरी मुक्ति कर! मेरे विशाल, दीर्घ एवं सशक्त बाहुओं में तुम स्वयं ही स्वतंत्र, सार्वभौम सम्राट् बन कर शोभायमान हो जाओ, जगमगाते रहो! माँ तुलजा भवानी तुम्हारी रक्षा करेगी!" किसकी आवाज थी वह? सह्याद्रि के गद्‌गदित अंतःकरण से वह स्वर प्रस्फुटित हुआ था।

अब शिवा किस आवाहन का प्रतिवाद करेगा? उसे जन्म देने वाले देश का भवितव्य बड़ी आतुरता से सुनने को बेचैन था। उसका नमन तुलजा भवानी को होगा या बादशाह को? स्वातंत्र्य देवता को या मोहक दास्यदानवी को ?

संदेह क्यों ? क्या कभी सिंहशावक सड़ा-गला, बासी मांस खाकर पिंजरे में जीना चाहेगा ? वह भी, इस पावन भारतभूमि में स्वातंत्र्य देवी की तपस्या के पुण्यफल स्वरूप जन्मा केसरी ?

शिवा दो कदम पीछे हटा। शाहजी ने फिर एक बार प्यार भरे स्वर में पुचकारा, "बेटा जल्दी, जल्दी कर।" शिवा ने अपनी खुली आँखें सीधी पिता की नजरों से भिड़ा दीं, "पिताजी आपको नमन अवश्य करूंगा। देवता को, माता को साष्टांग प्रणिपात करूंगा। परंतु इस विदेशी, विधर्मी बादशाह के सामने अपना सिर क्यों झुकाऊँ? असंभव!" यही भाव उसकी आँखों में साफ दिखाई दे रहा था। पिताजी भी समझ गये। पर, तब वे असहाय से थे। बाद में शिवा की धैर्यभरी स्थिर दृष्टि सुल्तान की ओर मुड़ गयी। "पापी, नीच! स्वदेश का शत्रु, स्वधर्म का वैरी! एक ही छलांग, एक ही प्रहार! क्यों न इस तख्त पर ही टूट पड़ूँ? क्यों न इस कंस को नीचे पछाड़ कर कृष्ण के समान उसके सीने पर बैठ जाऊँ?" आदि भावनाएँ किशोर शिवा के अंतर्मन को उद्वेलित कर रही थीं।

सीना तान खड़े उस सिंह-शावक शिवा को देखकर सुल्तान ने कहा, "शाहजी राजे, बेचारे नासमझ बच्चे पर जोर जबरदस्ती क्यों ? रहने दो, वापस ले जाओ।" बिना सिर झुकाये हुए, वैसे ही चीते की गति से वापस लौट रहे उस बालक को देखकर समूचा दरबार भौंचक्का रह गया।

बाल शिवा को लेकर शाहजी अपने डेरे पर लौट आया। शिवा के सत्त्व की परीक्षा देखने वाली एक और घटना बीजापुर में ही घटी। एक बार नगर की सैर करने शिवा निकल पड़ा था। एक कसाई गाय की हत्या करने जा रहा था। वह दिल दहलाने वाला दृश्य शिवा ने देखा। कसाई अब गाय काटने ही वाला था कि पलक झपकने से पहले शिवा की कटार

म्यान से बाहर आयी और उसके एक ही प्रबल वार में कसाई का वह हाथ उसके कन्धे से अलग होकर दूर जा पड़ा। गोमाता का रक्षण हुआ। जीजामाता द्वारा बतायी हुई राजा दिलीप की कथा 'गो–रक्षण' का संस्कार व्यर्थ नहीं गया।

अब अपने पुत्र को बीजापुर में रखना खतरे से बाहर नहीं, ऐसा शाहजी ने सोचा। शिवा की नस–नस में स्पंदित हो रहे दुर्दम्य स्वाभिमान के स्वर को जानकर, पहचान कर पिता को एक प्रकार का अमूर्त आनंद हुआ। स्वातंत्र्य–साधना का महत्कार्य जो मेरे लिए असंभव था, उसे पुत्र ने अपना लिया तो उसमें गलती ही क्या है? सिंहशावक को स्वतंत्रता के मंद, मधुर वायुमंडल में श्वासोच्छ्वास लेते बड़ा होने के लिए बीजापुर नहीं, बल्कि पुणे जैसा दूरस्थ नगर ही योग्य स्थान होगा। ऐसा उन्होंने सोचा। वैसे भी गुलामी का वह दुर्गंधमय, मटमैला वातावरण शिवा के लिए इतना असहनीय बन चुका था कि वहाँ साँस लेना भी उसे दूभर हो गया। कब बीजापुर छोड़ दूँ, ऐसा उसे लग रहा था। तज्ञ, मुत्सद्दी एवं राजकार्य में धुरंधर लोगों से युक्त एक मंत्रिमंडल बनाकर शाहजी राजा ने शिवा की सहायता करने उसके साथ भेज दिया। शामरज नीलकंठ रांझेकर को 'पेशवा' के नाते नियुक्त किया गया । मजे की बात तो यह है कि स्वयं शाहजी राजा के पास उनका अपना 'पेशवा' नहीं था। साथ में दिया कर्तबगार, निष्ठावान सेवकवर्ग, हाथी, घोड़े एवं एक ध्वज। पितृ–वात्सल्य से अनुप्राणित शिवा ने अपना घोड़ा पुणे की ओर दौड़ाया।

..... ४ .....

पुणे के आसपास का बारह मावल प्रांत ही शिवा की गतिविधियों का आरंभिक कार्यक्षेत्र था। दादाजी कोंडदेव तथा मंत्रिमंडल की दक्षता से उस जागीर का कारोबार सुव्यवस्थित हो गया। गिरि गह्वरों में घूमते रहना शिवा को अतीव प्रिय था। हर दिन नये–नये गाँव, देहात, वनों में जाकर उसने अपने चहुँ ओर साहसी मावला लड़कों को इकट्ठा करना प्रारंभ किया। प्यार–दुलार, भय–डर दिखाकर कई देशमुखों (मुखिया लोगों) में अपनी ओर झुकाव पैदा किया। जहाँ–तहाँ फैले हुए कलह, मत्सर, हत्याएं, द्रोह आदि अवगुण दूर करने में वह जुट गया। इस प्रकार मावला लड़कों के गुटों में उसके प्रगाढ़ स्नेह–संबंध स्थापित हुए। वह उन सबका लाडला ही नहीं प्राणबिंदु बन गया। उन लड़कों का समूह याने साक्षात वानर–सेना ही थी साहस में, निष्ठा में, पराक्रम में।

उसके द्वारा संजोया हुआ सबसे बड़ा एक मित्र था, जो औरों से कहीं अधिक उपयुक्त एवं सहायकारी साबित हुआ। वह था 'सह्याद्रि का सख्य' — समूची पश्चिम दिशा में उन्नत खड़े प्रचंड पर्वत–शिखर, दुर्गम कंदराएं, घोर निबिड़ अरण्यों से व्याप्त सह्याद्रि के साथ अत्युत्कट मैत्री। शिवा उसके हर एक शिखर श्रेणी पर चढ़ चुका था; उसकी एक–एक गुफा–कंदराओं में झाँक चुका था; वह उसका अंतरंग मित्र ही बन गया था। सह्याद्रि ने भी उसका वरण किया। उसने भी अपने अंदर के सब रहस्यों के कपाट शिवा के सम्मुख खोल के रख दिये थे। सह्याद्रि ने अपने अंक में स्थित सभी समुद्र स्थानों का ज्ञान शिवा को सुगम बना दिया था।

बीजापुर के ज्येष्ठ सरदार शाहजी का पुत्र होते हुए भी वनवासी, गिरिवासी मावला लड़कों के साथ सदैव चहल–पहल का वह दृश्य अनेक परिजनों के लिए असहनीय बन गया। सरदार–पुत्र के नाते अपने समान प्रतिष्ठा प्राप्त लोगों के साथ ही रहना–उठना–बैठना छोड़ उन गरीब किसान किशोरों के सहवास में गिरि–कंदराओं में भटकता है, वह बिगड़ गया है, ऐसी मनोव्यथा भी कुछ लोगों ने व्यक्त की। शिवा का नाम सुनते ही मावल प्रांतों के वृद्ध पाटिल, देशमुख उसका उपहास कर खिल्ली उड़ाने लगे। उनमें बहुतेरे ऐसे लोग थे जिन्होंने बीजापुर आदिलशाही की सेवा में ही अपने बाल सफेद किये थे। किंतु शिवा मात्र उन्हीं 'निचले दर्जे के' सखा साथियों को स्वराज्य–मंदिर के सुगठित, सुभद्र शिल्प के आकार में ढालने के कार्य में मग्न था। उनमें से हर एक को अपना अंतरंग मित्र बना रहा था, स्वातंत्र्य–योद्धा के रूप में परिवर्तित कर रहा था। इस प्रकार तानाजी मालुसरे, बाजी पासलकर, बाजीप्रभु देशपांडे, येसाजी कंक, बाजी

जेधे, चिमणाजी, बालाजी आदि सब आगे चलकर स्वराज्य–मंदिर की सुदृढ़ आधारशिलाएँ बन गये। शिवा की देवी भवानी के प्रति जो अनन्य भक्ति थी वह उन्होंने देखी और अपने नेता का जीवित कार्य भगवत्कार्य ही है, यह श्रद्धा उन्होंने संजोयी। कैलाशपति भोलेबाबा के भूतगणों के समान वे सब शिवा के अनन्य भक्त बन गये। इस प्रकार खेल–कूद करते शिवा के साथ बड़े हुए लड़के ही भविष्य में दिल्ली तथा बीजापुर साम्राज्य के विश्वविख्यात बड़े–बड़े सेनापतियों, सरदारों को सहजता से बार–बार हराने वाले अप्रतिम रणधुरंधर बन गये।

तेरह वर्ष की कोमल आयु में ही शिवा ने अपनी स्वतः की राजमुद्रा अष्टकोण आकृति में बनवायी; वह भी संस्कृत में।

"प्रतिपश्चंद्रलेखेव वर्धिष्णुर्विश्ववंदिता।

शाहसूनोशिवस्यैष मुद्रा भद्राय राजते।।"

कितना सुंदर श्लोक! समस्त विश्व से गौरवान्वित होकर, वृद्धिंगत होने वाले शुक्ल प्रतिपदा के चंद्र के समान प्रति दिन प्रकाशमान हो रहा है! क्या ? शाहजीपुत्र शिवा की यह मुद्रा! किस लिए! विश्वमांगल्य के लिए! केवल अपने निजी, या अपने गुट के अथवा अपनी जाति के उद्धार के लिए नहीं, बल्कि समस्त जगत्कल्याण के लिए! १३ वर्ष की आयु के किशोर के हृदय का भाव–वैभव कितना विशाल था!

अधनंगे मावला लोगों के साथ घनारण्यों में घूमते–घामते शिवा को एक बार रोहिडेश्वर के स्वयंभू शिवलिंग का दर्शन हुआ। एक दिन उसकी सब मित्रमंडली वहाँ इकट्ठी हुई। उस जगन्नियामक के सामने खड़े होकर उसकी साक्षी में सबने मिलकर 'हिंदवी स्वराज्य' स्थापित करने की सौगंध ली। 'हिन्दवी स्वराज्य' के उस बीजमंत्र में समस्त हिंदुस्थान के तत्कालीन चित्र को ही परिवर्तित करने की प्रचंड शक्ति थी। शिवाजी ने अपने पूज्य गुरु वयोवृद्ध दादाजी कोंडदेव को भी उस शपथ–विधि में आमंत्रित किया था। गुरु का ही अपने शिष्योत्तम से 'स्वराज्य–स्थापना की दीक्षा प्राप्त करने का कैसा अपूर्व प्रसंग था वह!

स्वराज्य! यह कैसा पागलपन ? सुनते ही सब उपहास करने लगे। हँसें नहीं तो करें भी क्या ? शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित चार लाख की सेना सम्हालने वाली दिल्ली की मुगलशाही, लाख से भी अधिक सेना से लैस बीजापुर की आदिलशाही, कमोबेश उतनी ही बलिष्ठ भाग्यनगर (हैदराबाद) की कुतुबशाही, पश्चिम सागर के समूचे लंबे तट पर बद्धमूल बन बैठे पुर्तगाली, अंग्रेज, फ्रांसिसी, डच आदि साहसी यूरोपीय। चहुँ ओर इतने प्रबल शत्रु साम्राज्यों की अगाध शक्तियों के रहते किसी अरण्य के अज्ञात कोने में दस–बीस युवक तथा सत्तर वर्षीय एक वृद्ध मिलकर 'हिन्दवी स्वराज्य' की प्रतिज्ञा करते हैं, यह पागलपन नहीं, तो और क्या है?

अब अगल–बगल के जो स्वजन, स्वधर्म–बन्धु–बांधव थे, क्या वे अनुकूल रवैया रखते थे? 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के अनुसार जिसकी तलवार उसी का दरबार चलता था। जहाँ–तहाँ देशमुखों की, देशपांडों की अपनी–अपनी सेना की टुकड़ियाँ रहती थीं। अपनी–अपनी जागीरों के वे ही सूबेदार थे। आपस में ही हत्याएँ, प्रतिहत्याएँ, रक्तपात, माँ–बहिनों या लड़के–बच्चों का लिहाज किये बिना जिसका जी चाहे नृशंस वध करना आदि सब बिल्कुल मामूली–सी बातें बन गयी थीं। ऐसी दारुण, भयंकर परिस्थिति थी। पूरे वंश का ही निर्मूलन करने की क्रूरता के लिए अति क्षुद्र कारण भी काफी था। स्वतः शाहजी राजा को भी इस प्रकार के हत्याकांड में सहभागी होना पड़ा था। एक मदोन्मत्त हाथी को मारने के लिए एक बार जीजाबाई का बड़ा भाई दत्ताजी जाधव अपनी तलवार निकाले खड़ा हुआ और उसी हाथी की रक्षा करने सजे हुए शाहजी राजा के बांधव। मजे की बात यह कि इस धुमश्चक्री में वह हाथी ही कहीं सुरक्षित चला गया; परंतु हताहत हुए दत्ताजी एवं शाहजी राजा का सौतेला भाई संभाजी! अपने ससुर के आघात से स्वयं शाहजी ही प्रज्ञाहीन होकर गिर पड़े! गाँव–गाँव में, घर–घर में इसी प्रकार की दुर्दांत घटनाएँ। चहुँ ओर फैले भयानक शत्रुओं के संकटों से भी अधिक भीषण था स्वजनों का यह आत्मविनाशक बर्ताव! ऐसी परिस्थितियों में स्वराज्य–स्थापना की बात मूर्खता नहीं तो और क्या?

तथापि आज तक जगत् में हवा के झोंकों के साथ उड़ जाने वाले अथवा प्रवाहपतित होने वाले लोग इतिहास–निर्माता नहीं बने। परिस्थिति रूपी प्रवाह के विरोध में खड़े होकर उसके साथ संघर्ष करते हुए, अंत में उसे मात देने वाले 'पागल' ही जगद्वंद्य बन गये हैं, अपने उस 'पागलपन' से ही इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ शोभायमान कर गये हैं। शिवा सदैव स्नेह भरा, हँसमुख एवं उत्साही व्यक्तित्व का स्वामी था। उसके व्यक्तित्व के इस पहलू के प्रकट होने का प्रसंग मित्रों के सामने एक बार घटित हुआ। एक दिन शिवाजी एकाएक क्रोध से अंगार उगलने लगे। कारण क्या था? पुणे के बगल में रांझा नामक एक ग्राम है। वहाँ के बदफैली पाटील ने एक विधवा स्त्री का मानभंग किया है, यह सूचना शिवाजी को मिली। मुसलमान सल्तनतों में वह बात मामूली होती थी। ऐसे दुष्कृत्य अपराध होने के बजाय उन्हें पुरस्कार–पात्र सत्कार्य समझने वाला सुलतानी कारोबार तब था। उसी के आधार पर रांझेकर पाटील को गर्मी थी कि उसे कौन पूछने वाला है? किंतु शिवाजी के स्वराज्य में ? तुरंत शिवाजी का आदेश निकला। दक्षता पथक उस ग्राम की ओर दौड़ पड़ा। उस उन्मत्त पाटिल के हाथ–पाँव बाँधकर खींचते हुए उसे लाया गया। शिवाजी की न्यायसभा में जीजामाता, दादाजी, पेशवा आदि सब नगर–जन स्तब्ध खड़े थे। उस बाल राजा की विचारणा विस्तार से चली। उसका, अपराध साबित हुआ। जिसके अपरोष्ठ पर अभी मूँछ की लव भी न उगी हो, ऐसा चौदह वर्ष की तरल आयु का शिवा कौन सी सजा सुनाता है, यह सुनने के लिए सब लोग बड़ी उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे। राजगद्दी से तीखी वाणी गरज पड़ी, "अपराधी के दोनों हाथ व दोनों पाँव काट डालो!"

"ओह!" क्षण मात्र के लिए सब अवाक् रह गये। इस बालक के न्यायदंड का प्रहार कितना कठोर! परंतु उस कंठोर शासन के पीछे गहन, गंभीर हिंदु संस्कृति के मानबिंदु का प्रश्न था।

स्त्री याने समस्त हिंदुओं के लिए माता समान! मातृत्व इस भूमि का पवित्र मानबिंदु! उसकी विडंबना स्वराज्य नहीं सहन करेगा। मुस्लिम

सल्तनत और स्वराज्य के बीच यही तो अंतर था। अब वह जनता को समझ में आना प्रारंभ हुआ। शिवा के प्रिय आदर्श कौन से हैं, उसके सपनों के स्वराज्य का स्वरूप क्या होगा, आदि सब बातें ऐसे प्रसंगों द्वारा एक–एक कर प्रजा की समझ में आने लगीं। उनका हृदय आनंद से, उन्हीं कल्पनाओं, भावनाओं से उमड़ने लगा।

उसी समय सह्याद्रि के गिरि–गह्वरों से "जय जय रघुवीर समर्थ" का जयघोष गूँजने लगा। शिवाजी क्षात्रतेज के तथा समर्थ रामदास ब्राह्मतेज के प्रतीक थे; उन दोनों का पवित्र, प्रेरणादायी संगम हो गया। सह्याद्रि की संतानों का हृदय दिव्य ध्येय की आभा से प्रकाशित हो उठा। शिवाजी के स्वातंत्र्य–प्रेम तथा समरोत्साह को समर्थ रामदास ने दार्शनिक पीठिका प्रदान की। "यह संसार अनित्य है; परंतु यह लोक ही कर्मभूमि है। यहाँ प्रथम यश प्राप्त करने वाले ही परमार्थ के अधिकारी हैं, प्रयत्न ही परमेश्वर है।" ऐसा उद्घोष किया। धीरे–धीरे समर्थ रामदास के मठों तथा अनुयायी शिष्यों की संख्या बढ़ती गयी। उन्होंने रामोत्सव, हनुमान जी की आराधना के द्वारा क्षात्रधर्म का आवाहन किया। स्वराज्य के आधारस्तंभ मठ–आश्रम गाँव–गाँव में खड़े हुए। "धर्म डूब रहा है; उठो, जागो! स्वराज्य–स्थापना करने एक अवतारी पुरुष आ रहा है। उसका समर्थन करने उठो, खड़े हो जाओ!" ऐसा उन्होंने अपने शिष्यवृंद द्वारा आवाहन करवाया। इस तरह समर्थ रामदास ने संपूर्ण भूप्रदेश को जगाया। रामदास तथा शिवाजी — इन दो महान आत्माओं का अमर बांधव्य बलिष्ठ बनना कैसा अद्भुत होगा! आगे चलकर उन दोनों की कार्यशक्तियों का पावन, प्रेरणादायी संगम प्रवाहित होने लगा।

उसी समय संत तुकाराम भी अपने अभंगों (भक्तिगीतों) के भक्तिरस द्वारा समाज में सामुदायिक भक्ति का जागरण कर रहे थे। संत मुक्तेश्वर द्वारा प्रचलित क्षात्रधर्म का प्रबोधन भी साथ में जुड़ गया। कुल मिलाकर, स्वराज्य का तोरण बांधने का शुभ मुहूर्त समीप आ गया।

स्वराज्य की नांदी (शुभारंभ) करना कितनी भयावह चुनौती को स्वीकार करना था! कश्मीर से कन्याकुमारी तक फैला हुआ वह प्र

यावनी साम्राज्य, उसकी अपार सैन्य शक्ति, असंख्य गढ़–किले, विपुल ऐश्वर्य, धर्मांध–मदांध दमन वृत्ति; पदतलों में सर झुकाये घुटनों के बल पर बैठे हुए महा–महा हिंदु सरदार; गुलामी में ही स्वादभरी चटकारियाँ लगाने वाली उनकी मानहत–मनोहत दयनीय स्थिति; किसी व्यक्ति द्वारा गलती से भी स्वातंत्र्य शब्द का उच्चारण होने पर उसके साथी सरदार ही उसको काटने या शिरोच्छेद करने के लिए अपना खड्ग निकालते थे – ऐसी हीन अवस्था। स्वराज्य का पहला कदम इन सब दुर्धर, दुस्साध्य चुनौतियों का सामना करना था।

किंतु नांदी (शुभारंभ) का मुहूर्त निकट था। बाधाओं से घबराकर, हाथ बाँधकर बैठने का समय नहीं था। इस प्रकार मीन–मेख गिनने का कार्य सदियों से चलता आ रहा था। तथापि अब ''शिवयुग'' का आरंभ हुआ था। अब पुराना पराभव, निराशा का स्वर नहीं उठेगा। इसके बाद तो उदित होगा, केवल साहस का युग, विजय का युग। शिवाजी के नेतृत्व में असंभव को संभव करने वाले नवयुग–निर्माण के अजूबे अब एक–एक कर घटित होने ही बाकी थे। उसका शुभारंभ "तोरणगढ़" से हुआ।

सुरक्षा की दृष्टि से बीजापुर द्वारा दुर्लक्षित "तोरणगढ़" पर १६४६ ई. में अपनी किशोरवयी सेना के साथ शिवाजी ने अचानक धावा बोल दिया। एक बिंदु रक्तपात के बिना ही उसने विद्युत् वेग से उस गढ़ को अपने वश में किया और उस पर स्वराज्य का 'तोरण' (स्वस्तिक का शुभ चिन्ह) बाँध दिया। अपनी राजमुद्रा में सूचित 'प्रतिपदा की चंद्ररेखा' का उदय उसी दिन हुआ। पहली बार स्वराज्य का रणघोष 'हर हर महादेव' तोरणगढ़ के मुक्त गगन में गूँज उठा। वही रणगर्जना सह्याद्रि के शिखर से शिखरों तक उछल कर, आगे–आगे उत्तर की दिशा में तांडव नर्तन करते हुए कुछ ही दशकों में विंध्याद्रि में भी प्रतिध्वनित होकर, दिल्ली के तख्तो–ताज को उखाड़ कर, यमुना–सिंध में लहरित होकर, अंत में वायव्य सीमा की हिंदुकुश पर्वतश्रेणियों तक जा धमकी। कैसा महान मंगलमय घोष था वह! उसी की गूँज में अब प्रथम बार तोरणदुर्ग पर भगवा ध्वज उन्नत आकाश

में फहरने लगा। दुर्ग के पुनर्निर्माण करने निकलते ही धनराशियों से भरे राजण (बड़े–बड़े घट) मिले। महालक्ष्मी की स्वराज्य देवता को पहली भेंट! परंतु वह देखकर, क्या उन बेचारों मावलों में से एक को भी उस धन की लालसा हुई ? छीः, उसकी कल्पना भी उन्हें असहनीय! वह महादेव का धन था! उसी के कार्य के लिए वह सुरक्षित रहना चाहिए। खुद को रुखी–सूखी रोटी, नदी का जल, पेड़ों की छाँव मिले, यही काफी है; साथ में शिवा का साथ तो था ही!

उन दिनों गढ़–किलों का अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान था। किलों के अन्दर ही राजधानी, राजप्रासाद, सैन्य, सरंजाम, सेवक, अनाज के गोदाम, गोलाबारूद, रसद, खजाना आदि सब रहता था। किलों के आधार पर ही आस–पड़ोस का जनजीवन सुगमता से चलता था। समस्त राज्य–कारोबार के केंद्र किले ही रहते थे। इसी कारण 'तोरण' से प्रारंभ हुई स्वराज्य की विजयमाला में शिवाजी एक के बाद एक नये–नये दुर्ग गूँथता चला गया। इस प्रकार 'तोरण' के नवसाहस के स्फुरण से अपने वश में लाये गये एक महत्त्वपूर्ण एवं दुर्गम दुर्ग में ही स्वराज्य की राजधानी की स्थापना की गयी। किला रायगढ़!

शिवा के बगावत की खबर बीजापुर के दरबार तक पहुँची। उसे सब से पहले पहुँचाने का श्रेय भी मराठों को ही था। सहस्रों वर्षों से हिंदुराष्ट्र को पीड़ता, स्वातंत्र्य देवता के प्राण निचोड़ता, सब स्वातंत्र्य योद्धाओं के त्याग–बलिदानों को धूमिल करता आया एक महाअभिशाप! यहाँ पर भी उसने अपने विष का प्रभाव दिखा ही दिया।

धीरे–धीरे मावल प्रांतों के देशमुख, देशपांडे अपनी खंडिका, चौथ, कर–भार आदि सब नये 'स्वराज्य' में जमा करने लगे। बीजापुर सुल्तान के कानों में ये सब खबरें हमेशा आती गयीं। किंतु जिसके होठों का दूध भी सूखा नहीं ऐसे कमसिन, दंगेबाज लड़के से घबराने का पागलपन करने वाला सुल्तान वह नहीं था। 'परिंदों पर तोप ?' आज नहीं तो कल, वह अपनी मौत खुद ही मरेगा।

कर्नाटक में कुछ कर ही दिया तो ? इसलिए उसका बंदोबस्त पहले करना इससे भी ज्यादा जरूरी था।

उसी समय कर्नाटक के दौरे पर निकल पड़े अफजल खान से बादशाह को एक खत मिला : "शाहजी की अंदर ही अंदर दूसरे हिंदवी सिपहसालारों से मिलीभगत है। वह आजाद हिंदवी राज तामीर करने की सोच रहा है।" वह सही भी था। एक और भी बात थी। विजयनगर के अंतिम राजा श्रीरंगराय को अनेक राजा-महाराजा गुप्त रीति से मदद कर रहे थे। यह सुनते ही बादशाह और भी डर गया। अब देरी करने से काम अधिक बिगड़ जायेगा, उसे ऐसा साफ दिखाई देने लगा। तुरंत उसने एक खौफनाक साजिश रची। बाप शाहजी को कैद कर, उसकी जान का डर दिखाने पर शायद बेटा शिवा खुद ही झुक जाये, बिल्कुल नाक बंद करने पर मुँह के अपने आप खुल जाने के जैसा! उसके लिए बादशाह ने अपने वजीर मुस्तफा खान और बाजी घोरपड़े को भारी फौज तथा गुप्त सूचना के साथ कर्नाटक की मुहिम पर रवाना किया। वे दोनों जिंजी के किले की घेराबंदी करने जा रहे हैं, ऐसा भुलावा देकर राह में शाहजी की छावनी के निकट अपनी फौज के साथ डेरा डाल दिया। आदिलशाह के वजीर मुस्तफा खान का स्वागत करने शाहजी राजा ने अगुवाई की। खान ने बेहद प्यार, यकीन का नाटक करते हुए शाहजी को विश्वास दिलाया और मौका पाते ही उन पर हमला कर दिया। मुस्तफा और बाजी दोनों शाहजी को गिरफ्तार कर उन्हें बीजापुर ले आये, वहाँ अफजल खान ने बेड़ियों तथा शृंखलाओं से जकड़े शाहजी को हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला और उन्हें कालकोठरी में ढकेल दिया।

नवजात स्वराज्य के आनंदोत्साह में तैरते शिवा, जीजाबाई तथा अन्य अनेक साथियों पर वज्रपात करती हुई यह वार्ता राजगढ़ पर आ धमकी। बीजापुर के कारागारों में कैदियों को दी जाने वाली यातनाओं के स्मरण मात्र से जीजाबाई भयकंपित हो गयीं। मानो उसके मंगलसूत्र को ही विधि के क्रूर हाथों ने पकड़ लिया है। मानो इतना ही काफी नहीं था, इससे भी अधिक अनिष्टसूचक वार्ताएँ एक के बाद एक आने लगीं।

शिवाजी के बेंगलूर में रहने वाले बड़े भाई संभाजी पर हमला करने बीजापुर से सेना लेकर फरहाद खान चल पड़ा है। इधर शिवाजी को पकड़ने फतेह खान भी भारी फौज के साथ धावा बोलने निकल चुका है। एक ही झटके में पूरे भोंसले कुल का नामोनिशान मिटा देने की भयावह साजिश! कैसी विचित्र, अनपेक्षित, घोर विपत्ति! स्वराज्य के बाल भास्कर को एक ही ग्रास में निगलने मुँह खोलकर खड़ा हुआ भयानक राहु था वह! "पिता चाहिए या स्वराज्य ?" यह विकट सवाल शिवाजी के सामने अचानक उठ खड़ा हुआ। राजगढ़ पर कुछ समय तक सब लोग दिङ्मूढ बन गये। तभी फतेह खान अपनी फौज के साथ अति निकट आ पहुँचा है, यह खबर आ धमकी। खड़े होकर सोचने तक का समय भी नहीं मिला। शिवाजी ने निर्धारित किया। शरणगति सर्वथा असंभव! युद्ध द्वारा ही निर्णय करेंगे, ऐसा उसने तय किया। उसके पास का सैन्य बल था भी तो कितना ? अधिकाधिक एक हजार, ऊपर दो सौ; शस्त्रास्त्रों के अभाव के बारे में जितना कहें, उतना कम था।

शिवाजी ने पुरंदरगढ़ में रहकर ही फतेह खान के साथ लड़ने का निश्चय किया। लेकिन वह दुर्ग किसके वश में था ? बीजापुर बादशाह के। शिवाजी की कार्यकुशलता का ढंग ही न्यारा था! पुरंदरगढ़ का वृद्ध किलेदार महादजी नीलकंठराव सरनायक शाहजी का पुराना मित्र था। अपने मित्र के पुत्र शिवा का अनूठा साहस देखकर, महादजी अभिमान का अनुभव करता था। वही अभिमान अब शिवाजी की पूंजी बन गया। अपनी छोटी सेना के साथ शिवाजी सीधा पुरंदरगढ़ पहुँच गया। किले के नीचे खड़े होकर उसने पुकारा, "काका, आपत्ति में फँसा हूँ। किले में आश्रय देकर रक्षा कीजिए।" महादजी पंत ने कहा, "ठीक है।" समग्र आयु बीजापुर की सेवा में व्यतीत करनेवाला वह वृद्ध अब इस बालक के मीठे बोल के चक्कर में आ गया। इस बाल के साथ उसका "सिर भी फिर गया।" महादजी के हृदय के साथ-साथ किले का दरवाजा भी शिवाजी के लिए खुल गया। बाहर तैयार खड़ी अपनी सेना के साथ शिवाजी ने दुर्ग में प्रवेश किया। वहाँ जगह मिलते ही फतेह खान के स्वागत की तैयारियाँ

वस्त्रालंकार की 'भेंट' प्राप्त हुई। वही खिलअत और शिरपाव पहन कर दरबार में हाजिर होने का फरमान भी साथ में मिला। यह सुनकर, शाहजी राजा आश्चर्य से स्तंभित हुए। यह सब अपने लाडले शिवा का ही चमत्कार है, यह देखकर उनका हृदय पुत्र के बारे में आनंद और अभिमान से फूला नहीं समाया।

दरबार में सुल्तान ने शाहजी राजा के बारे में, "आप को किसी गलतफहमी की वजह से शाही जहमत गवारा करनी पड़ी, जिसका सल्तनत को अफसोस है। आप ही की कुब्बत से बीजापुर शाही सल्तनत का सर फक्र से बुलंद है।" ऐसी गौरवयुक्त बातें बतायीं। किंतु, आखिर में शाहजी को बेंगलूर और शिवाजी को कोंडाणा किला छोड़ना पड़ेगा, ऐसी शर्तें भी रखीं। यद्यपि शाहजी को ये शर्तें सर्वथा अप्रिय थीं, परंतु उन परिस्थितियों में दूसरा कोई चारा भी नहीं था। अव्वल बात तो यह थी कि अब कोंडाणा छोड़ भी दिया जाये, तो शिवाजी उसे फिर से जीत लेगा, इसका पूरा भरोसा शाहजी राजा को था। इसलिए मान्य शर्तों के अनुसार ही शाहजी राजा ने शिवाजी को पत्र लिखा।

कोंडाणा छोड़ देने के पिता के आदेश से शिवाजी के मन को बहुत आघात लगा, उनके भाव–मंदिर पर अकस्मात् वज्रपात ही हो गया। शिवाजी अत्यंत दुःखित हुआ। अपने वृद्ध सचिव सोनोपंत डबीर को बुलाकर अपने हृदय की व्यथा उनके समक्ष रखी, "अब तक मेरे पिताजी ने मुझे पहचाना नहीं। कितने विषाद की बात है! वे तो अपनी प्रज्ञा खोकर, शत्रुओं के चंगुल में फँस गये हैं। उन्होंने शत्रु को कोंडाणा वापस देने की शर्त मानने का पागलपन किया है। क्या इसे जिम्मेदाराना बर्ताव कह सकते हैं ?" ये बातें सुनकर सोनोपंत को गहरा धक्का लगा। उन्होंने तुरंत कठोर स्वर में कहा, "महाराज! पूजनीय वरिष्ठों की निंदा करना पाप है। यह सच है कि वे भूल से ही शत्रु के हाथों में फँस गये हैं। परंतु उनके छुटकारे के लिए अब एक कोंडाणा छोड़ देना कोई बड़ी बात नहीं है। आपके पिताजी से बढ़कर उस किले की कोई कीमत नहीं है। उसे फिर एक बार आप जीत लेंगे। इतना ही नहीं, जीतने के लिए पराक्रमी पुरुषों

के सामने समस्त पृथ्वी ही खुली पड़ी है।"

पितृतुल्य सोनोपंत की बातें सुनते ही शिवाजी का क्रोधावेश एकदम ठंडा पड़ गया। उसने तत्काल कहा, "मुझसे गलती हुई। आप की बातें ठीक हैं। पिताजी के अपमान का बदला लिये बिना मैं छोडूंगा नहीं। अब मेरे खड्ग की नोक सीधी बीजापुर पहुँचेगी।"

इतने उद्वेगपूर्ण प्रसंग में भी विवेक की आवाज सुनने के साथ शिवाजी का विनम्र भाव देखकर सोनोपंत को अपार आनंद हुआ।

..... ६ .....

पिता और पुत्र दोनों पर अंकुश रखने के लिए सुल्तान ने शाहजी को कुछ समय तक बीजापुर में ही रख लिया। इससे शिवाजी को भी तब तक बीजापुर के साथ सीधा संघर्ष करने की छूट नहीं मिलने वाली थी। ये तीन–चार वर्ष गढ़–किले मजबूत करने, कृषि–उद्योग की व्यवस्था निर्मित करने और गो–संरक्षण, संवर्धन करने में बीत गये। उस दौरान जीते हुए मुल्कों में शिवाजी ने उत्तम राजकाज तथा न्यायदान का प्रबंध किया। सक्षम एवं सक्रिय 'गोब्राह्मण प्रतिपालक' के नाते शिवाजी की कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। रिहाई के बाद शाहजी राजा ने अपने दो और निष्ठावंत शूर सरदारों को शिवाजी की सेवा में भेज दिया। कान्होजी के आगमन से शिवाजी को हजारों हाथियों का बल प्राप्त हुआ। कान्होजी जेधे को भी शिवाजी की याने स्वराज्य की सेवा में अपना असीम पराक्रम प्रकट करने का मौका मिलने का परम आनंद हुआ।

इसी समय स्वराज्य के गर्भगृह रूपी जावली का भू–प्रदेश शिवाजी ने अपने कब्जे में कर लिया। साथ में उसके अड़ोस–पड़ोस के चार–छः किले भी स्वराज्य में शामिल करवा लिये। वहाँ का सूबेदार चंद्रराव मोरे स्वराज्य के साथ विद्रोह कर बीजापुर बादशाह के साथ मिल गया। उस भू–प्रदेश को स्वराज्य में शामिल करने के लिए वही कारण प्रमुख बन गया। शिवाजी ने जावली के बीचों–बीच एक बलाढ्य, अजेय दुर्ग का निर्माण करने का निश्चय किया। उसकी जिम्मेदारी मोरोपंत पिंगले को सौंपी गयी। लगभग इसी समय पुरंदर किला भी उनके हाथों में आ गया।

सूपा परगना को अपने वश में करने की शिवाजी की रीति भी उसकी न्याय-निष्ठुरता के साथ-साथ स्वराज्य-निष्ठा का भी निदर्शक बन गयी। संभाजी मोहिते नामक शिवाजी का एक खास मामा था। दर्प, अहंकार के लिए उसका बड़ा नाम था। जनता पर वह बेतहाशा जुल्म और अन्याय ढा रहा था। उसका गाँव शिवाजी की जागीर का ही हिस्सा था। मोहिते के उपद्रव का शिकार तथा परेशान तिम्माजी कुलकर्णी अपनी फरियाद लेकर शाहजी राजा के पास पहुँचा। शाहजी राजा ने तिम्माजी को न्याय दिलाने के लिए एक पत्र देकर शिवाजी के पास भेज दिया। परंतु, पिता का वह पत्र मिलने से पहले ही मोहिते की दुष्टता कुचलने के लिए शिवाजी अपने चुनिंदा सैनिकों के साथ सूपा की ओर निकल पड़ा था। अपना जागीरदार आया है, यह देखकर पहरेदारों ने बड़े अदब के साथ उन्हें किले में प्रवेश दिया। सूपा तथा परगना 'दीपावली की भेंट' के रूप में अपने को सौंप देने का विनम्र सुझाव इस दामाद ने उस मामा के सामने प्रस्तुत किया। लेकिन दर्पिष्ठ मोहिते ने शिवाजी की बात ठुकरा दी। तत्काल शिवाजी ने अपने सैनिकों को मोहिते मामा की दस्तगिरी करने का आदेश दिया। यह भयंकर आज्ञा सुनकर सब लोग दिग्भ्रमित हो गये। यह क्या, अपने खास ससुर पर भी यह दामाद हाथ उठा रहा है? मोहिते को तुरंत बंदी बनाकर किला अपने वश में ले लिया। तत्पश्चात् मोहिते मामा को रिहा कर उसे सम्मानपूर्वक पिता शाहजी के पास भेज दिया। इस बीच, शाहजी राजा का पत्र लेकर तिम्माजी कुलकर्णी आया। बिना कुछ मांगे या कहे, उसे भी अपने आप ही न्याय मिल गया था। शाहजी राजा के पास जाकर मोहिते ने शिवाजी के बारे में शिकायत तो अवश्य की। उन्होंने वह सब शांत चित्त से सुन लिया। परंतु शिवाजी ने गलती की है, ऐसा एक बार भी गलती से भी उन्होंने सूचित नहीं किया।

अब शाहजी राजा को वापस कर्नाटक में आने का मौका मिल गया। उतने दिनों तक हाथ पर हाथ धरे बैठे शिवाजी को भी अब छूट मिल गयी। उसके मस्तिष्क में नित्य नये साहस की योजनाएँ दौड़ने लगीं।

१६५६ ई. में बीजापुर के सुल्तान मोहम्मद आदिलशाह की मौत हुई।

आखिरी दिनों में भी उसके मुँह में शिवाजी के नाम का ही जाप था। मौत के वक्त भी उसने अपने सब सरदारों को बुलाकर कहा, "पूरे कर्नाटक को इस्लाम के हरे रंग में ढालने की मेरी तमन्ना पूरी नहीं हो सकी। अब मेरी जिंदगी खत्म होने जा रही है। तुम मेरी मुराद पूरी करना।" ऐसा कह कर, उसने अपनी आखिरी साँस ली। मोहम्मद के बाद उसका बेटा अली बीजापुर का सुल्तान बना।

उस समय मुगल शहंशाह शाहजहाँ का फर्जंद शहजादा औरंगजेब दक्खन में मुगल सूबेदार था। बीजापुर के सुल्तान की मौत का मौका साधकर उसने पूरे दक्खन प्रांत को निगलने की साहसपूर्ण साजिश रची।

इधर शिवाजी ने नये-नये किले जीतने के लिए अपने सरदारों को दूर-दूर तक दौड़ाया और शक्कर की बुवाई करने में माहिर अपने कुशल राजदूत सोनोपंत डबीर को औरंगजेब के पास भेज दिया। किस लिए ? तो तब तक बीजापुर के चंगुल से छुड़ाये हुए सब किलों, दुर्गों, भू-प्रदेशों तथा बंदरगाहों को औरंगजेब से मान्यता प्राप्त करने। जीते बीजापुर से; मान्यता दिल्ली से! शिवाजी की तलवार जितनी तेज थी, उसकी बुद्धि भी उतनी ही तीक्ष्ण थी। शिवाजी की ओर से प्राप्त प्रशंसोद्गारों से औरंगजेब फूला नहीं समाया। उसने खुशी में शिवाजी को अपनी रजामंदी का खलीता भेज दिया।

इसके बाद सात दिन भी बीते थे या नहीं, अपने गुप्तचरों से शिवाजी को एक 'अमूल्य' वार्ता मिली, औरंगजेब के कब्जे वाले जुन्नर की अपरंपार संपत्ति के बारे में। इस खबर के मिलते ही शिवाजी ने अपने अश्वों को मुगली मुल्कों में घुसा दिया। इधर जुन्नर में पहरेदारों की टोलियाँ शिवाजी की 'दिल्ली निष्ठा' से बेफिक्र होकर, होशोहवास खोकर, हुक्का-पानी तथा शराब-शवाब की मौजमस्ती में मशगूल थीं। शिवाजी अपनी टुकड़ियों के साथ मध्यरात्रि के घने अंधकार में सीढ़ियाँ लगाकर जुन्नर दुर्ग की दीवारें फांदकर अंदर धमक पड़ा। उसके सैनिकों ने जुन्नर की पूरी सम्पत्ति लूटकर इकट्ठी की और उसी गाँव के सात सौ उत्तम प्रजाति के अश्वों पर सब संपत्ति लादकर पुरंदर की ओर चल पड़े। उसके

बाद शिवाजी अहमदनगर को भी इसी तरह की 'भेंट' देकर, अपना हाथ साफ करते वापस लौट आया। औरंगजेब याने कुटिलता की प्रतिमूर्ति! उसके समान पातालयंत्री दूजा कोई नहीं था। "ऐसा होते हुए भी इस 'सीवा' ने मुझे चने चबवा ही दिये न?" यह देखकर वह आपादमस्तक आगबबूला हो उठा! "बगैर मेरे पूछे, मुझे अपनी भक्तिनिष्ठा अर्पित कर, धूप-दीप दिखाकर, आखिर उसी से ही मेरी दाढ़ी को आग लगा कर गया यह 'शिवा'! ठीक है, देख लेंगे।" शिवाजी का पूरा मुल्क नेस्तनाबूत करने का फरमान औरंगजेब ने अपनी फौज को दे दिया। उसका वह फरमान बाहर निकलने के पूर्व ही शिवाजी का धूर्त दूत रघुनाथ पंत कोरडे औरंगजेब के सामने हाजिर हुआ। उसने शिवाजी का पश्चात्तापदग्ध पत्र औरंगजेब को सुपुर्द किया। उसमें अपने द्वारा हुए अपराध के बारे में शिवाजी को कितना दुःख हुआ था, वह, और कितनी क्षमायाचना भरी पड़ी थी! तथापि उस पत्र में हो या पंत की बातों में, शिवाजी द्वारा की हुई लूट में से एक कौड़ी भी वापस देने की बात नहीं थी। महा आश्चर्य की बात यह थी कि औरंगजेब ने 'उदार अंतःकरण' से शिवाजी के इस अपराध को भी माफ किया था। "तुम्हारा पश्चात्ताप देखकर हमने तुमको बख्श दिया है। इसके आगे तुम हमारे पूरे यकीनमंद बनके रहोगे।" ऐसा जवाब रघुनाथ पंत के हाथों भेज दिया। क्या आश्चर्य था! नागसाँप के स्वभाव वाले औरंगजेब में ऐसी औदार्य की उर्मियाँ एकाएक कैसे उमड़ पड़ीं?

बात यह थी कि औरंगजेब का बाप शाहजहाँ बहुत बीमार पड़ा है, ऐसी खबर आ गयी थी। औरंगजेब याने 'पितृभक्ति का साक्षात् अवतार'! वह तुरंत अपने पिता की 'सेवा सुश्रूषा' करने दिल्ली की ओर दौड़ पड़ा। मुगलों के शाही खानदान की लोकप्रसिद्ध परंपरा भी वैसी ही उमदा थी! बीमारी की पीड़ा, साम्राज्य चलाने की चिंता आदि से अपने वालिद को अब और ज्यादा न तड़पाते हुए, उसे जल्द से जल्द अल्लाह ताला के पास भेजने का 'फर्ज' वह पूरी ईमानदारी के साथ निभा रहा था। इस संदिग्ध परिस्थिति के बारे में शिवाजी को पूरी जानकारी होने के कारण ही उन्होंने अपनी "जुन्नर यात्रा' कार्यगत की थी। बख्श देने का नाटक कर औरंगजेब

दिल्ली की ओर तो निकल पड़ा, लेकिन शिवाजी द्वारा दिया हुआ गर्म हवा का अहसास वह अपनी जिंदगी में कभी भूल नहीं पाया। अव्वल बात तो यह थी कि शिवाजी महाराज ने पूरे जन्म भर बख्शने का मौका ही उसे नहीं दिया।

शिवाजी महाराज एक हाथ से बीजापुर के तख्त को हिला रहे थे और दूसरे हाथ से दिल्ली के शहंशाह की दाढ़ी को भी झटका दे रहे थे। इसके आगे दक्षिण की नोक से उत्तर के आखिरी छोर तक समूचा हिंदुस्थान उनके अथक पराक्रम का खुला मैदान बन गया। १६५८ ई. के आरंभ का समय था और शिवाजी महाराज की आयु तब केवल अट्ठाईस साल की थी।

❖❖❖❖❖

प्रथम प्राणसंकट

– दैत्य–संहार

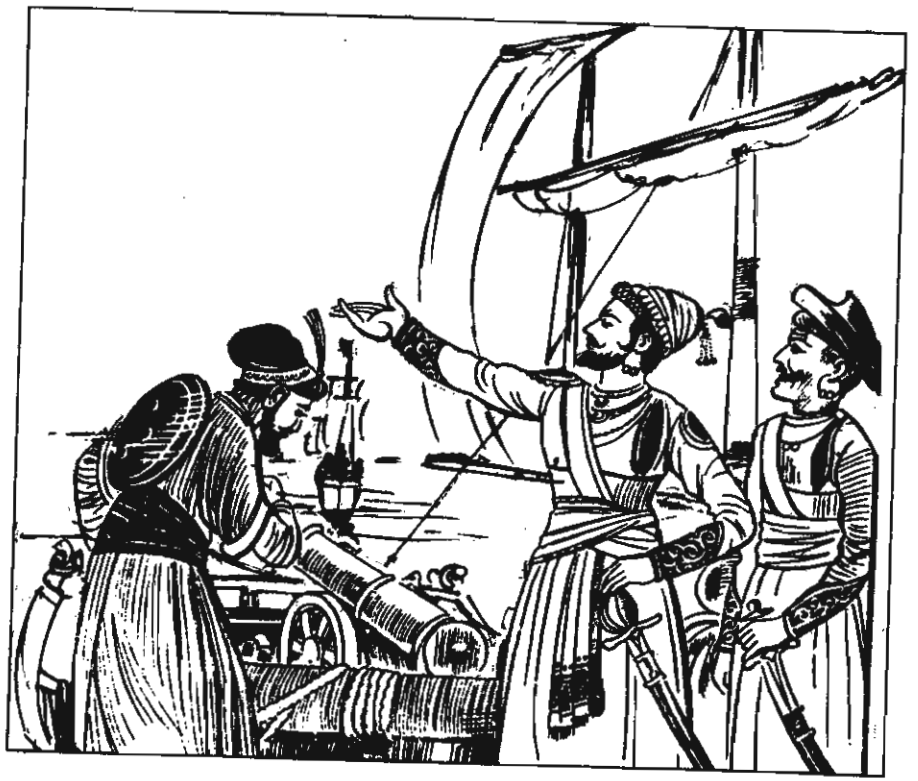

सागरी साहस का शुभारंभ

ईसवी १६५८ का वर्ष।

उधर औरंगजेब दिल्ली की ओर चल पड़ा। लेकिन जाते–जाते वह बीजापुर को शिवाजी के बारे में चेतावनी भरा एक पत्र लिखकर गया। उधर बादशाह शाहजहाँ की मौत के बाद मुगलिया रस्मो–रिवाज के मुताबिक मारधाड़, खूनाखूनी, झगड़े शुरू हो गये। ऐसा सुनहरा मौका शिवाजी महाराज कैसे जाया होने देते?

पिताजी की रिहाई के वास्ते ही हाथ से खो बैठे कोंडाणा दुर्ग पर सर्वप्रथम उनकी दृष्टि गयी। उनके साहस की एक ही छलांग में वह किला उनके कब्जे में आ गया। भगवा ध्वज कोंडाणा पर गौरव से फहराने लगा। उसके बाद जंजीरे के सिद्दी को भी एक बार अपने खड्ग का मजा चखाकर वे लौट आये। अब तो महाराज के सरदारों की बिजली जैसी तलवारें गुलामी के अंधकार का सीना चीरकर सब ओर स्वातंत्र्य का स्वर्णिम प्रकाश फैलाने के लिए बहुत आतुर थीं। अपने प्रिय सूरमाओं में से हर एक को एक किले का नाम बताकर महाराज ने भेज दिया। महाराज का शब्द सुनने भर की देरी, वे सब आवेश भारित नर–वीर अपनी–अपनी टुकड़ियों के साथ उन दुर्गों पर चीतों जैसे बुलंद हौसलों के साथ हमला करने निकल पड़े। उनके प्रहारों से विधर्मी बादशाहों द्वारा जकड़ी हुई दास्य–दौर्जन्य की शृंखलाएँ तड़तड़ा कर टूटने लगीं। देखते ही देखते, चालीस गढ़–किलों ने अपनी मुक्तता का निःश्वास छोड़ा। पुरंदरगढ़ का प्रचंड दुर्ग तथा कल्याण का किला भी इसी समय महाराज के वश में आ गया।

बाद में सागर पर प्रभुत्व स्थापित करने का विचार महाराज के मन में आने लगा। वे समझ चुके थे कि बिना समुद्र पर अधिकार के स्वराज्य पर मंडराने वाला संकट टल नहीं सकता। तब तक पश्चिम सागर–तट के सब ओर यूरोप से आए गोरे लोगों ने डेरा डाल दिया था। उनके नजाकत भरे, विनयशील और धूर्त व्यवहार के भुलावे में दिल्ली का बादशाह तथा बीजापुर का सुलतान दोनों ही आ गये थे। उनको खास इनाम तथा विशेष

सुख–सुविधाएँ प्रदान करते थे। किंतु, शिवाजी महाराज की दूरदृष्टि को उसमें एक भयंकर आपत्ति दिख रही थी। सागर के शत्रुओं का निःपात कर पश्चिम तट को सुरक्षित करना अपरिहार्य है, ऐसा उनको लगा। प्रबल एवं स्वतंत्र नौकादल का महत्व पहचान कर उसके त्वरित निर्माण के कार्य में वे जुट गये। विजयदुर्ग, सुवर्णदुर्ग, कल्याण आदि जलदुर्गों का निर्माण हुआ। समर नौकाओं एवं सागर योद्धाओं के दल सिद्ध हुए। राजा ने एक समर्थ, सक्षम नौकादल प्रमुख की नियुक्ति की।

उसी समय जावली के जंगल में सुभद्र जैसे प्रतापगढ़ का निर्माण पूरा हुआ था। एक सुसज्जित दुर्ग के रूप में प्रतापगढ़ खड़ा हो गया। उसकी तुलना उसी से करनी होगी, इतना अप्रतिम था वह! वहाँ एक अप्रतिम शिवलिंग प्राप्त हुआ। मानो इस नूतन दुर्ग के अधिदेवता के रूप में वहाँ पर साक्षात् भोलेनाथ ही आकर खड़े हो गये। केदारेश्वर के अभिधान के साथ उनकी प्राणप्रतिष्ठापना की गयी। आगे चलकर, महाराज का जीवनसाथी बनकर उनकी अमर कीर्ति का भागीदार बना 'भवानी खड्ग' इन्हीं दिनों राजा के म्यान में आ बैठा। स्वराज्य के औरस युवराज संभाजी का जन्म हुआ। "प्रति शिवाजी" ऐसी ख्याति प्राप्त नेताजी पालकर स्वराज्य का सरसेनापति बन गया।

इस प्रकार अनेक शुभ संकेतों का आगमन एक साथ हो गया। कोई महाप्रचंड योग–समवाय ही आ रहा था। किसी महत्तर सिद्धि के लिए पीठिका तैयार हो रही थी।

शिवाजी की छेड़खानी से तो उधर बीजापुर का दरबार गुस्से की आग में झुलस रहा था। हर दिन कोई न कोई किला उनके हाथों से फिसलता जा रहा है, ऐसी खबरें मिल रही थीं। सबको उसी का अचंभा था, डर भी! बीजापुर की ताकत उस बदमाश शिवाजी से सौ–गुना ज्यादा होते हुए भी, उसको नेस्तनाबूत करना आदिलशाह के लिए क्यों नामुमकिन बना था? उसके दरबार में सबसे ज्यादा गुस्सेवर बनी एक हस्ती थी – अली आदिलशाह की सौतेली माँ, बड़ी बेगम साहिबा उर्फ उलिया जनाबा! उसने तो मन ही मन में शिवाजी को कितनी बार खौलते तेल की कढ़ाई

में झोंककर छौंक दिया था, यह सिर्फ वह अल्लाह ही जाने! मिजाज में तो वह विषैली नागिन ही थी। अपना रौब मनवाने के लिए उसने मोहम्मद खान और बहलोल खान जैसे नामीगिरामी सिपहसालारों के सिर कलम करवाये थे।

शिवाजी की गुंडागर्दी को अब तो खत्म कर ही देना चाहिए, ऐसा फैसला उसने किया। बाप के जरिए बेटे के नाक में लगाम डाल सकूंगी, ऐसा भ्रम उसके मन में बाकी था। शाहजी को सुल्तान के नाम से एक खलीता रवाना हुआ। "अब आप के छोरे की बगावत बहुत हो गयी। उसे फौरन रोको, नहीं तो नतीजा बहुत बुरा होगा।" अपना पुत्र इतना प्रतापी हो गया है, यह देखकर पिता को अति आनंद हुआ। उन्होंने दो टूक उत्तर भेज दिया, "बेटा मेरी बात नहीं मानता। जो करना है सो करो।" बड़ी बेगम की पहली चाल नाकाम हुई। शाहजी के जवाब से उसके मुँह पर कालिख पुत गयी। "देखो, बाप–बेटे दोनों ही 'हरामखोर' निकले।" ऐसा उसने नतीजा निकाल कर अपने दिल की तसल्ली कर ली। अब? उन दोनों को अलग–अलग ही खत्म करना चाहिए; इसमें पहली बारी शिवाजी की।

उलिया बेगम ने अपने सभी सरदारों, सिपहसालारों और सूरमाओं को बुलावा भेजकर दरबार–ए–खास का इंतजाम किया। बाईस प्रमुख सरदारों और अनगिनत मराठा–पठान–हब्शी सूरमाओं का जमघट हुआ। बादशाही तख्त के सामने एक चौरंग, उस पर एक तश्तरी और उसमें एक बीड़ा रखा था। शिवाजी को मिटा देने की हिम्मत रखने वाले, मर्दानी सीने वाले शमशेर–बहादुर को आगे आकर वह बीड़ा उठाना था।

दरबार का पूरा माहौल संजीदगी से भरा था। तब तक शिवाजी की इतनी दहशत छा चुकी थी कि कोई भी दरबारी अपना सीना तानने और सर उठाने को तैयार नहीं था। रुस्तमों, सूरमाओं, सरदारों के लटकते मुँह देख कर उलिया जनाबा का गुस्सा और भी भड़क उठा और वह चिल्लायी, "क्या, तुम में से कोई भी शिवाजी को जिंदा या मुर्दा पकड़ कर लाने को तैयार नहीं?" उस नागिन का यह फूत्कार सुनने के बाद भी

दरबार में सन्नाटा! जानलेवा सन्नाटा!

तभी दरबार के बीचों–बीच से पहाड़ जैसा एक जिस्म उठ खड़ा हुआ। पूरे दरबार में ही कंपकंपी मचाने वाली अपनी चाल से वह आगे बढ़ा। तश्तरी से वह बीड़ा अपने हाथ में उठाया। अफजल खान! वही था अफजल खान! उसने ऐलान किया, "मैं शिवाजी को गिरफ्तार कर, हुजूर के सामने पेश करूंगा।" दरबार में तुरंत बिजली–सी चमक उठी। वहाँ का धुंधला हुआ माहौल एकाएक बदल गया। उलिया बेगम का दिल तो फूले नहीं समाया। सब ओर जोश–उल्लास का उबाल आ गया। मानो जब अफजल खान ठान लेता है, तो वह काम पूरा हो जाता है। दरबार–ए–खास बुलाने का मकसद हासिल हो गया।

फौरन खान की बेतहाशा तैयारियाँ शुरू हो गयी। बारह हजार राउत (घुड़सवार), दस हजार लश्कर, बारह सौ ऊँट; साथ में पालकी, मेणा, गोलाबारूद, रसद, बाजारू चीजें और क्या कुछ नहीं था? इसके अलावा बेशुमार धन–दौलत। मानो इतना कुछ उस 'पहाड़ी' चूहे को पकड़ने के लिए काफी नहीं था; खान को अकेले में बुलाकर बादशाह और बेगम दोनों ने मशविरा दिया, "प्यार की चादर ओढ़ो। दगा करो। शिवाजी को खत्म करो!" बाद में दोनों ने खान की इतनी तरीफ की कि खान खुशफहमी से फूल गया। बादशाह ने तो अपनी खुद की हीरों से जड़ी हुई म्यान की खास कटार खान को बक्शीश के तौर पर देकर उसे विदा किया। खान के साथ मशहूर पठान, अरबी, हब्शी सरदार भी निकल पड़े और नामी मराठा बहादुर भी! और राजदूत कौन था? खान का सबसे बड़ा भरोसेमंद एक मुत्सद्दी ब्राह्मण – कृष्णाजी भास्कर कुलकर्णी!

लेकिन इन सभी तैयारियों से भी बड़ी भयानक बात एक और थी – खुद अफजल खान की शख्सीयत! खान याने साक्षात् महिषासुर का अवतार! अपनी देह के जैसा ही वह दिल से भी एक भयंकर दैत्य ही था। अपने पराक्रम तथा क्रोध में भी वह अतुलनीय था। विश्वासघात में उसका हाथ पकड़ने वाला कोई नहीं था। हिंदू द्वेष उसमें कूट–कूट कर भरा था। "मैं बुत–शिकन (मूर्तिभंजक) हूँ" जैसे शब्दों से वह बड़े गर्व के साथ अपनी

पहचान कराता था।

भोंसले कुल के साथ तो उसका कटु बैर था ही। शाहजी राजा को सांकलबेड़ियाँ पहनाकर खींचते हुए बीजापुर के रास्तों से उनका जूलूस निकालने वाला हृदयशून्य राक्षस यही था। कर्नाटक में कनक गिरि के घेरे के समय शिवाजी महाराज के बड़े भाई संभाजी राजा की धोखे से हत्या करने वाला क्रूरकर्मी यही था। अब शिवाजी भोंसले ने इसी जहरीले साँप की पूँछ पर अपना पैर रख कर उसे उकसाया था। ध्यान रखें कि समूचा जावली का जंगली मुल्क अफजल खान की जागीर का हिस्सा था। अब उसी जावली के बीचों–बीच शिवाजी ने प्रतापगढ़ खड़ा कर लिया था। तो फिर बताइए, खान का गुस्सा जायज था या नहीं? क्रूरता, छल, छद्म में वह सबसे आगे था। उसकी मुद्रा पर अंकित वाक्य देख के ही अंदाज लगा सकते हैं कि उसे कितना गरूर था, "यदि सवाल उठा कि सबसे श्रेष्ठ शख्स कौन है तो 'अल्लाह', 'अल्लाह' के बजाय 'अफजल', 'अफजल' ऐसा ही जवाब आयेगा।" याने सरल अर्थों में वह अल्लाह से भी बड़ा था। उसकी शख्सीयत का प्रभाव भी उसी प्रकार दूर–दूर तक फैला था। सिर्फ उसका नाम लेना ही काफी था, ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि बड़े–बड़े सूरमा स्वयं ही अपने हाथ बांधकर उसकी शरण में आ चुके थे। सिंहल द्वीप तक उसके नाम के भय की आँच पहुँची थी। एक बार औरंगजेब को भी अफजल की खौफनाक शख्सीयत का मजा चखने को मिला था, चूंकि उसका नसीब अच्छा था इसलिए वह बच के निकल गया। घटना इस प्रकार घटी थी। औरंगजेब जब दक्खन का सूबेदार था, तब बीजापुर की फौज के साथ उसका पाला पड़ा था। बीजापुर के नामी सरसेनापति खान मोहम्मद के अधीन अफजल खान भी एक सरदार था। अफजल खान के अंगारों जैसे शौर्य के सामने औरंगजेब का खेल नहीं चल सका। घुटने टेककर अफजल की शरण में जाने की नामुश्की उस पर आ गयी। फिर भी औरंगजेब बड़ा चतुर; उसने खान मोहम्मद को क्षमायाचना का एक खत भेजा। साथ में अपने को कुछ हुआ तो अपना वालिद दिल्ली का बादशाह चुप नहीं बैठेगा, ऐसी चेतावनी देना भी नहीं भूला। खान मोहम्मद

डर गया। दिल्ली बादशाह से बैर महँगा पड़ेगा, ऐसा सोचकर उसने अफजल खान को पूछे बगैर औरंगजेब की खुशमिजाजी की। इससे अफजल खान बौखला गया और सीधा बीजापुर की ओर दौड़ पड़ा। वहाँ बड़ी बेगम के सामने दांत–होंठ भींचते हुए बड़े जोशोखरोश के साथ घटी हुई सब बातें बता दीं। खान मोहम्मद को फौरन बीजापुर लौट आने का फरमान रवाना हुआ। बेचारा खान मोहम्मद खुद के लिए वहाँ पर क्या परोस रखा है इससे बेखबर पालकी में बैठकर वापस निकल पड़ा। किले के अंदर प्रवेश कर ही रहा था कि उसके इंतजार में खड़े बादशाह के हत्यारों ने दरवाजे पर ही उसके टुकड़े–टुकड़े कर दिये। इस तरह, तब औरंगजेब के स्थान पर खुद सरसेनापति ही अफजल खान के गुस्से की आग का भक्ष्य बन गया। वह प्रसग याने अफजल के क्रोध–प्रतिशोध का लक्ष्य बनने वालों का क्या हश्र होता है, इसका यह एक जीता–जागता उदाहरण था।

इतना महान, शमशेर–बहादुर, स्वभाव से क्रूर और पातालयंत्री ऐसा यह सरदार अपने साथ बड़ी भारी फौज का काफिला, साजोसामान, नौकर–चाकरों के साथ शिवाजी को जिंदा निगलकर, अपने गले की ठंडक मिटाने निकला था। भारत की भाग्यदेवी भी पल भर के लिए स्तंभित रह गयी; अब कहाँ था शिवाजी या स्वराज्य के जीवनदान का भरोसा?

बीजापुर से निकलने के बाद उस बेशुमार फौज ने चार मील की दूरी पर पहली रात का पड़ाव डाला। तभी अफजल के पहाड़ जैसे प्रिय हाथी 'फत्ते–लश्कर' की अचानक मौत की दिल दहलाने वाली खबर मिली। मुहिम के पहले कदम पर ही यह बद–सगुनी, लेकिन सगुन–बदसगुनी से सरफिरा बननेवाला डरपोक वह नहीं था। अपने सरलश्कर अफजल का हौसला बनाये रखने के लिए बादशाह ने अपना खुद का हाथी उसे दे दिया; उसे धीरज बंधाया और उत्साहित कर आगे भेज दिया। फत्ते–लश्कर मर गया तो भी अपना लश्कर फतेह पाकर ही रहेगा, ऐसा कहते खान चल पड़ा। किंतु शिवाजी के साथ अपना मुकाबला है, इस सोच से अंदर

अंदर उसका सीना दब गया था। अब खुद भी वापस आयेगा या नहीं, यह अंदेशा उसे बीजापुर छोड़ने के पहले से ही त्रस्त कर रहा था। इसका समुचित बंदोबस्त करने के बाद ही वह निकला था। बंदोबस्त इस प्रकार था। अपनी मौत के बाद अपनी बेगमें, एक या दो नहीं पूरी ६४, गैर–मर्दों के हाथ लगकर उनका 'पातिव्रत्य' भंग न हो! कितना उदात्त विचार! इसलिए वह निरंतर आठ दिनों तक सबके विलासी सहवास में रहा और एक–एक कर सबको मौत के घाट उतार दिया। इस तरह उसकी ६३ बेगमों ने, कल होने जा रही खान की विरह वेदनाओं से आज ही, मुक्ति हासिल की! लेकिन एक बेगम, किसी प्रकार उसके हाथों से छुटकारा पाकर भाग खड़ी हुई थी किन्तु दर्द–ए–दिल खान साहब को वह भागना मंजूर नहीं था। अतः खान ने उसका पीछा किया और उसकी बोटी–बोटी कर दी। इस रीति से खान ने अपना 'कौटुंबिक कर्तव्य' पूरा किया। आज भी बीजापुर में खड़ी कब्रें इसकी साक्षी है। कुल मिलाकर ६३ कब्रें एक साथ और अलग से एक कब्र आज भी वहाँ देखने को मिलती है। यह उस बेचारे अफजल की भी गलती नहीं थी। जहाँ वह पाल–पोस कर बड़ा हुआ था, वहाँ के संस्कार–संस्कृति वैसी ही थी।

यह दूसरा चित्र भी देखिए। एक हिंदु वीर समरांगण के लिए निकलता है, तो पहले माता को नमस्कार, उससे आशीर्वाद; पत्नी से भाल पर कुंकुम–तिलक, आरती, फिर हार्दिक विदाई! यह है इस भूमि की, संस्कृति, शिक्षा!

इधर अपने ये 'सत्कर्म' खत्म कर अपने दिलोदिमाग से बेफिक्र होकर अफजल शिवाजी पर हमला करने निकल पड़ा।

..... २ .....

अपना प्रथम प्रहार शिवाजी के मर्मस्थल पर ही करना है, ऐसा निश्चय कर खान आगे बढ़ने लगा अर्थात् तुलजापुर की भवानी पर! समूचे महाराष्ट्र की माँ! शिवाजी की कुलदेवी! वही अब इस महिषासुर की पहली बलि होने जा रही थी।

खान तुलजापुर पहुँचा। मार्ग भर में प्रलय, विध्वंस, आगजनी, लूटपाट का तांडव करते हुए सीधा भवानी मंदिर पर ही धावा बोला, विकट अट्टहास से खान ने उस अष्टभुजा देवी को संबोधित करते हुए कहा – "अब दिखा अपनी करामात! बताऊँ तेरी अस्मत!" ऐसा चिल्लाते हुए उसने मूर्ति पर प्रहार किया। भवानीमूर्ति भग्न हो गयी। चूर–चूर होकर गिर पड़ी। खान ने फौरन एक गाय मंगवायी और गर्भगृह में ही उसे काट डाला। उसी खून से टूटी मूर्ति का 'अभिषेक' किया। उसके राक्षसी जबड़े से उछल रहा विकराल हास्य जारी ही रहा। जब इतना कुछ हो रहा था, अनेक विख्यात मराठा शूरवीर सरदार, सैनिक वहीं पर मूक प्रेक्षक बन के खड़े थे। उन में स्वयं शिवाजी के नजदीकी रिश्तेदार भी थे। हिंदू समाज को चिपका हुआ एक घोर अभिशाप! दाहिर के काल से ही सताते आया, शिवाजी के समय भी सताता हुआ, वह आज भी हमें सता रहा है। गो–रुधिर का छिड़काव करने के बाद उसी स्थान पर खान ने एक मस्जिद बनवायी।

तदनंतर उसकी घिनौनी, कराल नजर पंढरपुर की ओर मुड़ गयी। वहाँ पर भी उसी दारुण, भीषण कथा का पुनरावर्तन! किंतु, किसी अगम्य रीति से विट्ठल की मूर्ति शैतान के हाथ लगने से बच गयी। उसके बाद बारी कोल्हापुर की। सभी जगहों पर उन्हीं कुकर्मों की कहानी दोहरायी गई। विध्वंस, हत्या, शोषण, अत्याचार, बलात्कार, लूटपाट, गोहत्या, मंदिरों के स्थान पर मस्जिदों का निर्माण।

शिवाजी महाराज के कानों तक ऐसी खबरें एक के बाद एक आकर टकराने लगीं। एक से बदतर एक भीषण समाचार! बीजापुर के भरे दरबार में बीड़ा उठाकर कसम खाकर अफजल खान निकल पड़ा है, यह सूचना अपने गुप्तचरों से तब तक शिवाजी को मिल चुकी थी। इसके अलावा, गुप्त रीति से बड़ी बेगम ने खान से की हुई कानाफूसी के आखिरी मंत्र की खबर भी पहुँच गयी थी। यह सब सुनकर, जीजामाता के हृदय में तो मानो आग ही लग गयी। स्वराज्य के ऊपर धावा बोलते आ रहे उस राक्षस के सामने अपने पुत्र की क्या दशा होगी, इस चिंता से उसका अंतःकरण

चीखने लगा। शिवाजी महाराज तब राजगढ़ के समीप शिवपट्टण में थे। साथ में थे उनके सब सखा–संगी एवं राजकार्य धुरंधर, मुत्सद्दी सबके हृदय चिंता से व्यथित थे, आतुर थे। तुलजापुर, पंढरपुर आदि की घिनौनी घटनाओं का बदला लेने महाराज जरूर उतरकर निचले इलाके में आयेंगे, ऐसा सामान्य लोग मानकर चल रहे थे। धर्मरक्षक 'ईश्वरावतारी' महाराज यह सब जानते हुए भी अब तक चुपचाप क्यों और कैसे बैठे हैं? अफजल खान का कुटिल, कुतंत्री सोच भी वैसा ही था कि ये सब हृदयविदारक घटनाएँ देखकर शिवाजी क्रोध में आपे से बाहर होकर तुरंत अपने ऊपर हमला करने मैदानी क्षेत्र में उतर आयेगा। अब पहाड़ों में रहने वाले उस 'पहाड़ी चूहे' को पकड़े भी तो कैसे?

किंतु, शिवाजी महाराज भी 'सेर पर सवासेर' थे। अपनी क्रोध की ज्वाला को उन्होंने इसलिए सँवार के रखा ताकि समय आने पर अपना इच्छित साध्य करने वह कई गुना अधिक प्रखरता से भड़क उठे। अब यदि नीचे उतर जाएँ तो भवानी के भग्न होने के साथ साथ स्वराज्य की मूरत भी चूर–चूर हो जायेगी, ऐसी जागरूकता भरी दूरदृष्टि उन्हें थी। उनकी नजर सदैव अंतिम लक्ष्य पर रहती थी। उसी दृष्टि से, वे अभी भी अविकंपित बुद्धि से चिंतन कर रहे थे। इस दैत्य का सामना व संहार किस प्रकार किया जाय? उसकी अपार फौज की तुलना में अपने लड़कों की टोली किस पेड़ की पत्ती? खुले मैदान में उसका सामना करना असंभव था। तो फिर कहाँ, किस प्रकार इस असुर का मर्दन करें? कार्य सिद्धताओं के साथ–साथ उनके मन में माँ भवानी का ध्यान भी निरंतर चल रहा था। आखिर एक बार उन्होंने अपने सब सहयोगियों को बुलाकर उनके सामने अपना मंतव्य, संकल्प दोहराया, "समस्त सेना को युद्ध के लिए सन्नद्ध रखें। जावली में खान का सामना करेंगे। अब हम प्रतापगढ़ जायेंगे।" यह कृतनिश्चय सुनकर, महाराज के वीर साथियों के कठोर सीने में भी क्षण मात्र के लिए धस्स् (धक्) हुआ। ऐसा दुस्साहस महाराज न करें; खान के साथ सुलह करना ही उचित रहेगा, वे सब एक कंठ में ऐसी सलाह देने लगे। परंतु महाराज खान को बड़ी अच्छी तरह से पहचानते थे। खान के

साथ समझौता याने स्वराज्य तो डूबेगा ही; किंतु अपनी कहानी भी समाप्त होगी! महाराज ने निर्धारयुक्त वाणी में अपना जीवन–कार्य सभी सहयोगियों के सामने विशद किया, "प्राचीन काल में जैसा श्रीराम ने रावण का मर्दन किया था, जिस तरह श्रीकृष्ण ने कंस का ध्वंस किया था; उसी प्रकार इस दैत्य का संहार कर धर्मस्थापना करूंगा। उसके लिए ही मेरा जन्म है। मृत्यु के मुख में भी महाराज के हृदय में कितना अदम्य आत्मविश्वास! अंतिम विजय के बारे में कितना अविचल भरोसा! अपने जीवित कार्य के बारे में कितनी प्रखर आत्मप्रतीति!

इसके बाद तंत्र–युद्ध आरंभ हुआ। उधर मगरमच्छ को मरुभूमि पर खींच लाने की तरह शिवाजी को मैदान में खींच लाने की सोच मे डूबा अफजल, तो इधर पानी में हाथी को खींच लाने की तरह खान को जावली के अरण्यों में घसीट लाने के महासज के प्रयत्न। पहली चाल में ही अफजल विफल रहा। अपने श्रद्धा–स्थानों, मंदिरों का विध्वंस असहनीय होकर उद्विग्न मनःस्थिति से शिवाजी खुद ही उतर आयेगा, ऐसी उसकी जो अटकलें थीं, वह पोली साबित हुई। तब उसने दूसरी चाल का फाँसा फेंका। उसके सूबे में ही रहने वाला शिवाजी की पत्नी का बड़ा भाई बेचारा बजाजी नाईक निंबालकर को खान ने अकस्मात गिरफ्तार कर, अपने सामने पेश करवाया। बजाजी, बीजापुर का निष्ठावान सेवक! उसकी सुन्नत करवाकर उसे हाथी के पैरों तले रौंदने का निश्चय खान ने किया। इस तरकीब से तो अपने साले की जान बचाने शिवाजी दौड़ता चला आयेगा, ऐसी उसकी धारणा थी।

उसके उत्तर में महाराज ने एक प्रतिचाल ढूंढ निकाली। खान की खिदमत में ही निंबालकर का एक आप्त नायकजी राजे पांढरे नामक एक बड़ा सूरमा भी था। उसको शिवाजी महाराज ने गुप्त रीति से एक पत्र भेज दिया। 'कुछ भी करके, जुर्माना देकर क्यूँ न हो, निंबालकर को छुड़वाइए।" निंबालकर के बारे में पांढरे के मन की पुरानी आत्मीयता जाग्रत हुई। वह निकल पड़ा, सीधा अफजल खान के डेरे में दाखिल हुआ और निंबालकर की रिहाई की मांग की। खान के सामने एक विकट,

विपरीत और पेचीदा प्रसंग प्रस्तुत हुआ। इन मराठा सरदारों में अपने दीन या रियासत का ईमान हो न हो; अपनी अहमियत का गरूर तो जरूर रहता है। इसलिए उन्हें इस बाबत उकसाना नहीं चाहिए, यह खान को अच्छी तरह से पता था। इसी कारण जंग के ऐसे नाजुक माहौल में नायकजी राजे जैसे मातबर सरदार की बेइज्जती करना गहरे खतरों से खाली नहीं था। तो ठीक, ६०,००० होन्न का जुर्माना देने के बाद बजाजी को छोड़ दिया जायेगा। खुद नायकजी राजे ने ही जमानत अदा की और बजाजी को छुड़वाकर लाया। खान की इस दूसरी तरकीब पर भी पानी फिर गया।

आखिर, खान जावली से तीस मील दूर वाई में आ गया। अफजल के बीजापुर छोड़ते ही सुल्तान ने मावल के सभी देशपांडे–देशमुखों को एक तगड़ा फरमान भेज दिया था। "शिवाजी का कांटा निकालने के लिए निकल पड़े अफजल खान को आप लोग सब तरह की मदद करेंगे; तो आप की सरफराजी होगी। यदि इस हुक्म के खिलाफ गये तो आप की खैरियत नहीं।" वह फरमान देखते ही अनेक देशमुखों के हाथ–पैर ठंडे पड़ गये। खंडोजी खोपड़े तथा उसी के जैसे कई स्वार्थी लोग तो सीधा जाकर खान के खेमे में शामिल हो गये।

परंतु, स्वराज्य की सेवा करने के लिए प्रतिबद्ध भी कुछ लोग थे। मावल के देशमुखों में कान्होजी जेधे अत्यंत जेष्ठ एवं प्रभावशाली व्यक्ति। सुल्तान का फरमान हाथ में आते ही, वह अपने पाँचों वीर पुत्रों के साथ अश्वारूढ़ होकर महाराज के पास आया। तुलसी–पत्र से जल छोड़ते हुए, सौगंध लेकर, उसने स्वराज्य रक्षा के लिए अपनी प्रतिबद्धता दोहराई। शिवाजी की सहायता करने शाहजी राजा द्वारा भेजे गए उनके अपने चहेते, एकनिष्ठ, पराक्रमी सरदारों में से वह एक था। कान्होजी स्वयं तो आया ही साथ में मावल घाटी के अन्य अनेक देशमुखों के मन को धीरज बंधाकर उन्हें भी स्वराज्य की सुरक्षा के लिए तैयार किया। इतने गहरे संकट की घड़ी में कान्होजी के आगमन से महाराज को हजारों हाथियों का बल प्राप्त हुआ।

आगामी महासंकट का सामना करने के लिए महाराज रात–दिन तैयारियाँ करने लगे। साथ ही साथ तुलजा भवानी का ध्यान, अर्चन भी अखंडित चल रहा था। एक दिन अचानक उनके सपने में माँ तुलजा भवानी की देदीप्यमान रूप झलका। महाराज ने भक्तिपूर्वक साष्टांग प्रणिपात किया। उनका हाथ पकड़कर उठाते हुए जगन्माता ने कहा, "पुत्र, चिंता न कर; तेरी विजय निश्चित है। अब मैं तुम्हारे खड्ग में ही रहूंगी।" ऐसा कह वह अतुल तेजोराशि महाराज के खड्ग में प्रवेश कर अंतर्धान हुई। महाराज जग गए। तुरंत जीजामाता, नेताजी पालकर, सोनोपंत डबीर आदि सबको बुलावा भेजा गया। उनको देवी से प्राप्त दिव्य वरदान के बारे में बता दिया। "युद्ध नहीं, संधि करना ही उचित रहेगा।" ऐसा कहने वाले सहकारियों के मन में इन बातों से धैर्य बंध गया। महाराज को 'मृत्युंजय' का ही बल प्राप्त हुआ। परंतु, दूरदर्शी महाराज ने अपने सहयोगियों को कुछ विवेक की बातें भी बता दीं। "जीजामाता तथा पुत्र संभाजी को राजगढ़ पर ही ठहरा दीजिए। यदि मैंने खान का निःपात किया, तो चिंता की कोई बात नहीं। परंतु युद्ध में अकस्मात् मेरी प्राणहानि हुई, तो संभाजी को दायित्व सौंपकर संघर्ष जारी रखिए।" ये बातें सुनकर सबके अंतःकरण में खलबली मच गयी।

परंतु महाराज का मन सह्याद्रि के शिखरों जैसा अचल, शांत था। वे अंतिम विजय की तैयारियों में तल्लीन हुए। उसी समय एक व्यक्ति शिवाजी के साथ अपना पुराना हिसाब चुकाने की प्रतीक्षा एवं फिक्र में था। जावली का चंद्रराव मोरे! वह तो अब खान का निजी सलाहकार बन बैठा था। खान के दुस्साहस से जावली यदि मुक्त हुई तो वह फिर से अपने हाथों में ही आयेगी, ऐसी उसके मन की आस तथा चाहत थी। इसी कारण वह खान को जावली बुला लाने के लिए बड़ा बेताब था। यह बात भी गुप्तचरों ने महाराज तक पहुँचायी। अच्छा ही था, उनकी योजना में ये बात भी पूरक ही थी। तुरंत उन्होंने सरसेनापति को बुलाकर, आवश्यक सब सिद्धताओं से सन्नद्ध होकर जावली के घोर अरण्य में छिपकर, 'मुहूर्त' की प्रतीक्षा में बैठने का उसे आदेश दिया। स्वयं भी प्रतापगढ़ को प्रयाण करने सिद्ध हुए। अपने साथ प्रतापगढ़ कौन–कौन आएँगे, इसकी सूचना भी उन्होंने भेज दी।

उसके पहले ही सबसे कठिनतम ऐसे एक प्रसंग का अनिवार्यतः सामना करना था। माँ जीजाबाई से विदाई लेने का। शिवाजी को विदाई देना याने जीजामाता का हृदय निचोड़ देने वाला घोर प्रसंग। एक माँ का अंतःकरण! साधारण माता के लिए बच्चे के जन्मकालीन प्रसूति–वेदनाओं का अनुभव तो वहीं समाप्त होता है। तथापि वीर–माता के लिए, उसमें भी शिवा की माता के लिए, उन पीड़ाओं का बार–बार अनुभव करते रहना ही नसीब होता है। अपने पुत्र को एक के बाद एक संकट के अंदर प्रवेश करते देखते रहना याने प्राणांतक यातनाएँ ही। और यदि उस संकट से पार होकर आया, तो उसका पुनर्जन्म ही! अब तो जीजाबाई के बचे हुए एक मात्र पुत्र को साक्षात् मृत्यु के जबड़ों में ही भेजना था और वह निर्बाध रूप से पार हो, ऐसी माँ जगदंबा से मनौतियाँ करते बैठना था! एक क्षण के लिए उनको लगा कि, 'शिवा, मत जा' कह दूँ। किंतु वह थी शिवाजी की वीर माता! उन्होंने स्वयं ही उसे इस महान कार्य के लिए प्रेरणा दी थी। अब किस मुँह से वह उसे मना करेगी? ठीक है, जैसी भगवती की इच्छा! चरणों पर पड़े पुत्र के सिर पर हाथ रखकर कहा, "शिवा, यश तेरा ही होगा; तू वैभवशाली होगा। जाओ, जयशाली होकर लौट आओ! परंतु विवेक से काम करना। संभाजी का प्रतिशोध भूलना मत!"

अंत में, विदाई के आखिरी शब्द के रूप में माता द्वारा दिलाया गया बड़े भाई की हत्या के प्रतिशोध का स्मरण! शिवाजी का यदि इस गर्भ में नहीं, तो क्या किसी ऐरे गैरे गर्भ में जन्म लेना संभव था?

जाने से पहले महाराज अपनी पत्नी से मिले; बछड़े संभाजी को सीने से लगा लिया। स्थिर मन एवं कृतसंकल्प के साथ प्रतापगढ़ की ओर कदम बढ़ाया।

..... ३ .....

उधर अफजल खान का आत्मविश्वास धीरे–धीरे डिगने लगा था। अपने अनुकूल ऐसे मैदानी रणक्षेत्र में दुश्मन को खींच लाने में वह असफल रहा था। अब तो १६५५ ई. का जुलाई आया; वर्षा काल का आरंभ हो चुका था। ऐसे समय में, पश्चिम घाट की धुंआधार बरसात में जावली जैसे घोर अरण्य में अपार फौज के साथ प्रवेश करते हुए प्रतापगढ़ में छिपकर बैठे उस 'चूहे' शिवाजी को पकड़ना नामुमकिन! मानो वह खुद ही एक बार किसी भी बहाने सामने आ गया, तो आगे का काम चुटकी में होगा। बड़ी बेगम का कानमंत्र ही खान का समर सूत्र था!

इधर, शिवाजी महाराज प्रतापगढ़ पहुँच गए। खान की प्रचंड फौज तथा उसकी तैयारियों की खबरें उनको प्रतिदिन बराबर पहुँच रही थी। स्वराज्याधीन सब गढ़–किले जीतकर खान उनको ध्वस्त कर रहा है, ये समाचार भी प्राप्त हो रहे थे। उसी समय महाराज की धर्मपत्नी रानी सईबाई का देहांत हुआ इसकी खबर भी उन्हें मिली। जीवन–मृत्यु के बीच संघर्ष करते समय सईबाई ने भगवान से महाराज के कल्याणार्थ कितनी मंगलकामनाएँ, मनौतियाँ की होगीं; उसकी आत्मा कितनी छटपटायी होगी, यह सब केवल भगवान ही जाने। परंतु, घर के इस शोकसंतप्त प्रसंग में विलाप करते बैठने की फुरसत भी कहाँ थी? स्वराज्य पर आया हुआ सकट दूर करने के लिए उनकी एक–एक साँस परिश्रम कर रही थी।

हर एक मावला वीर महाराज के लिए अपना प्राण न्यौछावर करने बड़ी आतुरता से वहाँ पर इकट्ठा हो रहा था। तुलजापुर, पंढरपुर, कोल्हापुर आदि स्थानों पर मचाये गये विनाश–विध्वंस के तांडव ने उन सबको प्रक्षुब्ध बनाया था। टूटे–फूटे मंदिरों, देवताओं की भग्न मूतियों तथा मान–प्राणों की बलि चढ़ाने वाले बंधु–भगिनियों के आर्त स्वरों ने उन्हें क्रुद्ध किया हुआ था। भवानी माता के अपमान का बदला चुकाने उनका रुधिर खौल रहा था। अपनी–अपनी तलवारों, भालों की धार और भी तेज कर उन आयुधों का रक्तदाह ठंडा करने ही वे सब वीर योद्धा प्रतापगढ़ में एकत्र हुए थे, प्रस्फोट पूर्व के ज्वालामुखी के समान! उसी वक्त अपने

पाँच वीर पुत्रों तथा बारह मावल प्रांतों के प्रमुखों के साथ आये कान्होजी जेधे उनसे मिलने गये। इन सबके आगमन से प्रतापगढ़ वीरश्री से रोमांचित हो उठा।

शिवाजी महाराज के गुप्तचरों की मंत्रणा अत्यंत अद्‌भुत थी। अफजल खान के वाई पहुँचने से पहले ही महाराज के गुप्तचर स्थान–स्थान पर पहुँच चुके थे। उनसे खबर आयी, खान का दूत कृष्णाजी भास्कर प्रतापगढ़ पर शिवाजी से मुलाकात करने निकल पड़ा है। अब गढ़ को कुतुहल और चिंता ने घेर लिया। कृष्णाजी भास्कर का यथोचित स्वागत करने की रीति–नीति महाराज ने तय कर ली। अपेक्षानुसार खान का दूत गढ़ में आ गया। उसका सम्मानपूर्वक स्वागत किया गया। एक मित्र राज्य के राजदूत की भाँति उसके आदर–सत्कार, निवास आदि सब बातों की अति उत्तम व्यवस्था रखी गयी थी। विश्राम के बाद, कृष्णाजी महाराज के दर्शनार्थ आया। उसने उनके सामने अपना कथन प्रस्तुत किया। "अफजल खान साहब वाई पहुँच गए हैं। खान साहब तथा आपके तीर्थरूप पिताजी का अति पुराना स्नेह और सौहार्दभरा संबंध चला आ रहा है। इसीलिए आप खान साहब के बारे में अन्यथा धारणा मत रखिए। आपके स्वाधीन जो गढ़–किले हैं, वह सब खान साहब आप ही के लिए छोड़ देंगे। एक बार आप वाई आइए। आपके और खान साहब के स्नेह संबंधों का परिपोष करने उनसे अवश्य भेंट करिए।" खान द्वारा भेजी हुई शक्कर कृष्णाजी भास्कर ने वहाँ पर सबको बाँट दी।

शिवाजी महाराज भी अत्यंत सौम्यता से बोले, "अपने तीर्थरूप पिताजी के समान ही खान साहब भी हमारे लिए परम वंदनीय हैं। उनसे अवश्य भेंट करूंगा।"

कृष्णाजी भास्कर ने खान का पत्र शिवाजी को दिया। उसका जवाब कल दिया जाएगा ऐसा बताकर कृष्णाजी पंत को गढ़ पर ही उनके निवास स्थान भेजा गया। तदनंतर गढ़ में उपस्थित सब प्रमुख मुत्सद्दी लोग मंत्रणा के लिए तुरंत इकट्ठे हुए। वहाँ खान के पत्र का वाचन हुआ। उस पत्र की शैली दूत के स्वर से पूर्णतः भिन्न थी। "अब तो तुम्हारी

बदमाशी, गुंडागर्दी बढ़ती ही जा रही है। आए दिन तुम गढ़–किले निगलते ही जा रहे हो। एक आजाद शाही की हैसियत से तुम अपने निशान, विरुदावलि, मरातिब की नुमाइश करते घूम रहे हो। तुझे सीधे रास्ते पर लाने का जिम्मा सौंप कर, माबदौलत बीजापुर सुलतान ने भारी भरकम फौज के साथ हमें भेजा है। मेरे सब शमशेर–बहादुर तेरा नामोनिशान मिटाने के वास्ते बेताब हैं। वे सब तेरे साथ जंग छेड़ने के लिए मुझे उकसा रहे हैं। इसीलिए तुम्हें फर्माया जाता है कि तुम फौरन हमसे मुलाकात करो और अपने कब्जे वाले सब गढ़ किले जावली मुल्क के साथ हमारे हवाले कर दो।"

उस पत्र का उद्देश्य क्या था, यह शिवाजी तत्काल समझ गये। यदि उसे दुर्ग–किलों एवं भू–प्रदेशों की चाहत होती, तो वह युद्ध आगे बढ़ा सकता था। परंतु वह सब छोड़छाड़ कर मुझे याने शिवाजी को भेंट करने बुला रहा है। इसका सीधा मतलब था कि खान को वे सब बातें नहीं चाहिए, उसे चाहिए खुद शिवाजी याने स्वयं मैं!

शिवाजी महाराज ने अपने राजदूत का चयन किया। महाचाणाक्ष, परम निष्ठावान तथा चतुर व्यक्ति गोपीनाथ पंत! सत्तर की आयु वाले इस बुजुर्ग के केश का एक–एक रेशा राजकार्य में रहते ही सफेद हुआ था। सब लोग उन्हें आदर से 'काका' ही पुकारते थे। महाराज ने पंत काका को खान के साथ क्या बातें होनी चाहिए यह सूचित किया। खान का दूत कृष्णाजी भास्कर वापस लौटने से पूर्व अत्यंत विनम्रता से महाराज के सामने अपनी अर्जी रखी। "मेरे द्वारा जीते हुए सब गढ़–किले फौरन वापस करने का फरमान देकर खान साहब ने सुलह करने के वास्ते जो बुलावा भेजा है, वह सही मायने में मेरे ऊपर उनकी अपार मेहरबानी का ही प्रतीक है। खान साहब याने क्या! उनकी बहादुरी याने क्या! यकीनन आग! उन्हीं से ही सारा जहान चमक उठा है। उन्होंने वाई आने का हुक्म किया है; लेकिन मुझे डर लग रहा है। इसलिए खान साहब ही जावली में तशरीफ लाने की मेहरबानी करें, मुझे बख्श दें! अपने सब गढ़–किले जावली मुल्क के साथ उनको सुपुर्द करूंगा। खान साहब याने मेरे चाचा

ही हैं! उनका दीदार जरूर करना चाहूंगा।"

वाई आने का न्यौता महाराज मान लें इसलिए कृष्णाजी भास्कर ने उनका मन परिवर्तन करने का हर संभव प्रयत्न किया। परंतु उनका उत्तर अटल था। "वहाँ आने में मुझे डर लगता है। आज तक मैंने अनेक गुनाह किये हैं। मेरे लिए खान साहब पिता समान ही है। वे ही यहाँ जावली आकर मेरी उंगली पकड़कर बादशाह के पास ले जायें।" शिवाजी की ये बातें खान के दूत को भी सच लगीं। महाराज ने उसे यथोचित वस्त्र–प्रावरण देकर विदा किया, साथ में गोपीनाथ पंत भी निकल पड़े। उनके पास खान को प्रदान करने हेतु महाराज ने अत्युत्तम वस्त्रालंकार एवं एक पत्र देकर भेज दिया। वहाँ से प्रस्थान करने से पहले महाराज ने पंत काका को, "हर प्रकार से खान की आर्जव–मिन्नतें करिए; उसे जावली मुकाम पर ले आइए। हमारे बारे में खान का आंतरिक हेतु क्या है, इसका पता लगाइए।" ऐसा समझा–बुझा कर भेज दिया।

दोनों दूत दुर्ग से उतरे और वाई पहुँच गये। गोपीनाथ पंत की तीखी, भेदक नजर खान के समस्त सैन्य–संभार को अतिसूक्ष्मता से निहार रही थी। उसकी प्रचंडता, बलाढ्यता एवं संपन्नता पर उनकी नजर रुक गयी। इसके विपरीत, प्रतापगढ़ के अधनंगे, लंगोटधारी मावला सैनिकों का चित्र भी उनके मनःपटल पर आये बिना नहीं रहा। स्वराज्य का ग्रास निगलने आया यह जानलेवा संकट देख कर उनका हृदय विदीर्ण हुआ।

अपने पत्र के जवाब में शिवाजी ने क्या कहा होगा? इसकी चिंता खान को खाए जा रही थी। वह बड़ी बेसब्री से कृष्णाजी भास्कर की वापसी का इंतजार कर रहा था। तभी कृष्णाजी खान के डेरे में आया। एक अक्षर की भी गलती किये बिना उसने खान को सब हकीकत बयान की। शिवाजी कितना डर गये हैं; किस प्रकार वह खान साहब से माफी के वास्ते मिन्नतें कर रहा है; सब गढ़ दुर्ग बिना किसी हिचक या तकरार के छोड़ देने के लिए वह कितना बेताब बन गया है इत्यादि, इत्यादि। सुनते–सुनते ही खान गरूर तथा खुशी के मारे फूलता गया। उसे लगा

कि अपनी ताजी रोटी पूरी की पूरी घी की कढ़ाई में पड़ी है। उसने फौरन गोपीनाथ पंत को अपने पास बुला लिया। साक्षात् विनम्रता की जीती-जागती मूरत की भांति उसने कोर्निस करके नजदीक जाकर महाराज द्वारा दिया हुआ पत्र खान के सुपुर्द किया। साथ ही शिवाजी की ओर से लाए वस्त्रालंकार भी अर्पित किये, पत्र देखकर खान का चेहरा खिल उठा। "आज तक के मेरे सब गुनाह माफ कीजिए। इसके बाद ईमानदारी से हजरत बादशाह की खिदमत करता रहूँगा।" यही उस पत्र का निचोड़ था! गोपीनाथ पंत ने उसमें अपना सुर भी मिला दिया। शिवाजी का निहायती डर; खानसाहब के बहादुरी की भूरि-भूरि खुशामद; जावली खुद आकर; शिवाजी की उंगली पकड़ कर बादशाह के पास बुला ले जाइए ऐसा आर्त आग्रह; खुद खानसाहब और उनके सब फौजी सिपाही आएँ और जावली की वनशोभा, हवा-पानी का मज़ा चखें, इसके लिए महाराज की ओर से न्योता तथा हार्दिक स्वागत। ये सब सुनते-सुनते खानसाहब जन्नत से सिर्फ तीन उंगलियों के फासले पर आ पहुँचे। अपनी चाल अब सफल हुई है; अब शिवाजी मेरे जाल में पूरा फँस चुका है, ऐसा उसे साफ दिखायी देने लगा।

परंतु जावली जाना है, यह सोचकर उसके सीने में एक बार जरूर धस्स (धक्) हुआ। उन जंगलों की भीषणता, पहाड़ों के उतार-चढ़ाव आदि उसके लिए अनजान; ऐसी कितनी सारी बातें थीं! खान ने फिर से एक बार लंबे वक्त तक सोच लिया। "बेटा शिवाजी तो डरपोक निकला! ऐसी हालात में वह मुझे मेरी पूरी फौज के साथ जावली आने का आग्रह कर रहा है। यदि मैंने जावली जाने से इंकार किया, तो वह प्रतापगढ़ छोड़ के उतरेगा ही नहीं; वहीं पर छिपकर बैठ जाएगा या फिर एक किले से दूसरे किले पर फरार होता हुआ मेरे हाथ से फिसल जाएगा। और यदि वह आखिरी मौके पर जावली में मुझसे मुलाकात करने से ही कतरा गया तो? तब मेरी पूरी फौज वहाँ मौजूद होगी ही! और यदि वह अपने कहे के अनुसार मुलाकात के लिए आ गया तो? तब तो मामला ही खत्म होगा!" खान के इन विचारों की पुष्टि करने वाले उसके खास सलाहकार

कृष्णाजी भास्कर का आग्रह भी साथ में जुड़ गया। क्योंकि, शिवाजी की वे सब बातें प्रामाणिकता से भरी एवं यथार्थ ही थीं ऐसा पक्का विश्वास कृष्णाजी भास्कर को तब तक हो चुका था और अपनी रोटियाँ सेंकने के लिए "खान साहब मुझे भी साथ में जावली ले चलिए", ऐसा पैर पकड़कर मिन्नतें करने वाले चंद्रराव मोरे का गिड़गिड़ाना भी अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहा। आखिर खान ने पंत से कहा, "शिवाजी काफिर है, हरामखोर है! मुझे वह जावली बुला रहा है। पर, मुझे उसका यकीन नहीं है। तुम ब्राह्मण हो। यदि तुम यकीन दिलाते हो, तो जावली जाने के लिए तैयार हूँ।"

महाराज ने पंतजी को बताकर भेजा था, "खान तुमसे वचन मांगेगा। कोई भी वचन मांगने पर, बेहिचक दे दीजिए। वह किसी भी हालात में जावली आकर ही रहेगा, ऐसा कीजिए।"

खान के मुँह से महाराज की भर्त्सना सुनकर गोपीनाथ पंत का खून खौल उठा था। उसने मन ही मन इसका प्रतिशोध लेने की सौगंध खायी। लेकिन बाहरी तौर पर अत्यंत सौम्यता से, "आप अंदेशा मत कीजिए। राजा आपका कुछ बिगाड़ना नहीं चाहते। मुलाकात के लिए जरूर आइएगा।" ऐसी विनती की। खान ने मान लिया। फौज के साथ आना कुबूल किया। यहीं पर गोपीनाथ पंत का आधा कार्य सफल रहा। परंतु चाणाक्ष पंत काका वहाँ से तुरंत नहीं निकले। छावनी में खान के प्रमुख सरदारों से मिले; प्रतापगढ़ से लाए वस्त्र-प्रावरण, नजराना, धनदौलत इत्यादि महाराज के 'प्रेमादर' के प्रतीक के रूप में उनको प्रदान किये। देते-देते वह अमूल्य रहस्य, जिसके लिए वे आये थे, उन्होंने हासिल कर ही लिया। "शिवाजी हरामी है। लड़ाई से वह हाथ नहीं लगेगा। इसीलिए सलाह के बहाने उसे पकड़ लेना है।" खान की मंशा यही थी। असलियत का पता चलने पर पंत काका के सीने की धड़कनें तेज हो गयीं। दूसरे दिन सुबह ही खान से विदाई तथा महाराज के लिए खिलअत लेकर पंत काका ने प्रतापगढ़ की ओर प्रस्थान किया।

खान की छावनी में उसके सब सरदारों को इस जावली समझौते

की खबर मिल गयी, बीजापुर सल्तनत के साथ सच्ची ईमानदारी रखने वाले कई दूरदर्शी सरदार खान के खेमे में थे। उनको खान का जावली जाना सर्वथा अमान्य था। उनको लगा कि इसमें जरूर कोई धोखा है। उन्होंने साफ लफ्जों में चेतावनी दी, "इसमें कुछ ना कुछ खौफनाक साजिश छिपी है। शिवाजी ने आज तक किसी के सामने अपना सिर झुकाया नहीं। वह बड़ा चालाक है; बहादुर है। छुटपन से उसकी करामात देखने वाले यह नहीं मानते कि वह डरपोक है। वह अब आपके सामने डर, खौफ और शरणागति का नाटक मात्र कर रहा है। इसका सीधा मतलब है कि इसमें कोई चालबाजी और धोखा है।"

अपने जानी दुश्मन की सराहना सुनते ही अफजल खान के अहं और अहमियत को बड़ी चोट पहुँची। अपने उन ईमानदार सरदारों की बातें सुनते ही खान भड़क उठा, "क्या रट लगा रखी है उसकी बहादुरी की? अफजल खान की बहादुरी अभी तक तुम पहचान नहीं पाये। मेरे खौफ से शैतान भी कांप उठता है। तो ये शिवाजी किस खेती की मूली? मेरा गुस्सा देखते ही जावली का सारा जंगल जलकर खाक हो जायेगा!"

खान के इस गरूर ने ही गोपीनाथ पंत के वाकपटुत्व, अभिनय कुशलता एवं स्तुतिप्रवणता की सार्थकता साबित कर दी। इसके बाद सरदार ऐसी सलाह देने की जुर्रत ही न करें, ऐसा एक फरमान ही खान ने जारी किया। कई लोगों को कठोर सजा भी दी। पागल को सलाह देना और पत्थर पर सर पटकना, एक ही बात! उपदेश करने वाले को ही थकान होगी।

खान तो शिवाजी से मुलाकात के लिए बड़ा बेताब होने लगा। उसने फौरन जावली कूच करने का हुक्म जारी किया।

..... ४ .....

इधर, प्रतापगढ़ में बड़ी आतुरता से शिवाजी महाराज पंतजी काका की राह देख रहे थे। गढ़ चढ़कर पंतजी पधारे। एक चकार भी न चूकते हुए जो कुछ घटित हुआ, उसका पूरा ब्यौरा महाराज के सामने प्रस्तुत

किया। खान के 'संधि' प्रस्ताव का अंदरूनी उद्देश्य महाराज समझ गये। मतलब? हाल ही में शृंगारपुर के राजा के साथ जो किया वही! समझौते के बहाने धोखा और हत्या! और खान की फौज की असली ताकत का अंदाजा भी महाराज को हो गया। पूरे वृत्त–निवेदन के बाद पंत जी ने अपनी सलाह दी, "खान का इरादा खूंखार है। समझा–बुझा कर उसे जावली लाता हूँ। आप हिम्मत से एकांगी कर, उसे खत्म कीजिए। उसका तमाम लश्कर साफ कीजिए।" ऐसा था क्षात्रतेज उस वृद्ध ब्राह्मण का! महाराज के स्वभाव एवं अंतःसत्व के अनुगुण सलाह भी यही हो सकती थी! इसके अलावा महाराज के सामने उपलब्ध अन्य विकल्प याने एक गढ़ से दूसरे पर पसार होते–होते, दुश्मन की दमछाक करना। परंतु साहस, आत्मविश्वास, विजिगीषु वृत्ति के मूर्तिमंत प्रतीक शिवाजी महाराज को गोपीनाथ पंत की सलाह ही प्रिय लगी; सही लगी; इसमें कोई आश्चर्य नहीं। पंतजी को महाराज ने पुनः एक बार खान के पास भेज दिया, अबकी बार खान का जावली आना सुनिश्चित करने।

पुनः एक बार गोपीनाथ पंत खान से मिले। महाराज के भयभीत अवस्था का वर्णन दोहराया। तब खान बोला, "अरे भाई, शिवाजी को डरने की जरूरत नहीं। उसके किले उसे ही लौटा दूंगा। मैं जावली जरूर आऊंगा।"

इस प्रकार खान के हाथी, घोड़े, ऊंट, फौज, तोपें, गोलाबारूद, बाजारू सामान सब कुछ जावली की दिशा में मार्गस्थ हुए। तीन मील पहाड़ चढ़ना, दस मील का घना जंगल पार करना, फिर तीन मील घाटी उतरने के बाद आता है प्रतापगढ़ का पायँता! फौज का सारा सरंजाम–सामान ढोकर एवं हाथी, ऊँट, पालकी, मेणा आदि सब के साथ उस पहाड़ी क्षेत्र की पीठ पर से चढ़ते–चढ़ते ऊपर जाने वालों की हालत तो सिर्फ एक 'अल्लाह' ही जानें! हाथी–घोड़े तो खून से लथपथ हो गये। घाटमाथा चढ़ते समय, हाथियों के पैरों के दबाव से नीचे उतार पर लुढ़कने वाले बड़े–बड़े पत्थरों के नीचे रौंदकर, ऊपर चढ़ रहे सैंकड़ों सैनिक हताहत हुए। इस प्रकार के जहन्नुमी जहमत का सामना करने की बारी जिसकी

पूरी जिंदगी में नहीं आयी, वैसी मौज–मस्ती में मगन बीजापुर की विलासी फौज पूरी और बुरी तरह से पस्त होकर हांफने लगीं। जैसे–तैसे महाबलेश्वर पार कर खान आखिर कोयना की घाटी में उतर गया। "जावली अब मेरे कब्जे में" खान ने अपनी खुशी जाहिर की। प्रतापगढ़ के पायँते से एक मील की दूरी पर उसने अपना पड़ाव डाल दिया। खान की फौज का पूरा प्रबंध महाराज ने ही किया था।

उधर, प्रतापगढ़ में सब की नींद भाग चुकी थी। चिंता और चिंता! चिंता ही चिंता!! तैयारी और तैयारी! तैयारी ही तैयारी!! बड़ी बारीकी से हर छोटी–मोटी बातों की देखरेख स्वयं महाराज ही कर रहे थे। खान से मुलाकात कहाँ की जाये; भेंट के शामियाने का साज–श्रृंगार किस प्रकार का हो; उस समय महाराज का पहनावा क्या होना चाहिए इत्यादि सब कुछ पूर्व विचारांत में तैयार की गयी योजना के अनुसार ही चल रहा था। साथ में ही रखी गयी थी खान के हरेक हलचल पर तीखी नजर! उसके इत्थंभूत विवरण तुरंत ही गढ़ पर पहुँचाने की कड़ी व्यवस्था!

इन सब सन्नद्धता की सिद्धताओं के बीच ही, गोपीनाथ पंत तथा गुप्तचरों ने एक 'अति मूल्यवान' खबर दी। खान के खेमे में बीजापुर से ही आए, जवाहरात के बड़े–बड़े व्यापारी हैं; हीरे, मोती, स्वर्ण, रत्नों का अपार भंडार भी विद्यमान है। यह समाचार सुनकर महाराज की एक महत्वपूर्ण समस्या अपने आप ही हल हो गयी। अपने यहाँ पधार रहे गणमान्य अतिथि अफजल खान साहब तथा उनके साथ आए हुए अंकुश खान, मुसेखान आदि नामीगिरामी सरदारों का आदर–आतिथ्य किस प्रकार किया जाए, इसकी चिंता से ग्रस्त महाराज को झट से एक उपाय सूझा। उन सब व्यापारियों को उनके समूचे 'माल' के साथ प्रतापगढ़ पर बुलाकर लाना तथा उनका 'सब कुछ' एक साथ खरीद लेना।

इसके बाद तंत्रयुद्ध आरंभ हुआ। जावली में डेरा डाले हुए अपनी छावनी में ही वह शिवाजी 'मुलाकात' करने आ जाए ऐसा संदेशा अफजल खान ने प्रतापगढ़ भेज दिया। तथापि वहाँ जाना किसी भी खतरे से खाली नहीं, यह शिवाजी महाराज स्पष्ट जानते थे। तो फिर, कुशलता से खान

को ही प्रतापगढ़ के पायँते पर बुलाना होगा! पुनः पंतजी काका खान से मिलने गए। उन्होंने फिर से एक बार, महाराज कितने डर गए हैं इसका बखान कर खान का यकीन और भी मजबूत किया। बातों–बातों में ही उसे अपने इप्सीत की ओर लाया, "आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि आप एकांत में आकर, गढ़ के पायँते पर मुलाकात करें" यह सुनते ही खान चौंक पड़ा! लेकिन पंतजी ने बड़ी विनम्रता से मुलाकात का पूरा ब्यौरा उसकी सब बारीकियाँ एक–एक कर उसे समझा दी। ऐसे स्नेहभरी, मुलाकात में फौज की आवश्यकता ही कहाँ? वह जहाँ है वहीं रहे। खानसाहब सशस्त्र होकर, पालकी में बैठकर, दस शस्त्रधारी अंगरक्षकों के साथ मुलाकात के शामियाने तक तशरीफ ले आयेंगे। वहाँ से अंगरक्षक एक "तीर–फेंक" के फासले पर खड़े रहेंगे। शिवाजी भी गढ़ से शस्त्र–सज्ज बन कर निकलेंगे। वे भी अपने दस अंगरक्षकों को एक "तीर–फेंक" की दूरी पर ही रोककर आगे बढ़ेंगे। उसके बाद प्यार भरे माहौल में आप दोनों आपस में भेंट–मुलाकात करेंगे और समझौते की बातचीत करेंगे।"

यह सलाह खान को बड़ी अच्छी लगी। वह तो शिवाजी के लिए बड़ा बेताब था। पंतजी ने उसका पूरा फायदा उठाया। गोपीनाथ पंत उन जवाहरात के व्यापारियों को नहीं भूले थे। आगंतुक सभी सम्मान्य अतिथियों को यथायोग्य नजराना पेश करने में सहूलियत हो, इस दृष्टि से उन सभी हीरे–मोतियों के व्यापारियों को गढ़ के ऊपर माल समेत भेज देने के लिए शिवाजी की भेजी खास अर्जी भी उन्होंने खान को बता दी। इससे खान के अहंकार की अग्नि और भी अधिक भभक उठी। मुझे देखकर शिवाजी को इतना डर और प्यार? खान ने शिवाजी की वह गुजारिश फौरन मंजूर कर दी। देखो, हमारे माल का थोक ग्राहक मिल गया; इसकी सब व्यापारियों को खुशी ही खुशी थी! वे सब पंतजी काका के साथ अपना सारा माल ढोकर गढ़ के ऊपर जाने के लिए निकल पड़े। बिना किसी प्रयास के देवी लक्ष्मी स्वयं इस प्रकार अपने पाँव से ही दुर्ग पर आ रही है, यह देखकर महाराज की नजर चौंधिया गयीं। व्यापारियों के लिए अति उत्तम निवास की व्यवस्था की गयी। हीरे, रत्न, मोती आदि की राशियों के लिए अलग–अलग

प्रबंध किया गया! खान साहब के साथ आयोजित भेंट के बाद उन सबका 'एक–मुश्त' भुगतान कर दिया जायेगा, ऐसा महाराज ने उनको अभिवचन दिया।

भेंट के लिए कौन–सा 'जाल' बिछाया जाये, इसके बारे में बड़ी सावधानी के साथ विचार करते हुए शिवाजी महाराज ने अंतिम निर्णय किया था। वहाँ पर निर्मित शामियाने तक आने के लिए तल से कुछ दूरी तक चढ़ना जरूरी था। उस शामियाना तथा उसके आसपास के पूरे प्रदेश में होने वाली हरेक हलचल किले के ऊपर से आसानी के साथ देखी जा सकती थी। लेकिन, खान की छावनी से उसकी झीनी छाया तक दिखाई नहीं पड़ती थी। खान के चाहने पर भी दगा करना बड़ा कठिन बनाने वाली वह जगह थी।

दुर्ग की हरेक ईंट तथा पत्थर भी जागरूक बन गयी थी। मानो महाराज के साथ स्वराज्य की रक्षा करने के लिए वे भी छटपटा रहे थे। मुलाकात का दिन भी तय हो चुका था! मार्गशीर्ष शुक्ल सप्तमी गुरुवार, १० नवंबर, १६५९ । महाराष्ट्र के घर–घर में खंडोबा की दीपावली मनाने के दिन थे।

बुधवार, ९ नवंबर का सूरज निकला। किले पर रहने वाला हरेक हृदय भवानी देवी की ओर मुड़कर प्रार्थना कर रहा था, "हे देवी माँ, हमारे राजा की रक्षा कर!" पर महाराज अत्यंत शांतचित्त थे। इस प्रकार के अभूतपूर्व संकट की घड़ी में भी स्वराज्य के अन्य दुर्गों की रक्षा, प्रशासन की मंत्रणा आदि सब यथावत् सुचारु रूप से कार्य कर रही थी। शिवाजी के सब साथी किले पर इकट्ठा आये थे। शिवाजी उन सबके लिए प्राणों से भी प्यारा था! उनके हृदयों में क्रोध, प्रतिशोध, वीरश्री, निष्ठा इन सबका मानो उस समय महापूर ही आया था। तानाजी मालुसरे, कान्होजी जेधे, मोरोपंत पिंगले, बाबाजी भोंसले तथा अन्य सभी सरदारों को अपने–अपने हिस्से का काम सौंपा गया। रात हो गयी; कालरात्रि! "वैरियों को कुछ भी पता न चले, इस तरह शस्त्र–सज्जित होकर जावली के घने जंगलों में छिपे रहो! खान ने दिये हुए वचनों के अनुसार न चलते हुए यदि कुछ

बाबाजी की, तो किले के ऊपर से रणशिंग फूंके जायेंगे; तीन बार तोपें गरजेंगी। तुरंत खान की फौजों पर टूट पड़ो; उन का पूरा निःपात करो। परंतु शरणागत पर हाथ मत उठाओ!" यह था उन सबके लिए महाराज का आदेश! उन सबको महाराज ने स्नेहभरे अंतःकरण से विदा किया। वे सब बिना किसी आवाज के घनघोर अरण्यों में खान की फौज के चहुँ ओर साँप की कुण्डली घेरते हुए छिपकर बैठ गये। उस कालरात्रि में उन सबको उसी स्थिति में निःशब्द बैठे रहना था। यदि थोड़ी भी चूक हो जाती या संदेह हो जाता, तो समग्र योजना मिट्टी में मिल जाती। तत्पश्चात् सर्वनाश सबका सर्व विनाश! हरेक सैनिक पर भी मानो शिवाजी जितनी ही जिम्मेदारी थी! नेताजी पालकर तो खान की फौज का घेरा डालते हुए, अपना तथा अपनी सेना का मुँह सिलकर, घाटी के पायँते पर पहले से ही हाजिर हो चुका था।

महाराज के साथ जाने वाले दस वीर नरपुंगवों का चयन भी हुआ! गढ़ पर रहने वाले प्रत्येक को शिवाजी के साथ जाने की आर्तता! अभिमान!! अपने नेता के लिए प्राण भी अर्पण करने हेतु अतीव आतुर! सिंह सदृश्य शिवाजी के दाएँ–बाएँ संभाजी, कावजी, येसाजी कंक, जिवा महाला, सिद्दी इब्राहिम आदि दस फुर्तीले व्याघ्र!

तदनंतर महाराज ने अपने आप्त सलाहकारों के साथ; भेंट करने किस तरह जाना चाहिए, इसके बारे में विचार विमर्श किया। शरीर पर लोहे का चिलखत, सिर पर शिरस्त्राण पहन कर ही जाना चाहिए, ऐसा निर्णय हुआ। कौन–कौन से शस्त्र साथ में धारण किये जायें, इसका भी निर्धारण किया गया।

मुलाकात के लिए तयशुदा जगह पर शामियाना तैयार हो गया था। अमूल्य रत्नों–हीरों से गढ़ा हुआ लाल ग़लीचा, किनखाप, मालाएँ, तोरण, आदि से भरे उस भव्य मंडप का वैभव आँखों को चुंधिया रहा था। खान जैसे साधारण सरदार का हो या किसी बादशाह के बाप का, इतने शानोशौकत के साथ शाही स्वागत तब तक शायद ही किसी का हुआ होगा!

उधर, खान की छावनी में छाया था आनंद ही आनंद! सब फौजी उस सुदिन के सुख–स्वप्न में तल्लीन होकर अपना होशोहवास ही खो बैठे थे।

१० नवंबर, १६५६ ई. का उषःकाल हुआ। उसी दिन मध्यान्ह में ही मुलाकात! बीजापुर से लेकर दिल्ली तक की नजरें इस भेंट पर टिकी हुई थीं। इतना ही क्यों, यूरोप के अनेक देशों तक यह खबर फैल गयी थी। इसका फलित क्या होगा, इसके बारे में किसी के मन में संदेह नहीं था! जो भी एक बार अफजल खान के हाथों में फँस गया, तो कोई दूसरा 'फलित' होना असंभव है!

..... ५ .....

महाराज भोर में ही जग गये। स्नान, पूजा आदि नित्यकर्म पूरा किया। अल्प समय तक शिवध्यान में लीन हुए। तदनंतर दान–धर्म किया। अब 'भेंट' के लिए निकलना! त्वरित करने लायक एक महत्व का काम! खान के अपनी छावनी से बाहर आते समय गोपीनाथ पंत का वहाँ रहना! वह सियार आखिरी क्षण में क्या कुछ नहीं करेगा? इसीलिए महाराज ने पंत काका को खान के खेमे में भेज दिया। और उनका अंदेशा सही निकला। खान पालकी में बैठ गया। अपने बगल में उसने गुप्त रीति से एक छुरी छिपा के रखी और उसके साथ करीब डेढ़–दो हजार हथियारबंद फौजी निकल पड़े। वह देखते ही पंत जी काका की हृदय की धड़कन पल भर के लिए रुक ही गयी! खान के नजदीक जाकर उन्होंने पूछा, "क्या इतनी बड़ी फौज आपके साथ जा रही है?" खान ने हाँ भरी, गोपीनाथ पंत ने अपनी उंगलियां होठों पर रखते कहा, "अब, इतनी भारी सेना देखते ही महाराज दौड़ के किले पर लौट जायेंगे! मुलाकात हो ही नहीं पायेगी। वे स्वयं केवल दो लोगों के साथ आयेंगे। आप भी दो को साथ ले जाइएगा। शिवाजी से भेंट करने इतना सारा सरंजाम काहे ले जा रहे हो?" खान भी क्षण मात्र स्तब्ध रहा। इतना सारा करने के बाद डर के मारे शिवाजी यदि नहीं आया तो किये कराये पर पानी फिर जायेगा। पंत का कहना भी ठीक है। कितना डरपोक निकला यह शिवाजी! खान ने फौरन अपनी फौज को

रोक दिया। अब उसके साथ निकले केवल कृष्णाजी भास्कर, सैय्यद बंडा और दस बहादुर सिपाही। अलबत्ता, गोपीनाथ पंत तो थे ही।

शिवाजी महाराज अपनी पोशाक पहन कर तैयार हुए। अंदर चिलखत, उस पर धवल शुभ्र रेशम का वस्त्र, सिर पर शिरस्त्राण, उस पर तुर्रे–मोतियों वाला अपना टोप बांधा, कमर में बिछुआ रखा, उंगलियों में व्याघ्रनख धारण किए। भवानी हमेशा के अनुसार कमर पर लटक रही थी।

दोपहर का एक बज गया। खान की पालकी शामियाने तक पहुँच गयी। उस विशाल मंडप की चौंकाने वाली शानोशौकत देखकर, खान की आँखें चुंधिया गयीं। जलन के मारे उसके पेट में अंगारें पड़े। "शाहजी जैसे मामूली सरदार के बेटे के पास इतनी सारी दौलत? कहाँ से आयी? इतना बेशकीमती शामियाना हमारे हजरत बादशाह को भी नसीब नहीं है।", खान फुफकारने लगा। पंत ने विनम्रता से कहा, "यह सब हुजूर की हैसियत के मुताबिक ही मेहमाननवाजी करने के लिए महाराज ने बनवाया है। बादशाह का हिस्सा बादशाह को हासिल होगा ही। उसके लिए आप इतना परेशान क्यों?" यह सुन कर, खान तकिये पर रेलते हुए बैठ गया।

इधर, महाराज ने राजपुरोहित तथा अन्य ब्राह्मणों को नमस्कार किया। उन सबके आशीर्वाद प्राप्त हुए। सदाचार संपन्न ब्राह्मण को एक सवत्स धेनु दान में दी गयी। किले पर जो अन्य लोग–बाग थे वे सब महाराज के साथ निकल पड़ने का हठ करने लगे। शिवाजी ने सबको समझा–बुझा कर किले पर ही रोक दिया। उनका कंठ भर आया। आखिर उन्होंने सबको संबोधित करते हुए कहा, "मेरे माय–बाप और भाइयो! खान का वध कर, जयशाली होकर मैं वापस लौटूंगा। चिंता न करो। परंतु, अकस्मात् कुछ दगा–धोखा हुआ, तो संभाजी राजे को सम्हालना! तीर्थरूप शाहजी राजा को मेरा नमस्कार बताइएगा। राम, राम!" किले का भी कंठ भर आया। हृदय एवं हाथ में 'भवानी' धारण कर, धीर–चाल से महाराज उतरने लगे। साथ में निकले जिवा महाला और दस रणपुंगव! मानो साक्षात् देवी भवानी ही अपने दसों हाथों में शस्त्र धारण कर अपने प्रिय पुत्र की रक्षा करने निकल पड़ीं।

किले पर गोलाबारूद से लबालब तोपों के समीप हाथ में मशाल पकड़े एक मावला सैनिक खड़ा था। इधर पंतजी की बेचैनी बढ़ती गयी। शिवाजी अब तक क्यूं नहीं आये? वे स्वयं वहाँ से नहीं हिले। अपनी गैरहाजिरी में खान यदि कोई चालाकी या उलटी–सीधी हरकत कर बैठा तो?

महाराज ने आधा रास्ता तय किया; शामियाना नजर आते ही वे रुक गये। वहाँ तक आये उस दूत से वहाँ की इत्थंभूत जानकारी हासिल की। उन्हें पता चला कि खान के साथ सैय्यद बंडा वहीं पर है। समूचे हिंदुस्थान में नामी ऐसा एक शमशेर–बहादुर था वह! इसमें अवश्य कोई भेद है ऐसा महाराज ने सोचा। जहाँ थे वहीं पर खड़े होकर, उन्होंने पंतजी को कहलवा भेजा।

शिवाजी का उस आखिरी घड़ी में पंत को बुलावा आया, यह देखकर खान चौंक गया। उसे शक भी हुआ। पंत त्वरा से महाराज की ओर दौड़ते गये। महाराज ने बताया, "खानसाहब तो हमारे लिए पिता समान है। परंतु उसके पास खड़ा सैय्यद बंडा! मेरे लिए वह एक भयसूचक बात है। यदि खानसाहब ने उसे दूर भेज दिया, तो ही मैं आ सकूंगा।" महाराज की दूरदर्शिता भी अद्‌भुत थी। खान ने गर्दन से ही 'हाँ' भरी। 'डरे' हुए शिवाजी की वह अंतिम अर्जी थी। उसे क्यों ठुकराये? "अच्छा, हट जाओ" — खान ने सैय्यद बंडा को दूर भेज दिया।

उसके बाद ही महाराज ने कदम आगे रखा। 'जगदंब', 'जगदंब' उनके हृदय का स्पंदन भी कदम–दर–कदम बढ़ रहा था। उन्होंने दूर से ही खान को देखा। खान ने भी उन्हें देखा। क्षण मात्र के लिए उसके कलेजे की धड़कन ही रुक गयी। दूसरे ही पल में उसे खुशी ही खुशी; आखिर मिल ही गया न। शिवाजी मिल गया। अब छूटेगा नहीं। महाराज ने अपने शरीर को ही आँखें बनाकर शामियाने में पग रखा। खान की ओर देखकर स्मितहास्य किया। खान उठ खड़ा हुआ; आगे बढ़ा। क्षणार्ध के लिए मानो सारी सृष्टि ही स्तब्ध हुई। मृत्यु की कराल छाया सब ओर व्याप्त हुई। किसके लिए थी वह?

दोनों दूत वहीं पर खड़े थे। खान ने अपनी तलवार निकाल कर कृष्णाजी भास्कर के हाथ में थमा दी अपना साँचापन दिखाने। उसे यकीन था कि शिवाजी खरगोश का कलेजा रखता है। खान ने ही बातचीत शुरू की। उसने शिवाजी को कहा "राजा जी, तुम्हारी सद्र तो शाह आदिलशाह से भी बेहतरीन है। लेकिन, तुम बीजापुर के एक मामूली सरदार के बेटे हो। झुककर चलना चाहिए, यह बात शायद तुम भूल गए हो।"

महाराज ने तुरंत बताया, "अपनी–अपनी योग्यता के अनुसार हरेक का अपना–अपना भाग्य होता है। भय भी हो, तो प्रभु श्री रामचंद्र जी का! आपसे काहे डरूँ? आप कौन हो, यह मैं भली–भांति जानता हूँ।"

"ऐसी मगरूरी की बातें क्यों? क्यूं गलत राह पर चलता है? तुम्हारी शेखी मिटाने ही मैं आया हूँ। अपने सब किले चुपचाप मेरे हवाले कर दे। तुझे आला हजरत बादशाह के सामने पेश करूँगा। उनके आगे तुझे झुकना होगा। फिर तुझे बड़ी जागीर देने का इंतजाम करूँगा। आ जा, अपना सारा गरूर छोड़–छाड़ कर इस अफजल खान के गले लग जा!"

इतना कहकर, अपनी दोनों बाँहें फैलाते हुए शिवाजी को अपने आलिंगन में लेने खान आगे बढ़ा। वह स्वागत साक्षात् यमराज द्वारा ही था। एक ही ग्रास में मानों इस देश का स्वराज्य, स्वधर्म एवं सकल सौभाग्य को स्वाहा करने प्रत्यक्ष मृत्यु ही मुँह खोले खड़ी थी! रायगढ़ पर अपनी आत्मा को निचोड़े बैठी जीजामाता के पुत्र सौख्य पर ही काल की कराल छाया मंडरा रही थी! एकाएक खान ने महाराज को अपनी बाँहों में कस लिया! उस सात फुट लंबे, धिप्पाड़, बकासुरी शरीर के सामने शिवाजी बहुत नाटे थे। उनकी लंबाई उसके सीने तक थी।

बाद के कुछ क्षणों में क्या हुआ इसका अनुमान उस मृत्यु–आलिंगन के परिणाम से ही लगाया जा सकता है। आगे चलकर मिर्जाराजा जयसिंह को लिखे पत्र में स्वयं महाराज ने यह बात लिखी थी कि, "यदि मैं स्वयं उस खान के ऊपर पहले ही अपना हाथ नहीं उठाता तो इस पत्र को लिखने के लिए कौन बचता?" महाराज का यह कृत्य उनकी असामान्य कूटनीतिज्ञता, दूरदर्शिता और पराक्रमी स्वभाव के अनुसार ही था। अफजल

खान की क्रूर दगाबाज प्रवृत्ति की पूरी–पूरी जानकारी रखने वाले महाराज अपने ऊपर पहले आक्रमण का अवसर उसको देने वाले थे, यह तो कल्पना करना भी सम्भव नहीं है। परन्तु यह बात भी सत्य है कि अफजल खान के ऊपर महाराज का मरणान्तक आघात होने पर भी उसने कुछ न कुछ आघात उन पर अवश्य किया था जिसका निशान महाराज के मस्तक पर था। इस रोमांचकारी घटना में इतना तो प्रत्यक्ष परिणाम दिखाई पड़ा कि महाराज ने विद्युत वेग से अपने दाहिने हाथ से बिछुआ बाहर निकाल कर खान के पेट में गहराई तक घोंपकर उसका पेट चीर दिया। खान का पेट कोई सामान्य जैसा नहीं था; बड़ी भारी–मोटी, बलशाली माँस–पेशियों से भरा हुआ था। ऐसे पेट को भी एक ही झटके से महाराज ने अन्दर तक पूरा चीर दिया अर्थात् इससे महाराज के प्रचण्ड बाहुबल की कल्पना की जा सकती है।

खान बड़ी भीषण आवाज में चिल्लाने लगा, "मर गया, दगा ऽऽ, दगा ऽऽ! उसकी बाँहों की पकड़ ढीली पड़ गई। उसके कटे–फटे पेट से अंतड़ियां (आंत) बाहर आ गयीं। रक्त का प्रपात ही गिरने लगा। सब कुछ पल भर में समाप्त हो गया! देखते ही देखते दोनों ओर के अंगरक्षकों में घमासान लड़ाई शुरू हो गयी। ऐसी दुर्धर स्थिति में अपनी अंतडियां पेट के अंदर ढकेलते हुए, "दगाबाज ने मुझे कत्ल किया! उसे मारो, काटो!" ऐसा जोरों से चिल्लाते हुए, खान शामियाने के बाहर दौड़ पड़ा।

तब खान के उस हुक्म की तामील करने सबसे पहले कौन दौड़ पड़ा? खान की तलवार हाथ में थामे खड़ा कृष्णाजी भास्कर! गो–ब्राह्मण–प्रतिपालक महाराज पर, एक गो–ब्राह्मण–हंतक म्लेच्छ की ओर से एक ब्राह्मण द्वारा सशस्त्र हमला! हमारी सोच के भी परे! किंतु कृष्णाजी भास्कर ने शिवाजी की ओर झपटकर खान की तलवार से वार किया, उस प्रहार को चकमा देते हुए शिवाजी ने कहा, "मैं ब्राह्मण की हत्या नहीं करता, चले जाओ!" फिर भी, कृष्णाजी भास्कर ने चढ़ाई की ही। अब वह कृपा–पात्र रहा नहीं, यह देखकर शिवाजी ने उसे एक ही आघात में समाप्त कर दिया।

तभी बाहर खड़ा सैय्यद बंडा शामियाने में घुस आया। उसे देखते ही जिवा महाला बिजली की तेजी से वहाँ दौड़ पड़ा! महाराज को चोट पहुँचने के पहले ही हमला कर रहे बंडा का आघात रोकते हुए उसने कहा, "महाराज, आप छोड़िए! इससे मैं निपटूंगा!" तुरंत उसकी शमशेर विद्युल्लता–सी झलक उठी और वह पठान शमशेर बहादुर बंडा दो टुकड़ों में जमीन पर ढेर हो गया।

इन सब भयानक खून–खराबे और शोरगुल के बीच, अपने पेट के अंदर ढकेली हुई अंतड़ियां वैसे ही दबाए हुए खान शामियाने से बाहर आ गया। क्या कहें उसकी शैतानी ताकत की? त्वरित चीते–जैसी छलांग मारते हुए, महाराज ने भवानी खड्ग से उसकी गर्दन उड़ा दी। गर्दन जमीन पर गिर पड़ी। झट से उसका मुंड उठाकर विद्युत गति से किले की ओर बढ़ने लगे। खान के बचेखुचे अंगरक्षकों का भी खात्मा कर, शिवाजी के वे सब साथी महाराज के पीछे–पीछे ही किले की ओर दौड़ पड़े। शिवाजी के दस अंगरक्षकों में किसी की भी प्राणहानि नहीं हुई, किंतु खान के दस में से कोई बचा नहीं।

उतने में किले के ऊपर से गगन को भेद कर, तोपें गरज उठीं। उनकी ध्वनि समूचे जावली के गिरि–गव्हरों में गूँज उठी। वे खान की मुलाकात की शान में ही उड़ाई होंगी, ऐसा उसके सरदारों तथा फौजियों को लगा! मुलाकात बड़ी शानोशौकत से चली होगी, ऐसा सोचकर वे अक्षरशः खुशी में 'डूब' गए! किंतु तब तक चुप्पी साधे बैठे हुए मराठा वीराग्रणियों के लिए तो वह रणचंडी के आमंत्रण का समर–संकेत था। "बता तेरी करामात!" ऐसे चुनौती भरे स्वर में तुलजापुर में देवी भवानी से ही नहीं पूछा था क्या? उसकी मूर्ति का भंजन नहीं किया था? अब उस देवी ने ही अपनी महिमा दिखाना आरंभ किया।

बहुत प्राचीन काल में एक दैत्य हिरण्यकश्यपु ने भी इसी प्रकार भक्त प्रहलाद को चुनौती दी थी। "कहाँ है तेरा भगवान," ऐसा कहकर उसने खंभे पर लात मारी थी। खंभा दुभंगित होकर उसमें से उग्र नृसिंह प्रकट हुए थे। अपने नाखूनों से उस दैत्य का पेट फाड़ दिया था। आज

उसी प्रकार के एक दैत्य को उसी रीति से उत्तर मिला था। एक–एक मराठा योद्धा भी साक्षात् नृसिंह की ही प्रतिमूर्ति बन गया था। बहुत दिनों से चले आ रहे अनन्वित अन्याय, अत्याचारों का कर्जा, उसके पूरे ब्याज चक्रवृद्धि ब्याज के साथ बसूलना बाकी था! मौज–मस्ती में मशगूल ऐसी खान की फौज पर भूखे चीतों जैसे टूट पड़े उन मराठा रणबांकुरों का आवेश देखते ही बनता था। साक्षात् देवी भवानी ही रणचंडी बनकर अपने सहस्र–सहस्र हाथों से उस दैत्य का पारिपत्य करने में जुट गयी थी! नेताजी पालकर तो प्रत्यक्ष यमराज के समान ही रणतांडव कर रहा था। तानाजी, कान्होजी आदि के पराक्रम की तो बाढ़ ही आयी थी! गिरे अरि–मुंडों से रक्त के फव्वारे उड़ रहे थे! कृष्णा–कोयना लाल होकर बहने लगी। खान की फौज को भागने के लिए भी जगह नहीं थी! उसके अनेक प्रमुख सरदार मारे गये। खान मारा गया है, यह समाचार मिलते ही मराठा रणधुरंधरों का रणोत्साह आकाश छूने लगा! बीजापुर की उस प्रचंड फौज का तो मानो नामोनिशान ही मिट गया। अपार सैन्य–सामग्री, धन–दौलत शिवाजी को प्राप्त हो गयी। असंख्य शत्रु सैनिक शरण में आये; कैदी बन गये। उनकी यथायोग्य शिक्षा–रक्षा के लिए, स्वयं महाराज किले से नीचे उतर आये। अब हमें मौत का ही इंतजार करना है, ऐसा सोचकर कैदियों के दिल धड़कने लगे। परंतु उनमें से बहुतेरे लोगों को निहत्था बनाकर छोड़ दिया गया। अफजल का बेटा फाजल खान और मूसेखान जंगल में छिप गये।

खान के समस्त सेना–सागर को एक ही आचमन में प्राशन कर अगस्त मुनि के समान शोभायमान हुए थे श्री शिवाजी महाराज!

..... ६ .....

इधर, इतने शोरगुल एवं मारधाड़ का माहौल, तो उधर राजगढ़ पर मौन बैठी वह वृद्धा कौन थी? माता जीजाबाई! प्रतापगढ़ की दिशा में मुड़ा हुआ मुख; दृष्टि में भरी पड़ी कातरता! और देखा कि प्रतापगढ़ से एक दूत दौड़ता आ रहा है। पूरे गढ़ का गढ़ ही अपनी एड़ियों के बल खड़ा हो गया। कौन–सी खबर सुनाई देने वाली है, कौन जाने? सबके हृदयों

की धड़कन क्षण भर के लिए थम गयी। एकदम दिव्यानंद की आकाशवाणी करते हुए दूत गरज उठा, "महाराज के हाथों खान मारा गया! साथ ही उसकी पूरी फौज धराशायी हो गयी।" तुलजा भवानी को संतोष हुआ! "मेरे भक्त पुत्र ने मुझे बत्तीस दाँतों वाला चरबीदार बकरा बलि चढ़ा ही दिया!" यह शुभ समाचार समूचे राज्य में पहुँचाने, सकल जगत में गुंजाने गढ़ की तोपें, तुतारियां, नगाड़े, ढोल आदि सबके सब एक साथ बजाना शुरू हुआ!

खान की मुंडी भी राजगढ़ पर लायी गयी। वीरपुत्र द्वारा वीरमाता को दिया हुआ यह अनूठा नजराना! शिवाजी ने अपनी माताश्री की इच्छा – बड़े भाई संभाजी की हत्या का बदला लेने की – पूर्ण की थी। तथापि उस माँ ने खान के सिर का कोई अपमान न हो, इसकी सावधानी बरतने की चेतावनी दी। उसे किले के एक बुर्ज पर रखवा कर, उसकी पूजा तथा नैवेद्य की व्यवस्था भी जीजाबाई ने करवा दी। उधर, प्रतापगढ़ पर अफजल खान की लाश को बाइज्जत दफनाने की व्यवस्था भी की गयी।

यहाँ पर, तालीकोट युद्ध के बाद विजयनगर के सम्राट रामराय का सिर काटने के बाद बीजापुर के बादशाह ने जो सलूक किया था उसका स्मरण हुए बिना नहीं रहता। बादशाह ने रामराय के सिर के अंदर का भेजा–मांस आदि सब निकलवा कर उसे पोला (खोखला) बनवाया। बीजापुर शहर के गंदे नाले के आखिरी छोर पर उसे बिठाकर, उस मुंडिका के मुँह से ही शहर का सारा गंदा पानी बाहर बहता रहे ऐसा व्यवस्था करवायी। देखा न, दो सभ्यताओं का अंतर! शिवाजी का संघर्ष केवल एक राज्य निर्माण के लिए नहीं था; बल्कि, बर्बर आक्रांताओं के आघातों से एक उच्च–उदात्त संस्कृति की रक्षा करने, उसकी गरिमा एवं श्रेष्ठ आदर्शों की अपने राष्ट्रजीवन में प्रतिष्ठापना करने के लिए ही था, ये बात यहाँ सुस्पष्ट हो जाती है।

युद्ध समाप्त हुआ। विजय प्राप्त हुई। सब वीर–अधिवीर गढ़ पर इकट्ठा हुए। विशेष पराक्रम दिखाने वाले सब योद्धाओं को स्वयं महाराज ने अपने हाथों से बहुमान–पुरस्कार आदि प्रदान किये। उन सब में महत्तर

कार्यसाधना का अग्रक्रम वाला उपहार स्वाभावतः कान्होजी जेधे के हिस्से गया।

सब वीर योद्धाओं का सत्कार–सम्मान समाप्त होते ही महाराज को एक नाजुक एवं विकट समस्या का सामना करना पड़ा। खंडोजी खोपडे नामक एक देशमुख ने स्वराज्य के साथ विद्रोह कर, शत्रु के साथ हाथ मिलाया था। खान के दारुण पराभव के पश्चात् उसे अपने प्राण का भय सताने लगा। मुझे पकड़कर शिवाजी मेरा शिरच्छेद करवा के ही रहेगा, इसमें कोई संदेह नहीं; ऐसा उसे स्पष्ट दिखाई देने लगा। वह बड़ी गुप्त रीति से छिपा बैठा था। खंडोजी ने आखिर अपने दामाद हैबतराव से, कुछ भी करके महाराज द्वारा मुझे क्षमादान प्राप्त करा दो, ऐसी दुम पकड़ कर प्रार्थना की। हैबतराव सीधा कान्होजी के पास गया। हैबतराव तथा कान्होजी दोनों ही महाराज के सच्चे एवं एकनिष्ठ सरदार थे। किंतु गद्दार को क्षमा कीजिए, ऐसा महाराज से पूछने की हिम्मत दोनों में नहीं थी। ऐसे विषयों में महाराज का क्रोध कितना तीव्र होता था, यह दोनों ही अच्छी तरह से जानते थे। फिर भी, खंडोजी की मिन्नतों की वजह से डरते–घबराते कान्होजी महाराज के पास गया। खंडोजी के प्राणदान की भीख मांगी। खंडोजी का नाम सुनते ही महाराज की आंखे अंगारे बरसाने लगी। "स्वराज्यद्रोही को क्षमा असंभव! उसके टुकड़े–टुकड़े कर, चौराहे पर चील–कौवों के लिए फिकवा देने चाहिए!" महाराज गरज उठे। परंतु कुछ समय के बाद, कान्होजी के शब्दों को यथोचित अहमियत देते हुए, उसे अपनी भूल का एहसास दिलाने के लिए, खंडोजी को जीवनदान दिया। तथापि सजा से छुटकारा नहीं! एक दिन, खंडोजी का दाहिना हाथ और बायां पैर तोड़ डालने की आज्ञा दे दी। खंडोजी को पूर्ण क्षमा मिल चुकी है, ऐसा समझ बैठे कान्होजी के हृदय पर इस आदेश का गहरा आघात हुआ। अपने समान प्रतिष्ठा प्राप्त सरदार को महाराज ने अपमानित

किया है, इसका संताप भी आया। फिर भी, महाराज के पास जाकर उसने अपना असमाधान व्यक्त किया, "क्षमा दी है ऐसा कह कर, खंडोजी को सजा दे ही दी न? अब हमारी इज्जत ही क्या रह गयी?"

महाराज ने शांति से, विनम्रता से उसे समझाया, "आप के वचन के लिए ही उसके प्राण बचाए हैं। परंतु जिस हाथ से खंडोजी ने स्वराज्य के विरोध में तलवार म्यान से बाहर निकाली थी, वह हाथ तोड़ दिया तथा जिस पैर से दुश्मनों के खेमे में अपना कदम रखा था, वह पैर तोड़ दिया। केवल क्षमा–याचना से यदि स्वराज्य के साथ गद्दारी करने वालों को बचाया जा सकता है, ऐसी कल्पना जनमानस में आ गयी, तो तीन दिन के लिए भी स्वराज्य सुरक्षित नहीं रह पायेगा। कल हर कोई आदमी उसी प्रकार करने लग जायेगा। राज्य का भय नहीं रहा, तो स्वराज्य का अनुशासन कैसे बच पायेगा? आप ही बताइए।" विवेक तथा स्वराज्यनिष्ठा की वे बातें सुनते ही कान्होजी का उद्विग्न मन शांत हो गया। रुष्ट होकर आया था; संतुष्ट हो के चला गया। स्मित हास्य कर महाराज को मुजरा (वंदन) करते हुए वापस निकला। उसे एक नई दृष्टि मिल गयी। स्वराज्य की जिम्मेदारी का निर्वहन करने वालों को माया–ममता के व्यामोह से दूर रहना पड़ता है! वह समझ चुका था स्वराज्य का शासन कैसे हो तथा शिवाजी महाराज की स्वराज्य–हितैषी दृष्टि कितनी परिपक्व थी!

इस प्रकार हरेक बड़े प्रसंगों में, शिवाजी महाराज का एक–एक कदम स्वराज्य मंदिर के शुद्ध नींव के एक–एक मजबूत पत्थर के रूप में रचता जा रहा था। आने वाली पीढ़ियों के लिए आदर्श राज्य स्थापना के मार्ग में एक–एक उज्ज्वल पदचिह्नों के रूप में अंकित हो रहा था।

अफजल–वध की वार्ता प्रसारित होने से स्वराज्य के एक–एक किले पर स्फूर्ति एवं आनंद की अमृत वर्षा ही हो गयी। शत्रु–हृदयों में मरणांतक वेदनाएं एवं भय मच गया। यह समाचार सुनकर, एक सिद्ध योगी के

स्तुति–काव्य को नया स्फुरण प्राप्त हुआ! समर्थ रामदास का एक काव्यमय पत्र शिवाजी महाराज को पहुँचा। शिष्य की प्रथम महानतम कार्य सिद्धि के बाद, गुरु की ओर से आया प्रथम आशीर्वाद पत्र! उसमें उन्होंने शिवाजी राजा के बारे में, "निश्चय का महामेरु, विचारशील, आचारशील, धर्मशील, धर्मरक्षक, यशवंत–सामर्थ्यवंत–वरदवंत–नीतिवंत–पुण्यवंत–विवेकवंत राजा", ऐसा स्तुतिगान गान किया है।

❖❖❖❖❖

पन्हालगढ़

– पावनखिंड

तोपों के इशारे तक मेरी तलवार चलेगी!

अफजल-वध से शिवाजी महाराज को स्वराज्य-विस्तार अभियान के लिए महान स्वर्ण अवसर प्राप्त हुआ। बीजापुर का आदिलशाह, भागनगर का कुतुबशाह, गोमांतक के पुर्तगाली, डच, अंग्रेज, फ्रांसीसी इन सबका ही नहीं, अपितु विदेशों में भी सर्वाधिक कुतूहल जगानेवाला प्रसंग याने अफजल-शिवाजी की भेंट! शिवाजी के विनाश की खबर सुनने के लिए बड़ी बेताबी से इंतजार में बैठे अनेक देशांतर्गत दुश्मनों को प्रत्यक्ष में घटी घटना सुनकर तीव्रतम हृदयाघात ही हुआ। खान का वध और उसकी पूरी फौज का खात्मा होने से स्वराज्य-स्थापना के कार्य में एक नया जोश, एक नया चैतन्य भर गया।

अफजल-वध की खबर सुनते ही बीजापुर सल्तनत में मची खलबली का पूरा लाभ उठाने में शिवाजी महाराज ने बिल्कुल देर नहीं की। खान-संहार के दूसरे दिन सुबह ही नेताजी पालकर अपने राऊतों (घुड़सवारों) के साथ वाई में उतर आया। तब तक अफजल का बेटा फाजल खान, अंकुश खान और अन्य अनेक सरदार फरार हो गये हैं, ऐसा पता चला। वाई से भागे खान की अपार धन-दौलत, हाथी, घोड़े, ऊँट, इत्यादि सब नेताजी ने अपने कब्जे में कर लिए।

अब तो पल भर विश्राम के लिए भी फुरसत नहीं थी। कुछ समय के बाद, स्वयं शिवाजी महाराज भी वाई में उतर आये। पिछली रात तक खान के द्वारा चल रहे विनाश, उत्पीड़न के कराल अंधकार की गर्त में पड़े सब भू-प्रदेशों पर आज भोर में ही स्वातंत्र्य की उषा-किरण फूट पड़ी। उसी के प्रतीक के रूप में भगवा ध्वज आकाश में फहरने लगा। ग्रहण छूटने के बाद होने वाले सूर्य-दर्शन के समान जनता को शिवाजी महाराज का शुभ दर्शन हुआ। महाराज के बारे में जनमन में उमड़ उठे अभिमान, आनंद की कोई सीमा नहीं थी।

आगामी सब योजनाओं के बारे में महाराज ने पहले से ही सोच रखा था। उन्होंने नेताजी को सीधे बीजापुर की दिशा में भेज दिया। कोंकण एवं समुद्र की दिशा में दोरोजी को रवाना किया। उन्होंने खुद कोल्हापुर की

ओर अपना घोड़ा दौड़ाया। साक्षात, भोले शंकर के त्रिशूल के तीन तीक्ष्ण नोकों की तरह वे तीनों शत्रु का व्यूह भेदते हुए निकल पड़े। कदम-दर-कदम मातृभूमि की दास्य-शृंखलाएं टूटने लगीं। अब शिवाजी की कहानी ही समाप्त हो गयी ऐसा सोच निश्चिंत होकर सब दुश्मन अपने होशोहवास खोकर बैठे थे कि उनके सीनों पर ही शिव का त्रिशूल-तांडव आरंभ हो गया। खान मारा गया है, यह खबर पहुँचने के पहले ही शिवाजी और भवानी का दर्शन हो रहा था! "हर हर महादेव" इस रणघोष की गर्जना सुननी पड़ती थी। इधर शिव-त्रिशूल के तीनों अग्र, इस प्रकार आदिलशाही सल्तनत को भेदते आगे बढ़ रहे थे, तभी उधर बीजापुर दरबार प्रतापगढ़ से प्रतीक्षित वह 'खुशखबरी' सुनने के लिए बेताबी से अपने कान खोले बैठा था। सुरम्य कल्पनाओं की अटारी में बैठकर, आदिलशाह और बड़ी बेगम दोनों ही एक से एक सुन्दर सपनों के महल बना-सजा रहे थे। तभी अफजल का बेटा फाजलखान हाँफते-हाँफते वहाँ आ धमका। उसने खबर दी! क्या? बड़ा खान मर गया! खुद शिवाजी ने ही पेट फाड़कर उसे मार दिया!! सारी फौज को भी नेस्तनाबूद किया! फौज का सारा साजो-सामान शिवाजी के हाथों लग गया! एक-से-एक बदतर, खौफनाक और दिल दहलानेवाली खबरें!

सुल्तान और बड़ी बेगम दोनों के दिल ही मुँह में आ गये। शिवाजी का कटा सिर देखने को मिलेगा, ऐसी आस लगाये बैठे उन दोनों को अफजल खान के सिर का दीदार भी हमेशा के लिए नामुमकिन हुआ। बड़ी बेगम ने तो खाना-पीना ही छोड़ दिया और आदिलशाह ने दरबार जाना बंद कर दिया। उसे अपना मुँह दिखाने के लिए भी जगह नहीं रही। समूचे बीजापुर पर श्मशान-सा सन्नाटा छा गया। इस आघात से संवरने के पहले ही शिवाजी कोल्हापुर पहुँच गये; पन्हालगढ़ पर अपना कब्जा जमा लिया, ये खबरें सुल्तान के कानों पर टकराती आ धमकी! अब इस शैतान को रोकें भी तो कैसे? जिसने इतना कुछ किया, क्या वह बीजापुर की धूल उड़ाये बिना थोड़े ही रहेगा? यह चिंता करते-करते सुल्तान का दिल थर्रा उठा।

साथ में आयी नेताजी की खबर! उसने गदग, हुक्केरी, गोकाक आदि स्थानों पर झंझावात की तरह धावा बोल दिया। लक्ष्मेश्वर तक आदिलशाही की सारी धन-दौलत पूरी तरह साफ करते हुए वह कोल्हापुर की ओर उड़न-छू हो गया। ऐसी दिल दहला देने वाली खबरें भी मिल गयीं।

अफजल खान के संहार के अठारह दिनों के अंदर ही पन्हालगढ़ से वाई तक का सारा भू-प्रदेश स्वराज्य में शामिल हुआ। अपने हिस्से का काम फतेह कर नेताजी भी शिवाजी महाराज से मिलने पन्हालगढ़ पर हाजिर हुआ। पन्हाला के साथ वसंतगढ़, कल्याणगढ़ जैसे दुर्भेद्य किले भी शिवाजी के कब्जे में आ गए।

इतनी लंबी हार की कतार देखकर बीजापुर के सभी सरदार गुस्से से अंगार उगलने लगे। वालिद के खात्मे से तो फाज़ल अंदर ही अंदर झुलस रहा था। कोल्हापुर, पन्हालगढ़ इत्यादि अपनी जागीर के हिस्से गँवाने के बाद तो रुस्तमे जमां के जिस्म में कोई अनजान-सी आग लगी थी। इन दोनों को सेनापति बनाकर दस हजार पठानों की फौज, तोपों, हाथी, घोड़ों के साथ लैश होकर शिवाजी के खिलाफ निकल पड़ी। हम शिवाजी पर हमला करने निकल पड़े हैं, इतना भर समझते ही वह फौज लड़ाई के पहले ही आधी परास्त हो गयी। तब तक, यह शिवाजी याने आदमी नहीं बल्कि एक डरावना शैतान ही है; वह उड़ सकता है, गायब भी हो सकता है; ऐसा बीजापुर के एक मशहूर मुस्लिम लावणीकार ने लिख भी दिया था। यही यकीन बनकर बीजापुर के सब फौजियों के दिलो-दिमाग पर बड़ी गहराई तक अंकित हो चुका था।

बीजापुर की फौज उनसे 'भेंट' करने निकल पड़ी है, यह खबर गुप्तचरों से महाराज तक पहुँची। तत्काल उनके स्वागत के लिए स्वयं महाराज पन्हालगढ़ से उतर आए। फाजल और रुस्तम कोल्हापुर के पास पहुँचे ही थे कि उन पर अकस्मात एक खबर बिजली-जैसी गिर पड़ी।शिवाजी तथा नेताजी दोनों शैतान मिलकर अपने ऊपर हमला करने आ रहे हैं। देखते ही देखते महाराज के पाँच हजार योद्धाओं ने बीजापुर फौज का

कत्ले-आम कर डाला। उन्होंने यहाँ पर भी प्रतापगढ़ युद्ध के अपने 'प्रताप' का पुनः बखूबी अभिनय किया। वे दोनों पीठ दिखाकर भाग रहे हैं, यह देखते हुए महाराज के मुखमंडल पर स्मित की आभा उमड़ रही थी! दो सहस्र घोड़े, हाथी आदि के अलावा प्रचंड विजय; इतनी कुछ उनकी उस रोज की कमाई थी।

उधर दाभोल बंदरगाह में अफजल खान के माल से लदे तीन जहाज खड़े हैं, यह समाचार गुप्तचरों से महाराज को मिला। दोरोजी उधर दौड़ता गया। तब तक तीनों जहाज अंग्रेजों की सुरक्षा में राजापुर की ओर बढ़ चुके थे। उन दिनों राजापुर याने अंग्रेजों के आयात-निर्यात का एक बड़ा भारी केंद्र था। वह व्यापारियों-उद्यमियों से भरा-पूरा एक धनवान शहर था। समाचार मिलते ही दोरोजी दाभोल से राजापुर की ओर दौड़ा। राजापुर पहुँचते ही उसे पता चला कि अंग्रेजों की सांठगांठ से वे जहाज "अदृश्य" हुए हैं। तब हेनरी रिविंग्टन वहाँ के ईस्ट इंडिया कंपनी का प्रमुख था। बड़ा चालाक! अफजल खान के जहाज कहाँ हैं, ऐसा पूछने वाले दोरोजी को, "हम केवल व्यापार करने आये हैं। राजकार्य से हमारा कोई वास्ता नहीं है।" ऐसा उत्तर दिया। दोरोजी कोई बेवकूफ पीर का चेला नहीं था कि वह उस पर विश्वास करे। अंग्रेज अब सीधी बात नहीं मानेंगे, यह देखते ही दोरोजी ने उनकी वखारें ही लूट ली; फिलिप गीफर्ड नामक अंग्रेज को कैद किया। नाक दाबने पर जैसे मुँह अपने आप खुलता है, उसी तरह अंग्रेज तब सीधे रास्ते पर आ गये। महाराज का कोंकण में एक दुश्मन - जंजीरे का सिद्दी था; उसके खिलाफ हम शिवाजी को मदद करेंगे, ऐसा अंग्रेजों ने आश्वासन दिया। परंतु केवल मौखिक आश्वासन पर विश्वास कर फिलिप को रिहा करने के लिए दोरोजी तैयार नहीं हुआ; लूटा हुआ माल भी वापस नहीं किया। उसने वहाँ का अपना सारा काम पूरा किया; वापस आकर महाराज को सारी हकीकत बता दी। दोरोजी का पराक्रम, राजनीति कौशल आदि देखकर महाराज अत्यंत प्रसन्न हुए। अंत में, जंजीरे के विरोध में सहायता के आश्वासन के आधार पर फिलिप को छोड़ देने का आदेश दिया। अपने

एक-एक व्यक्ति के लिए अंग्रेज कितने जाग्रत एवं तत्पर होते हैं?

नेताजी की मुहिम अनूठे ढंग से चली थी। आखिर उसने मिरज के किले की घेराबंदी कर ही डाली। तथापि मिरज का वह माटी का प्रचंड किला उतनी सहजता से झुकने वाला नहीं था। इसलिए पहले जैसे नेताजी को हमले-लूटपाट जारी रखने की सहूलियत देने स्वयं महाराज ही मिरज में उपस्थित हुए। वहाँ की घेराबंदी जारी रखी गयी। इस प्रकार तीनों दिशाओं में निकले शिवाजी, नेताजी, दोरोजी इनको कदम-कदम पर अपूर्व यश एवं श्री मिलती गयी। याने कि स्वराज्य में अफजलखान के आगमन का मुहूर्त अच्छा था!

..... २ .....

फाजल और रुस्तम के लटकते मुखड़े देखने के बाद बीजापुर आदिलशाह की नींद हराम हो गयी। बड़ी बेगम ने तो हज यात्रा पर जाने का इरादा जाहिर किया! "शिवाजी" ये तीन अक्षर स्वराज्य के सब शत्रुओं को दिन-रात सताने लगे। उस समय अंग्रेज, डच, पुर्तगालियों के अपने-अपने देश को भेजे पत्रों में इस "शिवाजी नामक भय" का खूब उल्लेख हुआ।

अब आदिलशाह भी इस नित्य-भय से मुक्त होने का मार्ग ढूंढने लगा। तो शिवाजी को मसल-कुचल देने वाला अब कौन बचा है? इसकी फिक्र में आदिलशाह दिन-रात डूबा रहता था। आखिर उसे एक जंग-बहादुर की याद आ गयी सिद्दी जौहर! जौहर याने रत्न। सही मायने में, वह शमशेर-बहादुरों में रत्न ही था। कार्यदक्षता, पराक्रम, समर-कुशलता के लिए वह मशहूर था। लेकिन किसी कारणवश बीजापुर सुल्तान की मर्जी खफा हुई और वह किसी दूर कोने में पड़ा रहा। अब तो दस्तूर-खुद सुलतान ने ही सिद्दी जौहर को बुलाकर, "सलाबत खान" की उपाधि से उसे सम्मानित किया। इससे जौहर को भी बड़ी खुशी और तसल्ली हुई। सुल्तान ने उसे शिवाजी के खासोखास मुहिम पर नामजद किया। उसके साथ नामी-गिरामी मुसलमान और हिंदु सरदार दिये। पंद्रह हजार राऊत (घुड़सवार), बीस हजार लश्कर, हजारों ऊँट-हाथियों से लैस बड़ी

भारी-भरकम फौज जौहर के साथ जाने के लिए तैयार हुई। इसी समय शिवाजी के सभी दुश्मनों को जौहर के साथ जाकर मिलने का फरमान भी सुल्तान ने जारी किया। एक बार फिर बीजापुर सेना सरंजामों और समरोन्माद से लबालब भर गया। इतने से शायद तसल्ली नहीं हुई तो सुल्तान ने दिल्ली के औरंगजेब को भी आपत्ति में मदद की अर्जी पेश की। अब तो सुल्तान ने शिवाजी का कांटा उखाड़ फेंकने के लिए जबरदस्त जंग छेड़ रखी थी। शिवाजी से हमेशा के लिए पिंड छुड़ाने के लिए औरंगजेब ने भी बड़ी फौज भेजने का अपना इरादा जाहिर किया।

१६६० ई. भीषण विपत्तियों के साथ ही आरंभ हुई। जहाँ शिवाजी महाराज घेराबंदी कर बैठे थे उसी मिरज की ओर सिद्दी जौहर ने कूच किया; यह समाचार महाराज तक पहुँचने में विलंब नहीं हुआ। तुरंत उन्होंने वहाँ से मोर्चाबंदी उठाई और पन्हालगढ़ की ओर प्रस्थान किया। "मैं आ रहा हूँ" इतना भर सुनते ही शिवाजी फरार हो गया, ऐसा सोचकर सिद्दी गरूर से फूला नहीं समाया! हमेशा हार और हार की ही बातें सुनने वाले बीजापुर सुल्तान को तो "बांझ को पुत्र प्राप्ति" के लक्षण देखने जैसा आनंद हुआ! १६६० ई. की वर्ष प्रतिपदा, युगादि के दिन! शिवाजी महाराज पन्हाला पर पहुँचे और वहीं पर ठहर गये। नये संवत्सर के नये साहस का शंखनाद उसी किले के उत्तुंग बुर्ज से गूँज उठा!

महाराज ने अपने ठहरने के लिए इसी किले का चयन क्यों किया, इसके पीछे कई कारण भी थे। उतनी भारी फौज के साथ मैदानी इलाकों में युद्ध की बात तो असंभव ही थी। और प्रतापगढ़ अथवा राजगढ़ दुर्भेद्य होते हुए भी वे स्वराज्य के गर्भस्थान पर थे। स्वयं वहाँ जाना याने दुश्मन को सीधे घर में ही बुला ले जाने जैसा था। शत्रु को यथासंभव स्वराज्य की सीमाओं पर ही रोके रखने की शिवाजी महाराज की योजना थी। पन्हाला भी अतीव दुर्गम किला ही! दो महीने के अंदर ही वर्षाकाल का आरंभ होना था। और वह भी पश्चिम-घाट की मूसलाधार बरसात! बीजापुर के विलासी, भोगपसंद फौज की घेराबंदी तब अपने आप ही ढीली पड़ेगी और पन्हाला से चकमा देकर दूसरे किले पर फरार होना संभव

होगा। फिर, उस दूसरे किले का घेरा डालने का दुस्साहस जौहर कभी नहीं कर पाएगा। यह महाराज का अंदाजा था।

आते ही सिद्दी जौहर ने पन्हाला के चहुँ ओर अपना मोर्चा बिठा दिया। अब महीने बीतें या साल; शिवाजी को पकड़ूँगा या मार के ही दम लूँगा। उसके बाद ही वहाँ से लौटूँगा, ऐसे पक्के इरादे से वह खड़ा हो गया। घेराबंदी के तुरंत बाद किले पर अचानक धावा बोलते हुए चढ़ाई करने का साहस भी उसने करके देखा। लेकिन ऊपर से हो रही तोपों की मारों तथा बाणों की बौछारों के सामने आगे बढ़ाया हुआ अपना कदम पीछे लेने के लिए वह मजबूर हो गया। साथ में अनगिनत पठानी फौजियों की जानें गयीं, वह अलग! महाराज ने किले के चारों ओर एक लक्ष्मण-रेखा बड़ी कड़ाई से खींची थी, ताकि उसे पार कर दुश्मन का एक छोकरा भी गढ़ पर न आ सके।

दिन-ब-दिन गढ़ के नीचे जौहर की ताकत बढ़ती ही गयी। नित नए-नए सरदार आकर उसका साथ देने लगे। उनमें हिंदु सरदार ही अधिक थे! अपने देश के दुर्भाग्य की भी क्या कहें? पन्हालगढ़ को क्षतिग्रस्त करने की क्षमता रखने वाली तोप उस वक्त जौहर के पास नहीं थी। इससे मानो वह लूला बन गया था। तभी उसे याद आयी 'राजकार्य से अलिप्त', 'केवल व्यापार के लिए आए' अंग्रेजों की! जौहर को पता था कि सिर्फ उन्हीं के पास वैसी ताकतवर तोप है। वैसी ही एक मातबर तोप मुझे भेज दीजिए, ऐसी गुजारिश जौहर ने अंग्रेजों से की। उन्होंने बड़ी गहराई से उसका साधक-बाधक विचार किया, "शिवाजी आज बड़ी मुश्किल में फँसा है। अब उसका बचाव हो पाना नामुमकिन है। फिर, उससे काहे डरें? उसके साथ पहले किए गए

सज्जन व्यापारी!

समझौतों की बिसात ही क्या है? उनको तोड़ने में कोई हर्ज नहीं!" उसी के अनुसार, खुद हेनरी रिविंगटन ही अपनी बड़ी तोप तथा उसके लिए जरूरी गोला बारूद लेकर राजापुर से निकला और पन्हाला की ओर चल पड़ा।

शिवाजी महाराज किले पर चिंतामग्न होकर चहल-कदमी कर रहे थे। तभी "धड़ाऽऽ धड़, धड़ाड़ड़ऽऽ धड़", एक ही झपकी में ये भयंकर ध्वनि सुनाई दी! किले का एक बुर्ज उड़ गया। महाराज विस्मय-चकित हुए। यह नई तोप जौहर के पास आयी कैसे? किन से? उन्होंने नीचे देखा। कुछ ही दूरी पर, खुद अंग्रेज ही उस तोप के पास अपना झंडा गाड़कर उसमें गोला-बारुद भरने का काम कर रहे हैं, ऐसा दृश्य! अंग्रेजों का यह विश्वासघात देखकर महाराज क्रोध से ज्वालामुखी जैसे हो गए। परंतु उसका लेखा-जोखा अभी नहीं, बाद में!

दिन-ब-दिन जौहर की घेराबंदी कड़ी होती हुई अधिकाधिक घातक बनती गयी। उसे भेदकर पार जाना एक चींटी के लिए भी असंभव था। एक बार कुछ लोग किले से उतर भी आए और घेरे से पार होने का प्रयत्न किया। परंतु वे सब दुश्मनों के शिकंजे में फँसे और मारे गये। लगभग उसी समय, सिद्दी जौहर ने दो सामरिक महत्व की चालें चली। पन्हाला से वायव्य की ओर खड़े विशालगढ़ की मोर्चाबंदी करने के लिए उसने सूर्यराव सुर्वे और जसवंतराव पालवणीकर नामक दो सरदारों को भारी फौज के साथ भेज दिया। वहाँ से पन्हाला पर कोई साधन-सामग्री निकल न पड़े यही उसका दूरदर्शी उद्देश्य था। दूसरा अहम काम याने बरसात के दिनों में भी घेराबंदी की कड़ाई में कोई ढिलाई न आवे, इसके लिए संपूर्ण सेना के सिर पर छप्परों का निर्माण करवाया!

सुल्तान से भी जौहर को कदम-कदम पर चेतावनी भरे आदेश आ रहे थे। "जागते रहो! होशियार!! शिवाजी बड़ा चालाक है। किस वक्त कौन-सी तरकीब चलता है, कह नहीं सकते!" सिद्दी जौहर को भी अपनी जिम्मेदारी भली-भाँति मालूम थी। पूरे जिस्म को ही आँखें बनाते हुए उसने मोर्चे के जरिए मौत का फंदा और भी कड़ा कर दिया। इस प्रकार

शिवाजी महाराज की स्थिति दिनों-दिन अधिकाधिक विकट तथा आपतकारी बनती गयी।

..... ३ .....

उधर, औरंगजेब के पास अली आदिलशाह की अर्जी पहुँच गयी। "शिवाजी काफिरी रियासत की बुनियाद डाल रहा है। इस्लाम के लिए बड़ा खतरा पैदा हुआ है। इसलिए हमारी मदद करने, फौरन भारी फौज के साथ किसी तजुर्बेकार सिपहसालार को भेज दीजिए।" पीछे कभी स्वतः शिवाजी ने औरंगजेब को बड़ी बुरी तरह से परेशानी का मजा चखाया था। उस बेइज्जती की नुकीली चुभन औरंगजेब को आज भी सता रही थी। उसका बदला चुकाने का मौका आज उसे मिल ही गया! औरंगाबाद में दक्खन का सूबेदार और बादशाह का खासोखास मामा शाइस्तान खान को शिवाजी पर चढ़ाई करने का फरमान दिल्ली से जारी हुआ। खान एक मँजा हुआ सेनापति और मुत्सद्दी भी था। उसने अपनी फौज को सुसज्जित कर कूच किया।

उसके फौज की ताकत कितनी है, कोई अंदाजा? ७७,००० राऊत (घुड़सवार), ३०,००० लश्कर! उसी की तुलना में अन्य सब साधन-सामग्री, सरंजाम आदि के साथ-साथ पूरे भारत तथा बाहर भी बहादुरी और मर्दानगी के लिए मशहूर पठान, हब्शी अरबी, मुगल, राजपूत, मराठा, बुंदेला सरदार उसकी फौज में थे। शिवाजी के करीबी रिश्तेदार थे; उसमें स्वयं महाराज का सौतेला भाई वेंकोजी राजे भोंसले भी था! साथ में थी, एक परिशुद्ध महाराष्ट्रियन ब्राह्मण महिला, घोड़े पर सवार होकर, शाइस्ता खान के संग निकल पड़ी थी! उसके पति ने सेना में रहते ही अपना दम तोड़ा था; पुत्र ने भी औरंगजेब के लिए ही जान दी थी। तब से औरंगजेब के लिए ही अपना पल्लू कस के वह खुद निकल पड़ी थी। समरांगण में साक्षात् व्याघ्रिणी! उसकी ईमानदारी भरी खिदमत देखकर औरंगजेब बड़ा खुश हुआ और उसे "पंडिता रायबाघन" इस विरुद से नवाजा! उसका असली नाम था सावित्रीबाई। उसका और जीजामाता का मायका वराड प्रांत के एक ही तालुका में था। परंतु दोनों में अंतर था। स्वर्ग और नरक

का! एक ने स्वयं तथा स्वपुत्र को स्वधर्म की रक्षा एवं स्वराज्य-स्थापना के कार्य में अर्पित किया था; तो दूसरी ने खुद को तथा अपने बेटे को परधर्म-रक्षा और परराज्य की खिदमत में जुटा दिया था। हमारे देश के विगत दस-बारह शताब्दियों के इतिहास में दिखाई देने वाली मनोवृत्तियों के मानो प्रतीक हों!

शाइस्ता खान की फौज याने महासागर ही! हथेली भर विस्तार के स्वराज्य को डुबो देने ही वह उफन कर निकला था। एक ओर सिद्दी जौहर की फौज, तो दूसरी ओर शाइस्ता खान का लश्कर; दोनों मिलाकर डेढ़ लाख से भी अधिक। तब महाराज की सब खड़ी-पड़ी सेना जोड़ने पर भी पंद्रह हजार से अधिक नहीं होती याने केवल एक-दशांश हिस्सा! क्या शिवाजी महाराज को शत्रु सामर्थ्य का सही-सही आकलन था ही नहीं? पूरे शरीर को ही आँखें बनाकर बैठे एवं पग-पग पर जासूसों का जाल फैलाने वाले महाराज को उसका संपूर्ण भान था। परंतु उससे क्या उनको तिलमात्र भी भय या आतंक था? अशक्य; सह्याद्रि के श्रेष्ठ पुत्र का सिंह-हृदय कंपायमान होना कालत्रय में भी असंभव था!

ईस्वी १६६० की वर्ष-प्रतिपदा। दूसरे ही दिन शाइस्ता खान ने स्वराज्य की सीमाओं में पैर रखा। उसके पश्चात्, गांव-गांव में, खेतों-खलिहानों में उसने लगातार आगजनी, लूटपाट की धूम मचायी। सब ओर मठ-मंदिरों का विध्वंस, नर-नारियों की नृशंस हत्याएं, हिंसाचार, धर्मांतरण बलात्कारों आदि का नंगा नाच आरंभ हुआ। अजस्त्र अजगर के समान एक-एक किले को निगलते वह आगे बढ़ रहा था। उसे रोकें भी तो कैसे? उधर, महाराज पन्हालगढ़ में हाथ-पैर हिलाने की स्थिति में भी नहीं थे। अब खान को थामें भी तो कौन? एक वृद्धा! राजगढ़ पर स्वराज्य की राखनहारी बन बैठी जीजाबाई! उनकी सूचना के अनुसार, राजगढ़ से निकलने वाली मावला वीरों की छोटी-छोटी टोलियां मुगल फौज पर अचानक हमला करने लगीं। रात के अंधेरे में गिरि-कंदराओं में उन पर टूट पड़ना; हाथ लगने वाले दुश्मनों के छक्के छुड़ाना और फौरन फरार होना; बस!

इस नमूने का "वक्रयुद्ध" का तंत्र मुगलों के लिए बिल्कुल नया था। मराठों के चपल घोड़ों की टापों से, तेज तलवारों के प्रहारों से, मुगली अजगर का अवाढ्व्य देह रक्त से लथपथ बन तो रहा था। परंतु उतने से उसके मोटे चमड़े को बींध कर उसकी जान को कोई खतरा पहुँचना मुमकिन नहीं था। आखिर शाइस्ता खान पुणे आकर रुक गया। लालमहल में ही उसने अपना डेरा डाला। शिवाजी महाराज ने जहाँ अपनी बाल-लीलाएं करते-करते स्वराज्य का सपना संजोया था; ऐसा उनका अपना स्वतः का प्रासाद! वही अब दुश्मन का मुख्य थाना बना! उसके इर्द-गिर्द अपना मुकाम जमाकर बैठी एक लाख की दुश्मनी फौज! इस तरह स्वराज्य की राजधानी पर ही भयंकर काल की घनी काली छाया छाने लगी।

उधर, बीजापुर के चहुँ ओर सब मुल्कों में धूलि का चक्रवात चलाते घूम रहे नेताजी पालकर को भी यह समाचार मिला; शिवाजी महाराज पन्हालगढ़ में सिद्दी जौहर की मर्कट-मुष्टि में आबद्ध हुए हैं। अपनी पांच-छः हजार की चुटफुटी सेना के साथ जौहर के उस बलाढ्य फौज को भेद कर महाराज को छुड़ाना अतीव अशक्य-सी बात थी। तो फिर? नेताजी ने एक भेद-तंत्र का अवलंब किया। प्रत्यक्ष बीजापुर को धक्का देना। तब, राजधानी की रक्षा के लिए, वहाँ से खुद जौहर अथवा वहीं के किसी और को तो आना ही पड़ेगा अर्थात् घेराबंदी अपने आप ही ढीली पड़ेगी! तब तो बीजापुर की पूरी फौज ही उस मोर्चेबंदी में लगायी गयी थी।

तब तक नेताजी ने हुक्केरी, गोकाक, धारवाड, गदग आदि सब स्थान जीत लिए थे। अब उसने अपने भाले की नोंक सीधी बीजापुर की ओर झोंक दी। शिवाजी का सरसेनापति "प्रति-शिवाजी" नेताजी पालकर अब अपनी राजधानी के ऊपर ही धावा बोल रहा है, यह खबर बादशाह को मिली और उसकी छाती ही फट गयी। तब बीजापुर में सिर्फ पांच हजार की फौज थी। वही फौज बादशाह ने खवास खान के साथ भेज दी, अल्लाह पर अपना दारोमदार रखते हुए! बीजापुर का नसीब अभी भी मजबूत था। बीजापुर समीप आते-आते नेताजी की सेना बहुत ही थक

गयी। अफजल-वध के बाद अब तक, बगैर पल भर के विश्राम के वह सेना रणांगन में लगातार संघर्ष करती ही आयी थी। बीजापुर की फौज तो ताजगी-भरी थी। साथ में थी अपनी राजधानी और अपने सुल्तान की जान के बारे में उसके एक-एक फौजी की बेचैनी! इसलिए उनका होश और जोश बड़ा तगड़ा था। नतीजा, नेताजी की सेना को मुँह की खाकर पीछे हटना पड़ा। लेकिन दमछाक होकर लौट रहे उन मराठा सैनिकों का पीछा करने की हिम्मत उस विजयी बीजापुर फौजियों को नहीं हुई! बीजापुर बच गया; इसी बात की सबसे बड़ी तसल्ली खवास खान को थी! अब वह नेताजी के साथ अपने भाग्य की परीक्षा क्यों करे? तब तक, स्वराज्य में तुरंत लौटने की महाराज द्वारा भेजी सूचना भी नेताजी को मिली। वह वापस लौट गया।

अपने आगे की योजना के बारे में विचार-विनिमय करने नेताजी राजगढ़ आये, जीजामाता के संदर्शनार्थ उनकी मनस्थिति तब कैसी रही होगी? मुट्ठी भर सेना के भरोसे शाइस्ता खान के उस अतिबलाढ्य फौज के खिलाफ एकाकी खड़े होकर स्वराज्य की रक्षा के लिए लड़ना चाहिए। इसके अलावा, उस माँ ने अपने लाड़ले पुत्र को देखे बगैर अब तक ग्यारह महीने बिताए थे। आगे कभी वह देख भी पायेगी या नहीं, इस भीषण व्यथा-चिंता से उसका अंतःकरण निचुड़ा जा रहा था। उसके शिवा को छुड़ा के लानेवाला भी उसे कहीं दिखाई नहीं दे रहा था। सब अपने-अपने स्थान पर खड़े होकर स्वराज्य की रक्षा में ही लगे थे। ठीक है, जीजामाता ने निर्धारित किया, शिवाजी को मुक्त करने स्वयं ही निकलूंगी! पल्लू बांधकर खुद निकल भी पड़ीं! राजगढ़ पर सभी के सामने बड़ा पेचीदा सवाल खड़ा हुआ, अब क्या करें?

तभी नेताजी आ पहुँचे। सही समय पर स्वयं सरसेनापति ही आया? राजगढ़ ने राहत की साँस भरी! नेताजी के साथ शूर सरदार सिद्दी हिलाल भी था। स्वयं राजमाता को ही महाराज की मुक्ति के लिए निकलने की सिद्धता में खड़ी देखकर तो नेताजी लज्जा के मारे चूर-चूर हो गया। उन दोनों को देखते ही जीजाबाई ने अपने हृदय की भड़ास

निकाली, "वहाँ तुम्हारा राजा वैरियों के चंगुल में फँसा पड़ा है और लड़ाई से डर के इधर दौड़ते आने में तुम्हें शरम नहीं आयी? अब मैं ही जाऊंगी अपने शिवा को छुड़ा लाने।" माता के अंतःकरण का आक्रोश नेताजी समझ गये। उनको दिलासा देकर पल–भर का भी विश्राम या विलंब किये बगैर वह उल्टे पाँव ही वापस लौट पड़े।

पन्हाला पर चिंतातुर बैठे महाराज का एक–एक अनुमान गलत साबित होने लगा। बरसात के दिनों में मोर्चेबंदी ढीली पड़ेगी, उनकी यह अपेक्षा पोली साबित हुई। अब अंतिम दारोमदार नेताजी पर ही था। उसने यदि बाहर से हमला करके मोर्चाबंदी में कुछ गड़बड़ी पैदा की, तभी मैं यहाँ से खिसककर पार हो सकूँगा, अब यही आस बची थी। एक दिन महाराज नेताजी के घेराबंदी की ओर निरख ही रहे थे कि मराठा सैनिक जौहर के मोर्चे पर टूट पड़े हो, ऐसा उन्होंने कहीं दूर पर देखा। वही उनकी आशा का अंतिम तंतु! महाराज की आँखें चमकीं।

लेकिन तजुर्बेकार सिपहसालार सिद्दी जौहर को उस हमले का मकसद फौरन पता चला। किले की मोर्चाबंदी बिल्कुल ढीली न पड़े, इसकी खास सावधानी उसने उठायी थी। उसने पहरा और भी कड़ा किया। घेराबंदी को किंचित भी धक्का न लगे इसलिए नेताजी को बड़ी दूरी पर ही रोक दिया। फिर भी नेताजी तथा सिद्दी हिलाल दोनों अपूर्व पराक्रम का प्रदर्शन करते हुए दुश्मनों के बेड़े को भेदकर आगे बढ़ने लगे। तथापि अपना बेटा युद्ध में मारा गया, यह सुनते ही सिद्दी हिलाल उस ओर दौड़ पड़ा। यह देख हिलाल की टुकड़ी डर के मारे दुश्मनों को पीठ दिखाकर भागने लगी। आगे घुस रहे नेताजी को हताश होकर लौटना पड़ा। वहाँ पर भी दैव महाराज के विरोध में ही खड़ा रहा। किले के अंदर का आहार–धान, शस्त्रास्त्र, गोलाबारुद के आज या कल समाप्त होते ही शिवाजी पर शरणागति की नामुश्की; तब तक अपने बेड़े में किंचित् भी ढीलापन न सहने का जौहर का संकल्प। ऐसी परिस्थिति में सब स्वीकार्य, परकीय निरीक्षकों ने, अब शिवाजी बच नहीं पाएगा, ऐसा अनुमान लगाया तो उसमें कोई आश्चर्य नहीं। नेताजी का प्रयास असफल होने के पश्चात्

स्वयं शिवाजी की अंतिम आस भी मुरझा गयी। स्वराज्य एवं स्वयं शिवाजी महाराज के प्राण पर ही बीत रहा यह संकट अफजल खान के आक्रमण से भी कई गुना अधिक भीषण एवं प्राणांतिक था।

उधर, पुणे में शाइस्ता खान ने अपना डेरा बड़ी मजबूती के साथ जमाया था। साथ ही साथ, नासिक इलाके के चाकण दुर्ग की भी मोर्चेबंदी कर रखी थी। इस प्रसंग में औरंगजेब की अदूरदर्शिता स्वराज्य के लिए सहायकारी एवं पूरक सिद्ध हुई। आदिलशाह के साथ न मिलो, स्वतंत्र रूप से शिवाजी के खिलाफ मुहिम चलाओ, ऐसी सूचना औरंगजेब ने शाइस्ता खान को पहले ही दे रखी थी। इसके विपरीत यदि वे दोनों दुश्मन ताकतें इकट्ठी हो जातीं, तो पन्हाला की मोर्चेबंदी महाराज के लिए अकाट्य मृत्युपाश ही बन बैठती, इसमें कोई संदेह नहीं था।

पन्हालगढ़ पर तब कुल छः हजार की सेना थी। किलेदार त्र्यंबक भास्कर, मुत्सद्दी गंगाधर पंत, एक और अमोघ स्वराज्य–रत्न भी वहाँ था – बाजीप्रभु देशपांडे। वह एक महान भीम–पराक्रमी योद्धा था। महाराज के बारे में साक्षात् महादेव जैसी ही भक्ति उसके मन में थी।

आषाढ़ बीतने आया। महाराज को किले के आश्रय में आये अब चार महीने हुए थे। ११ जुलाई १६६० ई. की सुबह महाराज को एक विलक्षण स्वप्न दिखलाई पड़ा। आधी नींद एवं आधे जाग्रत अवस्था में ही उन्होंने हाथ जोड़कर बार–बार तुलजा भवानी को नमन किया। तत्पश्चात् वे उठे और किले पर उपस्थित सब मुख्य सहकारियों को अपने पास बुलाया और कहा, "उधर शाइस्ता खान ने स्वराज्य पर चढ़ाई की है। हमें यहाँ पर सिद्दी जौहर के चंगुल में फँसे पड़े अब चार महीनों से अधिक काल बीत चुका है। यहाँ से बाहर निकल जाने की अब तक की हमारी आशा–आकांक्षाएं झूठी साबित हुईं। इसके बाद, इसी प्रकार कालापहरण करना सर्वथा अनुचित होगा। अब यहाँ से किसी भी तरह पार होना ही पड़ेगा। उधर शाइस्ता खान के हमलों का मुँहतोड़ जवाब देना ही पड़ेगा।"

महाराज की बातें सुनकर सहकारियों के शरीर को मानो साँप सूँघ गया। महाराज यहाँ से फरार होंगे? कैसे? सबको अत्यंत आश्चर्य, चिंता, कौतूहल!

महाराज ने अपनी योजना का ब्यौरा किले के प्रमुखों को बता दिया। योजना अत्यंत साहसिक थी। प्राणसंकट भी था। उसमें अहम भूमिका थी – गुप्तचरों की। उनकी सफलता पर ही आगे की पूरी योजना टिकी हुई थी। उस कड़े पहरे के बीच, उस साँप के घेरे में, कहीं कोई खिसक जाने जैसी ढिलाई की जगह है क्या? इसका पता लगाकर उनको वापस आना था! घनांधकार में निःशब्द होकर गुप्तचर किला उतरकर निकल पड़े। वैसे सर्पीले पहरे में, वे कैसे गये, कैसे वापस आये, कहाँ–कहाँ घूमे; इसके बारे में इतिहास गूँगा है, शायद आश्चर्य से! पौ फटने से पहले ही वे किले पर वापस आये। आनंद की खबर लाए। मगरमच्छ के दांतों के बीचों–बीच एक छोटा सा गलियारा छूटा था। पार होना है, तो वहीं से! किले के नीचे एक तंग जगह, सुलभ तथा खोजी आँखों से दूर। वही एक जगह थी, जो जौहर की गिद्ध–दृष्टि से बच पायी थी। परंतु उसके आस–पास, आगे–पीछे, सब ओर पहरा ही पहरा था। ठीक है, वही चोर–गली की राह तय हो गयी।

महाराज का मस्तिष्क अब बिजली की गति से दौड़ रहा था। दूसरे दिन का सूरज निकला। एकाएक किले का महाद्वार खोल दिया गया। नीचे से जौहर के सैनिकों ने वह देखा! मोर्चेबंदी से दमछाक होकर, शिवाजी शरण में आयेगा ही, आज नहीं तो कल जरूर आयेगा या फिर उसका दूत तो आएगा, इसकी ताक में जौहर बैठा ही था! तभी सफेदपोश एक आदमी किले से उतर आ रहा है, ऐसा दिखाई दिया। बेशक, वह शिवाजी का राजदूत ही होगा! आखिर शिवाजी शरण में आ ही गया! यह खुशी की खबर जौहर की छावनी भर में वायुवेग से फैल गयी। जौहर तक भी पहुँची। वह खुश हुआ; साथ में सतर्क भी! इसमें शिवाजी की कोई गहरी चाल भी हो सकती है, किसे पता?

किले से उतरे शिवाजी के राजदूत गंगाधर पंत असल में ही शिवाजी के शरणागति का एक पत्र साथ में लाये थे। बड़ी विनम्रता से वह खत जौहर को सुपुर्द किया। जौहर ने बड़ी सावधानी से वह पढ़ लिया, "वास्तव में किले के पायँते पर जब आपका शुभागमन हुआ, तभी आप से मुलाकात करना चाहता था। लेकिन डर, शर्म, कमनसीबी के मारे आ नहीं पाया। अब यदि आप फरमायें, तो किले के नीचे आकर आप से मिलूंगा और सब गुनाहों की माफी मागूँगा। आप तो पिता–जैसे ही हो। मुझे पनाह देकर, सम्हालिएगा। कल रात मैं खुद आकर अपनी सब धन–दौलत, मुल्क आपको सौंप दूंगा।"

पत्र देखते ही पल भर के लिए जौहर आश्चर्यचकित हुआ। बेशर्त पनाह की गुजारिश? कोई धोखा या साजिश होगी! आदिलशाह से हजार बार चेतावनी भी आ चुकी थी – होशियार, शिवाजी बड़ा दगाबाज है! लेकिन इस पत्र के पीछे शिवाजी की और कौन सी चाल हो सकती है; वह बात तो जौहर के मोटे दिमाग में क्या कुछ करने के बाद भी नहीं आ पायी। जैसे–जैसे वह सोचते गया, वैसे–वैसे उसे वह पत्र सच ही लगने लगा। "ऐसी बेबस हालत में वह कमनसीब शिवाजी कर भी क्या सकता है? खत में तो उसने सब कुछ साफ–साफ लिख ही दिया है। मेरी छावनी में आकर, मेरे साथ दगा करने की वह सोचेगा कैसे? इतना खास पागल भी वह नहीं है! अपने कहे अनुसार यदि वह कल रात आया नहीं तो? मेरा कोई नुकसान नहीं। मोर्चाबंदी तो पहले से है ही। वह उसी प्रकार जारी रहेगी। आज नहीं तो कल, उसे मेरी पनाह में आना ही होगा। मेरे जैसे बहादुर, मुत्सद्दी, चौकस सिपहसालार के सामने अब उसका खेल ही खत्म हुआ!"

बेचारा! खुदा ने उसके सिर में जितना भी भरा था, उस पूरे भेजे के साथ उसने सोच लिया; पूरी ईमानदारी से सोच लिया। अब भगवान ने शिवाजी को थोड़ा अधिक मस्तिष्क दिया, तो उसमें जौहर की क्या गलती हो सकती है? वह गुनाह तो था खुद खुदा का ही! सोच–सोच कर,

आखिर जौहर ने शिवाजी की वह अर्जी मंजूर कर ही डाली। लेकिन उसने सावधानी नहीं छोड़ी। शिवाजी अब शरण में आ रहा है, यह खबर उसके छावनी में सब ओर फैल गयी। खुद ही वह कल रात आ रहा है। चलो, चार महीनों की परेशानियाँ तो खत्म हुई! वे सब उस खुशनुमा ख्यालों में बेखबर होकर डूबने लगे। जौहर को पता लगने से पहले ही, उस मौज-मस्ती भरे माहौल में पहरे की कड़ाई अपने आप ढीली पड़ गयी। शिवाजी महाराज के सम्मोहन अस्त्र ने अपना काम कर दिया था!

उधर किले पर, महाराज के पलायन प्रक्रिया के सब ब्यौरे तैयार हुए। महाराज १२ जुलाई, १६६० ई. की रात में छः सौ योद्धाओं के साथ गुप्त रीति से निकलकर जासूसों के खोज निकाले दुर्गम मार्ग से फरार होंगे! कहाँ? विशालगढ़ को! पन्हाला से अंतर ४० मील का। इतनी दूर और पग-पग पर आफत! आसपास फैले हुए दुश्मनों के पहरेदारों, जासूसों को थोड़ा-सा भी पता लगा, तो सर्वनाश ही! जाने दीजिए, विशालगढ़ के पायँते तक पहुँचने पर तो संकट समाप्त होता था। वहाँ पर थी एक और अग्नि परीक्षा! उस किले को भी जसवंतराव तथा सूर्यराव की मोर्चेबंदी थी ही। याने, शिवाजी महाराज की यह योजना भी पागल साहस का एक जुआ था! लेकिन प्राप्त परिस्थिति में वही एक अतीव दूरदर्शिता का उपाय भी था। एक बार बरसात का मौसम बीत गया तो जौहर का प्रहार और प्रखर बनेगा। किले से पार होने का मंसूबा धूमिल होगा, असंभव होगा। उधर शाइस्ता खान का आतंक-अत्याचार बढ़ता जायेगा, अधिक असह्य, अपायकारी तथा बदतर ही होगा।

गंगाधर पंत गढ़ पर वापस आये। अपने दौत्यकार्य का वृत्तांत महाराज को प्रस्तुत किया। मानो अब योजना का दूसरा चरण यशस्वी हुआ। योजना का शेष विवरण एवं तैयारियां भी पूरी की गयी। शिवाजी के साथियों का धैर्य, साहस मानो प्रति पल सह्याद्रि के शिखरों से स्पर्धा करने लगे। रात नजदीक आयी। किले की सुरक्षा का भार त्र्यंबक पंत को सौंपते हुए, महाराज ने आदेश दिया : "पन्हाला अजेय है; उसे अजेय ही रखिए।"

रात हुई। अंधेरा छा गया; गहरा हुआ। साथ में थी आषाढ़ मास की बहती हवा, बरसात तथा गड़गड़ाहट भी। शिवाजी महाराज ने भवानी माता का स्मरण किया। अपनी धीर गंभीर चाल में वे महल से बाहर आए और साथ में समय की माँग के अनुसार महान दायित्व निभाने वाले साथी ही चाहिए! बाजीप्रभु देशपांडे के होते और कौन चाहिए? और साथ में निकल पड़े ६०० चुनिंदा मावल योद्धा! विशालगढ़ ४० मील दूरी पर था। महाराज को पालकी में ले जाना था। बाकी सब पैदल ही चलते जायेंगे। दूसरा उपाय नहीं। महाराज की पालकी भोइयों ने उठायी। उसी के पीछे दूसरी पालकी भी तैयार खड़ी थी। वह क्यों? किसे मालूम? महाराज की आज्ञा, बस! मावलों ने अपनी बलिष्ठ भुजाओं पर पालकी ढो ली। बाजीप्रभु भी निकला। मावला भी मिले। सब से आगे गुप्तचर।

रात के दस बजे थे। त्र्यंबक पंत से लेकर गढ़ का हर पत्थर मूक प्रार्थना कर रहा था, "हे भगवान, हमारे राजा को सुस्वस्थ पार कर।" बिना आवाज के किले का दरवाजा खोला गया। पालकी तथा परिवार बाहर निकल पड़े। देखते-देखते उस घनांधकार में वे सब अदृश्य हो गये।

जासूसों के पीछे-पीछे यह टोली दबे-कदम बढ़ती गयी। हवा, बरसात बड़ी तेज थी। बीच-बीच में बिजली की चमचमाहट। अब अनजाने भी कोई जौहर के पहरेदारों के नजर आता तो? प्रभु, वह कल्पना तक न आए! हे आकाश, चमचमाना बंद करो! सबके अंतःकरण में एक ही स्मरण, एक ही जाप – जगदंब! जगदंब!

किला उतर चुके थे। अब तो सबके सीने की धड़कन और तेज बन गयी। गुप्तचर निःशब्द होकर, खोज निकाले गए राह पर ही झट-झट बढ़ रहे थे। आस्ते-आस्ते मोर्चेबंदी की पंक्ति नजदीक आती गयी। उतनी भारी बरसात में भी, सब पसीना-पसीना हो गये थे! और सौ कदम; अब पचास कदम! वह भी पार हुआ। मोर्चेबंदी की – नहीं, नहीं, मृत्यु की ही रेखा तक आ गये!

प्राचीन काल में भी एक राक्षस के हाथों से एक अवतारी बालक को बचाने इसी तरह छोड़ते-दौड़ते निकलना पड़ा था। वह भी अकेला

निकला था, सैनिकों का पहरा फाँदकर ही, अंधेरी रात में, मूसलाधार बरसात में! उसके मन में भी ऐसी ही प्रभु की प्रार्थना, स्मरण। तब कंस के खड्ग से बचाने वसुदेव नवजात शिशु कृष्ण को उठाकर निकले थे।

बाजीप्रभु तथा उसके मावला साथी भी कलियुग के इस धर्मरक्षक अवतारी पुरुष को उठाकर उसी प्रकार दौड़ रहे थे। बरसात में, कँटीले–पथरीले राह में, उस मोर्चेबंदी के मृत्यु–जबड़े में! उसे पार करने; पार कर आगे जाने। परंतु जौहर के पहरेदार तो शिवाजी अगले ही दिन अपनी शरण में आ रहा है, इस मीठे ख्यालों की स्वप्निल दुनिया में मशगूल थे! उन्हीं के बीचों–बीच से ही शिवाजी ठीक इस वक्त फरार हो रहा है, इसकी कल्पना तक उनको नहीं आयी।

मोर्चाबंदी की सीमा भी पार कर आगे निकलना उन्हें संभव हो पाया। अब गंतव्य विशालगढ़! उसी दिशा में टोली दौड़ने लगी। काली रात में, भयावह अरण्य में, वन्य मृगों की गर्जनाओं में! वहाँ मानो दौड़ने की स्पर्धा ही चली थी। हाल का संकट तो टल गया, ऐसा सोच के वे राहत की साँस ले ही रहे थे कि.....!

कहीं पर सर्रर्रर्र सर्रर्रर्र हुआ! सबका दिल मुँह में आ गया! वह आवाज क्या हो सकती है? किसकी हो सकती है? वे अपने शरीरों की आँखें बनाकर, चारों ओर ढूँढने लगे। शेर? चीता? या सियार? उस घने अंधेरे में पता चले भी तो कैसे? लेकिन उनका अंदेशा मजबूत होता गया। शायद वह किसी मनुष्य की ही आवाज थी।

कदाचित वे सिद्दी जौहर के जासूस ही होंगे! हाँ, वे ही थे! महाराज की पालकी उठा कर दौड़ने वालों को उन्होंने देख ही लिया था। उसी समय बिजली चमकी। उससे भी महाभयावह बिजली सब मावलों के हृदयों पर गिरी।

अब तो वक्त से मुकाबला; समय के साथ स्पर्धा! पल–पल मौत की साया उनके पीछे–पीछे ही आ रही थी। सोचने के लिए भी समय नहीं था। सोचना, योजना सब कुछ पहले ही समाप्त हो चुका था। क्षण भर के लिए टोली रुकी। खाली पालकी आगे बढ़ी। उसमें शिवाजी के जैसा ही

वेश पहना हुआ आदमी बैठा। अब नये "महाराज" को उठाकर, पहले की राह पर ही १५-२० मावला दौड़ते निकल पड़े। बाजीप्रभु तथा अन्य मावला शिवाजी की पालकी के साथ विशालगढ़ की ओर घने गिरी–कंदरों से गुजरने वाले एक अन्य आड़े मार्ग से दौड़ने लगे। अब शत्रु का पीछे लगना तो तय था। वे पाठलाग करते आयें, तो भी उन घुड़सवारों के लिए दुस्साध्य दुर्गम मार्ग था वह! और वह "नकली महाराज" की युक्ति थोड़ी समयावधि पाने के लिए ही थी! परंतु उस तरह से मिलनेवाली अवधि भी अत्यल्प ही थी। और विशालगढ़ तो दूर, अति दूर था।

..... ५ .....

उधर सिद्दी जौहर के जासूस अपनी छावनी की ओर एकदम दौड़ पड़े। हाँफते–हाँफते उन्होंने खबर सिद्दी को दी, "शिवाजी किले से भाग निकला। वह विशालगढ़ की ओर दौड़ते जा रहा है।"

शिवाजी भाग गया?

मानो जौहर को हजार बिच्छू एक साथ डँस गये। उसकी आँखों पर अंधेरा छा गया। अब आदिलशाह अपने को क्या कुछ नहीं कहेगा, दिमाग में आते ही जौहर–जैसे बहादुर का भी दिल काँप उठा। लेकिन उसने खुद को सँभाल लिया। शिवाजी को पकड़ लाने हेतु उसने अपने दामाद सिद्दी मसूद को दौड़ाया। दो हजार घुड़सवार, एक हजार पदाती उस घने अंधेरे में बिजली की गति से निकल पड़े। जासूसों के दिखाये मार्ग पर वे दौड़ने लगे। उसी काली रात में, उस बरसात में उस कँकरीली, कीचड़ भरी राह पर गिरते–उठते वे सब बढ़ने लगे। सिद्दी मसूद भी अपने ससुर जैसा ही बहादुर, बेगुमान, मर्द सरदार था।

आखिर बिजली की चौंधियाने वाली एक चमक में पेड़–पौधों के बीच उनकी आँखों को एक नजारा दिखाई पड़ा। कुछ मावले महाराज की पालकी उठा कर भागे जा रहे थे। सिद्दी मसूद के पठान एकाएक उस पालकी पर झपट पड़े। "ठहरो!" मसूद ने हुक्म दिया। पालकी रुक गयी। "अंदर कौन है?", मसूद चिल्लाया। घबराकर मावलों ने तुतलाते कहा, "शिवाजी महाराज!" मसूद की आँखें चमक उठीं; खुशी आकाश चूमने

लगी। अब तक किसी को; अफजल खान, फाजल खान, रुस्तम जमां और अब आखिर में अपने ससुर; इनमें से किसी को भी जो नसीब नहीं हो पाया, वह मैंने हासिल किया। वह फूले नहीं समाया। स्वाभाविक भी था! मसूद ने पालकी समेत सब मावलों को गिरफ्तार किया। ससुर को अपनी बेजोड़ बहादुरी का अनमोल तोहफा नजर कर, दौलत-शोहरत के ललक का मारा वह दामाद वहाँ से अपना सीना तान के निकला! जौहर को खबर पहुँची कि अपना दामाद चंद ही घंटों में शिवाजी को कैदकर यहाँ ला रहा है। खुशी के मारे निकल चुकी उसकी जान वापस लौट आयी। अपने दामाद का कार्य सुनकर, वह फूलता ही गया। शाबाश, दामाद हो तो ऐसा! पूरी फौज में खबर फैली। सब ओर खुशी ही खुशी। भोइयों ने पालकी सिद्दी जौहर के सामने उतार दी। तब तक अंदर पूरी शाही संजीदगी से बैठे "महाराज" बाहर आये। उनके बारे में मावलों का कितना आदर, कितना गौरव! जौहर के अनेक सरदार "शिवाजी महाराज" को देखने बेसब्री से दौड़ते नजदीक आ गये। उन्होंने "महाराज" को देखा भी! उनमें कुछ ऐसे भी थे जिन्होंने पहले कभी शिवाजी को भली-भाँति देखा था। उनको अब थोड़ा-सा अंदेशा भी हुआ। क्या वह कोई दूसरा होगा? आखिर, "महाराज" की पूछताछ की ही गयी। तब यकीन हुआ कि वह शिवाजी नहीं था। पन्हालगढ़ का "शिवाजी" नामक एक नापित (हज्जाम) था वह।

या अल्लाह, या खुदा! सिद्दी जौहर, सिद्दी मसूद और दूसरे सरदारों की हालत क्या हुई होगी, आप अंदाजा ही लगाइए! सिद्दी मसूद तो होश खोकर पागल ही हुआ। दांत-होंठ चबाते हुए वह विशालगढ़ की ओर फिर से दौड़ा। उसके साथ फौज भी निकल पड़ी।

उधर, महाराज की पालकी ढोकर अपनी बची-खुची शक्ति पैरों में ही इकट्ठे करते हुए मावले जी जान से दौड़ रहे थे। मध्य रात बीत गयी। स्वराज्य का प्राण, महाराज की जान अब अपने पैरों के बलबूते ही साबुत है, यह उन्हें भी पता था। मानो पैरों को ही पर लगा के वे दौड़ रहे थे। "नकली शिवाजी" की तरकीब से थोड़ी बहुत समयावधि तो उनको मिल

ही गयी थी। परंतु असली बात का पता लग जाने पर दुश्मन फिर से अपना पीछा किये बिना नहीं रहेगा, यह भी उन्हें अच्छी तरह से मालूम था।

१३ जुलाई का सूर्योदय हुआ। विशालगढ़ अभी चार कोस (आठ मील) दूर था। वहाँ पर भी शत्रु का घेरा भेदकर ही अंदर जाना था। तभी कुछ दूरी पर धूल उड़ाती हुई अपने ही ओर आ रही मसूद के घुड़सवारों की फौज दिखाई पड़ी। पीछे-पीछे उसका शोरगुल भी सुनाई दिया। अब तो मानो कहानी ही समाप्त! सारी रात दौड़ते-दौड़ते थके-भागे मावला सैनिक! एक ओर सिद्दी मसूद; तो दूसरी ओर विशालगढ़ के आस-पास जसवंतराव तथा सूर्यराव की बड़ी संख्या में ताजी फौज! मौत की चिमटी में फँसे जैसी अवस्था! भगवान! ये कैसी घोर परीक्षा!

तत्काल बाजीप्रभु को परिस्थिति का एहसास हुआ। दोनों सेनाओं की कैंची में फँसकर महाराज समेत सब लोगों का खात्मा होना तय था। अब एक पल का विलंब भी महाराज के लिए खतरनाक था। इसलिए अब कोई देरी नहीं चलेगी, ऐसा बाजीप्रभु ने निश्चय किया। जहाँ से वे गुजरे थे; वह घाटी तंग, कंटीली, पहाड़ी व पथरीली थी। उसे पार कर ही मसूद को आना था। वह देखकर बाजीप्रभु ने महाराज को बताया, "अब आप यहाँ आधे पल के लिए भी रुकेंगे नहीं। आपको अब त्वरा से विशालगढ़ की ओर दौड़ना चाहिए। आपके वहाँ पर सुरक्षित पहुँचने तक मैं इस खिंड (तंग गलियारे) में दुश्मन को रोके रखुँगा। तोप उड़ाकर, आप गढ़ पर पहुँचने का इशारा दीजिए।" यही वे लोग थे, जिन्होंने स्वयं हलाहल पीकर हिंदु समाज को अमृतपान कराया है! बाजीप्रभु ने बड़ी मिन्नतें कर महाराज को विशालगढ़ की ओर भेज दिया। आधा सैन्य महाराज के साथ गया। शेष आधी सेना अपने साथ रखी और स्वयं उस खिंड के मुख पर खड़ा हुआ, साक्षात् कालभैरव बनकर! मुजरे के साथ सबने महाराज को विदा किया।

बाजी की वानर-सेना रोष-त्वेश से झुलस रही थी। हम में से हर एक पर महाराज की प्राण-रक्षा की जिम्मेदारी है, यह समझदारी उन

सबमें थी। इसलिए उनका आवेश सौ गुना बढ़ गया। मसूद के घुड़सवार और लश्कर आ गये। दर्रा के मार्ग से आगे घुसने लगा। जैसे-जैसे वे बढ़ने लगे, उनके सर नारियल की खोपड़ियों की तरह उड़ने लगे। खिंड के कंदर में पठानों तथा घोड़ों के शवों का ढेर लगना आरंभ हुआ। अब कम से कम दो घंटे तो चाहिए, महाराज को विशालगढ़ के पाँयते तक पहुँचने के लिए; तब तक दुश्मनों को यहीं पर रोके रखना था। दुश्मनों के हमलों पर हमले हो रहे थे। आते ही उन्हें काट कर फेंक रही थी, बाजी के दोनों हाथों में नर्तन करती, भीषण चमकती तलवारें!

पन्हाले के पायँते पर जौहर ने अपनी मोर्चेबंदी जारी ही रखी थी। शायद, असली शिवाजी अभी भी अंदर ही हो और यही वक्त साधकर वह अब हाथों से फिसल गया तो?

वहाँ विशालगढ़ के मोर्चे पर व्यस्त जसवंतराव तथा सूर्यराव इन्हें भी शिवाजी विशालगढ़ की ओर आ रहा है, इसका पता लग चुका था। वे दोनों तो विशुद्ध हिंदु मराठा सरदार थे! लेकिन उनकी करनी क्या थी? शिवाजी का खात्मा करने ही वे आगे बढ़े थे। महाराज ने भवानी को म्यान से निकाला। रात भर दौड़-धूप कर उनकी छोटी-सी टुकड़ी थक चुकी थी। परंतु सवाल था शिवाजी की प्राणरक्षा का! थकने की भी फुरसत नहीं थी! कदम-दर-कदम मोर्चे को बिंधते-भेदते वे आगे बढ़े।

मध्याह्न हुआ! इधर खिंड के मुख पर खड़े बाजी का पूरा देह रक्त से लथपथ हुआ था। उसके सब साथी अतुल पराक्रम दिखाते-दिखाते, एक-एक कर धराशायी हो रहे थे। एक के पीछे दस दुश्मनों का सफाया हुआ था। बाजी के खड्गों से छूट कर एक भी पठान के लिए खिंड पार कर ऊपर जाना संभव नहीं हुआ। धरा पर खड़े बाजी की शौर्य-तेजस्विता एवं आकाश में धधकते सूर्य की तेजस्विता में मानो स्पर्धा ही चली थी! अंत में सूर्य-भगवान ने ही हार मानकर पश्चिम सागर में अपना मुँह छिपाते कलाहीन बन गये! वैसी दिव्य-शक्ति बाजी के बाहुओं में आयी कहाँ से? निष्ठा, ध्येयनिष्ठा! वह स्वराज्य-निष्ठा का ही चमत्कार था!

विशालगढ़ के पायँते पर शिवाजी के भवानी-आवेश के सामने जसवंतराव, सूर्यराव थर्रा उठे। उनकी व्यूह रचना टूटने लगी; अंत में वह पूरी टूट ही गयी। महाराज किले पर दौड़ते गये। उनकी एक ही चिंता! शीघ्रातिशीघ्र तोपें उड़ायें; बाजीप्रभु को अपना क्षेम-संदेश पहुँचाये, उसके अनमोल प्राण बचायें! महाराज किले पर चढ़ गये। कमान से निकले तीर जैसे तोप की ओर पहुँचे। तब शाम के करीब छः बजे थे।

बाजीप्रभु के दोनों बाहुओं द्वारा दुश्मनों का सफाया जारी ही था। इक्कीस घंटों की दौड़धूप एवं निरंतर समर-संघर्ष से उसकी भीम-काया जर्जरित हुई थी; शरीर से लगभग सारा खून बह गया था। परंतु तोप की आवाज नहीं आयी थी! आवाज सुने बगैर खड्ग नीचे नहीं होंगे, ऐसी देह को उसकी आज्ञा! मानो शिवाजी की प्राण-रक्षा करने के लिए ही वह शरीर जन्मा था? तो फिर, वह काम पूरा होने के पहले ही वह धरा पर कैसे गिर पायेगा?

तभी धड़ाड्, धड्ड्ड्, धड्ड्ड्! तोपों की आवाज! बड़े बेचैनी से प्रतीक्षित वह आवाज बिजली-जैसी बाजी के कानों पर टकरायी। एक बार, दूसरी बार और तीसरी बार भी! इसी तरह आगे भी सुनाई दे रही थी। तोपों के द्वारा स्वयं महाराज भी चिल्ला-चिल्ला कर आवाज दे रहे थे, "मेरे प्रिय सखा, मैं सुखरूप पहुँच गया हूँ। बाजी, अब तेरी ही प्रतीक्षा है। आ, शीघ्रातिशीघ्र आ!" बाजी को अपना पूरा जीवन ही सार्थक हुआ, ऐसा लगा। उसी समय दुश्मन ने घात लगाकर, एक क्रूर प्रहार किया; वह उसके गर्दन पर ही पड़ा। अंतिम अंजुलि भर रक्त का फुहारा फूटा और पश्चिम दिशा में झांककर देख रहे सूर्य-देवता को वह रुधिरार्घ्य अर्पित हुआ! उसकी आखिरी साँस भी हवा के झोंको के साथ अपने मूक-भक्ति से महाराज को स्पर्श करने चल पड़ी। बाजी का देह धरा पर गिरा! जहाँ उसका शरीर पड़ा, वह गाजापुर खिंड पावन हुई; "पावन-खिंड" हुई!

ऐसा कहते हैं कि लाल गुलाब की कली को फुलाने कोयल उसे रात भर अपने रक्त से सींचती है और प्रातःकाल में वह गुलाब लाल-लाल, सौंदर्य भरा होकर फूलते समय, वह कोयल मर के उसी पौधे के नीचे

पड़ती है! इसी तरह स्वातंत्र्य-संग्राम का एक-एक विजय पुष्प को भी फुलाना पड़ता है, स्वातंत्र्य का अरुणोदय ऊँचे कंठ से पुकारने निकली एक कोयल के - एक-एक नरपुंगव के ही रुधिर से उसे सींचना पड़ता है!

शिवाजी महाराज के, स्वराज्य के ही प्राण बच गये। उन्हें बचाने का श्रेय सह्याद्रि के घोर अरण्य में स्थित उस "पावन खिंड" को जाता है। उस पावन भूमि का कण-कण भी बाजीप्रभु के उस आदि-अंतिम रणघोष "हर हर महादेव" की गर्जना से गूँज उठता है। स्वराज्य के यज्ञकुंड में पूर्णाहुति देने वाले बाजी के जीवन-चंदन का सौरभ वहाँ की हवाओं की प्रत्येक लहर में भी ओतप्रोत है। बाजी की वीर मृत्यु के बाद, बचेखुचे मावलों ने उसका देह उठाया और वे अरण्य में अदृश्य हुए। उनका काम समाप्त हुआ, महाराज विशालगढ़ पहुँच चुके थे!

इस तरह खिंड के खुलने के बाद मसूद अपनी फौज के साथ विशालगढ़ के पायँते तक दौड़ते आया। वहाँ उसके ऊँचे बुर्ज को निराशाभरी नजरों से देखते खड़ा हुआ। तब तक शिवाजी ऊपर पहुँच चुके थे। आखिर अंगूर खट्टे ही निकले, फिर भी सियार ने हौसला नहीं छोड़ा। जसवंतराव और सूर्यराव के साथ मिलकर विशालगढ़ पर संयुक्त मोर्चा बांधने की तैयारियाँ करने लगा। तथापि, महाराज ने उसके पहले ही दुश्मनों का दमन करने का निश्चय किया। तुरंत किले पर उपस्थित सब मराठा सेना को महाराज ने आदेश दिया। किले का द्वार खोलकर स्वराज्य के सैनिक भूखे चीतों की तरह नीचे टूट पड़े। दुश्मन की फ़ौज भयकंपित होकर बिखर गयी। एक ही आघात से उन तीनों सरदारों की सब शक्ति-युक्ति धूमिल हुई। पीठ दिखाकर भागने में उनकी आपस में ही होड़ लगी! मसूद के चेहरे पर तो हार के ऊपर हार की कालिख पोती गयी। अपना काला मुँह लेकर ही वह पन्हाला पर लौटा। अपना दामाद अब शिवाजी को पकड़कर ही दम लेगा, ऐसा यकीन माननेवाले जौहर के हाथ दामाद का वह लटकता मुँह देखकर घोर निराशा ही आयी। जौहर की पूरी जिंदगी में हार का मुकाबला करने का वह पहला प्रसंग था। उसे एक ही तसल्ली थी, उसका दामाद जिंदा वापस आया था! क्योंकि

शिवाजी को पकड़ने के लिए गये लोग अमूमन जिंदा लौटते ही नहीं थे!

महाराज को एवं विशालगढ़ पर स्थित सभी को ऐसा आभास हो रहा था कि वे आनंद के शिखर पर ही खड़े हैं। उतनी घोर आपत्ति से वे सुखपूर्वक बाहर आये थे, यह क्या साधारण भाग्य था? अब केवल बाजीप्रभु का लौटना बाकी था। तभी सूचना पहुँची, गाजापुर खिंड में बाजीप्रभु की मृत्यु हुई! महाराज पर हुए वज्राघात का वर्णन कौन कर पायेगा?

स्वराज्य के अस्तित्व के लिए कदम-कदम पर शिवाजी के प्राणप्रिय साथी अपने प्राणों की आहुति दे रहे थे! परंतु हर बार मरण से भी दारुण वेदनाओं का अनुभव कर रहे थे, शिवाजी महाराज!

❖❖❖❖❖

शाइस्ता खान का शासन

– सूरत की लूट

शि – वा – जी : तीन अक्षर, तीन उंगलियाँ

विशालगढ़ से महाराज राजगढ़ आए। पुत्र के लिए अपना हृदय निचोड़े प्रतीक्षा में बैठी जीजामाता! एक वर्ष के बाद माँ–बेटे की भेंट; उस बीच मृत्यु के जबड़े से पार होकर आया पुत्र! उस महामाता का वर्णन कैसे करें?

पन्हालगढ़ से शिवाजी खिसक गया, यह खबर सुनकर शाइस्ता खान डर गया। चाकण जैसा छोटा किला भी ढाई महीने की मोर्चाबंदी के बाद ही उसके कब्जे में आ सका था। वहाँ से मराठों के तीखे तलवारों की प्रखरता का पूरा–पूरा परिचय हो गया। अब तो प्रत्यक्ष शिवाजी से ही भिड़ना था।

उधर, शिवाजी के पन्हाला से फरार हो जाने की खबर सुनकर अली आदिलशाह गुस्से से पागल हुआ। लेकिन वह गुस्सा उतारे तो किस पर? ठीक है, सीधा सिद्दी जौहर पर ही उतार दिया। उसी ने घूस खाकर शिवाजी को छोड़ दिया, ऐसी तोहमत उस पर लगायी। बेचारा, सिद्दी जौहर! उसकी ईमानदारी और खिदमत के लिए मिला शाही तोहफा। उसी गुस्से के तेवर में, सुल्तान ने ठान ली कि जौहर और शिवाजी दोनों को सबक सिखाऊंगा। वह खुद ही फौज लेकर निकल पड़ा। महाराज को यह खबर मिल गयी। एक साथ दो–दो अघाड़ियों (मोर्चों) पर संघर्ष करना उनके लिए इस समय तो संभव नहीं था। उनको अपना सारा सामर्थ्य अब शाइस्ता खान को मार भगाने के लिए जुटाना था। पन्हाला सिद्दी जौहर को स्वाधीन कर, अपनी सेना के समवेत अपने मुकाम पर आने की सूचना महाराज ने वहां के किलेदार त्र्यंबक पंत को भिजवा दी। उसके अनुसार, त्र्यंबक पंत वहाँ से चले और राजगढ़ पर हाजिर हुए।

सुल्तान द्वारा हुई बेइज्जती से सिद्दी जौहर बौखला गया। अब बीजापुर की बिसात नहीं चाहिए, ऐसा सोचकर वह कर्नाटक की ओर चल पड़ा। लेकिन आदिलशाह ने वहाँ पर भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। आधी राह में ही उसे जहर देकर मरवा डाला। अब बारी शिवाजी की! उनके पीछे लगना और हवा में मुक्के मारना – एक ही बात! पर, सुल्तान सयाना

बना और जल्दी वापस गया। बरसात के दिनों में शाइस्ता खान को नयी मुहिम निकालने की हिम्मत नहीं हुई। वर्षा काल समाप्त हो ही रहा था कि उसने अपने मशहूर सरदार काजतलब खान के साथ ३०,००० लश्कर देकर शिवाजी पर धावा बोलने के लिए भेज दिया। काजतलब खान के फौज में पंडिता रायबाघन भी एक सरदारनी की हैसियत से निकली थी। लेकिन खान का पहला हमला ही कोंकण के अरण्य मुल्कों पर होना है, यह सुनते ही वह डर गयी। परंतु, बड़े सरदार के सामने बोलना एक बड़ी बला थी। तभी नवरात्रि के उपलक्ष्य में पूजित शिवाजी का 'भवानी–खड्ग' नये शत्रु–संहार और उष्ण रक्तपान के लिए आतुर था।

गुप्तता के साथ घाट उतरकर खान ने तुंगारण्य में प्रवेश किया। उसी समय जंगलों में छिपकर बैठी नेताजी की सेना भूखे शेरों की तरह खान की फौज पर टूट पड़ी। उस अनपेक्षित हमले में फँस कर खान की फौज पूरी तथा बुरी तरह से जमींदोस्त हो गयी, बिल्कुल जावली के जंगल में पीछे अफजल खान की फौज जिस प्रकार परास्त हुई थी, वैसे ही! तब रायबाघन ने कहा, "जान–बूझ कर यदि शेर की गुफा में पैर रखा, तो नतीजा और क्या हो सकता है? शिवाजी की शरण में जाओ। जान बचाओ। दूसरा मार्ग नहीं है।" अपने श्वेत अश्व पर आरूढ होकर महाराज उंबरखिंड के शिखर पर दिखाई पड़े। अपने उम्दे राजपोशाक में उनका अश्वारूढ गंभीर रूप, उस उत्तुंग शिखर पर अति भव्यता से झलक रहा था। खान का वकील वहाँ पर आया और गिड़गिड़ा कर दया की भीख माँगने लगा। महाराज का उद्देश्य सफल हुआ था। उन्होंने अपनी सेना को युद्ध रोकने का आदेश दिया। खान से भरपूर धन–दौलत वसूल कर उसे जीवनदान दिया।

उस अथाह सेना की विपुल युद्ध–सामग्री, अपार संपत्ति शिवाजी महाराज को मिल गयी। शाइस्ता खान की फौज पर यह उनकी पहली भारी जीत हुई।

बाद में शिवाजी की क्रुद्ध दृष्टि राजापुर की ओर गयी। वहाँ का एक पुराना हिसाब चुकाना था। पन्हालगढ़ पर दागी गयी तोपों की गड़गड़ाहट

महाराज के कानों में अभी तक गूँज रही थी। बीजापुर के आश्रय में व्यापार चलाने वाले अंग्रेजों का केंद्र था राजापुर। महाराज का विजयाश्व पूरे कोंकण की किनार पट्टी पर कूदते–फांदते आगे बढ़ रहा था। मुख्य लक्ष्य था राजापुर! महाराज एकाएक अपनी ४,००० सेना के साथ उस शहर पर नंगी बिजली जैसे टूट पड़े। वहाँ के देशी–विदेशी, बड़े–बड़े धनिकों को अपने पास बुलाकर उनसे नजराना वसूल किया। लेकिन अंग्रेजों को वहाँ नहीं बुलाया। उनके ठिकाने पर खुद जाकर ही उनसे 'भेंट' लेने का तय किया था। तभी हेनरी रिविंग्टन, फिर्ड आदि कुछ 'सज्जन' बिल्कुल भोले बनकर खुद ही महाराज से मिलने आये। उन्हें देखा ही था कि महाराज क्रोध–तप्त होकर गरज उठे, "गिरफ्तार करो इन दगाबाजों को!" आदेशानुसार उनको और राजापुर में जितने भी अन्य अंग्रेज थे उन सबको पकड़ लिया। अंग्रेजों की धन–दौलत, मालमत्ता सब साफ कर दिया। अंग्रेजों की चरबी पूरी पिघल गयी। पन्हाला में किये पापों का सुयोग्य प्रायश्चित करने दिया। महाराज ने अंग्रेज कैदियों को दो साल के लिए बंदीखाने में सड़ने दिया; बाद में उनको मुक्त किया। इतने सब शोरगुल में, एक भी गरीब बेचारों पर मराठों ने हाथ नहीं डाला। यह एक सोचने लायक बात थी। राजापुर में इतनी सारी धन–दौलत के साथ एक अनमोल नर–रत्न भी महाराज को मिल गया। बालाजी आवजी! महाप्रतिभाशाली ऐसा यह बालाजी ही आगे चलकर महाराज का आप्त सचिव बन गया।

अपने मुल्कों में ही चली शिवाजी की धींगामुश्ती देखते हुए बैठने के अलावा अली आदिलशाह कुछ कर भी नहीं सकता था। वह अपनी सारी चालें चला–चला कर विफल हो चुका था। उसके सब सरदार धूल चाटकर, भ्रमित हो बैठे थे। बड़ी बेगम तो बेबस–बेचैन होकर, हज यात्रा जाने की तैयारियाँ करने लगी। चूहा तो मिला नहीं बिल्ली बन गयी फकीर!

अब विशालगढ़ के पास 'भेंट' देनेवालों में दो और रह गये थे। संगमेश्वर के जसवंत राव तथा शृंगारपुर के सूर्यराव। उन दोनों का हिसाब भी चुकता करना था। महाराज ने उनके सूबों को स्वराज्य में

शामिल किया। उसके बाद शिवाजी के अधीन रहकर ही सब कुछ करने का निर्णय सूर्यराव ने किया। यहाँ पर पन्हाला का सब हिसाब–किताब पूरा हो चुका। उन सब नये भू–प्रदेशों में स्वराज्य की स्थापना हुई। उसका "शिव–सुगंध" सब ओर दूर–दूर तक फैल गया। उसी समय महाराज ने प्रतापगढ़ पर माँ भवानी की प्राण प्रतिष्ठापना की।

अब चलें, शाइस्ता खान की ओर।

गनिमी–कावा (वृक–युद्ध) के तंत्र से नेताजी पालकर शाइस्ता खान को संत्रस्त कर ही रहा था। एक बार तो वह अपनी आठ हजार सेना के साथ मुगल छावनी पर बिजली–जैसा टूट पड़ा। उस आघात से संभल के मुगली फौज बेहोश होकर उसका पीछा करने लगी। अपने पीछे दौड़ती आ रही दुश्मनी फौज को थोड़ी दूरी तक खींच ले जाकर, नेताजी एकाएक अपनी सेना के साथ जंगल में अदृश्य हुआ। उसी समय मुगली शिविर के नजदीक ही छिपी खड़ी दो हजार की दूसरी सेना–टुकड़ी ने उस लावारिस बने छावनी को बेखौफ–बेइंतहा लूट लिया। तंबू–डेरे, घोड़े–ऊँट, हथियार आदि बड़ी भारी मात्रा में मराठों के हाथ लगे। उसी समय महाराज ने शाइस्ता खान के नामदारखान नामक एक और सरदार को परास्त कर भगा दिया।

..... २ .....

अब खुद शाइस्ता खान को पुणे से किस प्रकार निकाल देना है, इसके बारे में महाराज सोचने लगे। स्वराज्य में डेरा डाले उसे अब तीन साल बीते थे। उस प्रचंड फौज के साथ खुले मैदान में मुकाबला करना अशक्यप्राय बात थी। 'गनिमी–कावा' तंत्र से थोड़ा–थोड़ा कुतरते–काटते गये तो भी वह कभी खत्म न होने वाली, हाथी के देहवाली, अपरंपार फौज थी! आखिर, उस मदमस्त हाथी के गंडस्थल पर ही छलांग लगाकर, उसे चीरना पड़ेगा – ऐसा सह्याद्रि के सिंह ने निश्चय किया।

वह शिवाजी के मन को भाने वाली ही योजना थी। अत्यंत साहसी, प्राण–संकटों से भरी! उसका स्वरूप क्या था – एक रात स्वयं महाराज

ही पुणे के लालमहल में जायेंगे, शाइस्ता खान का सफाया करेंगे और वापस आयेंगे। यह कैसा पागलपन? कितना खतरनाक साहस! लाल महल के आस–पास एक लाख लश्कर का सैलाब ही फैला था! राजा जसवंतसिंह जैसा नामी राजपूत सरदार बगल में ही अपनी फौज के साथ सिंहगढ़ की मोर्चेबंदी कर खड़ा था। ऐसे भयावह सर्पीले पहरे में घुस जाना तो दूर सपने में भी प्रवेश करना असंभव था! लाल महल भी अभेद्य था। स्वतः दादाजी कोंडदेव और शिवाजी ने ही अपनी निजी निगरानी में उसका निर्माण किया था।

महाराज निर्धार के बड़े पक्के! वैसा निर्धार, वैसा साहस महाराज को ही संभवनीय एवं अतिप्रिय! उनके साथ जाने के लिए उनके साथियों में अहमहमिका। सब निकलें; शस्त्र–सज्जित हो गए।

मुहूर्त भी तय हुआ – चैत्र शुद्ध अष्टमी ६ अप्रैल, १६६३ ई. की मध्य रात्रि! दूसरे दिन सुबह ही राम नवमी! नेताजी पालकर, मोरोपंत पिंगले आदि सब को उनकी जिम्मेदारी सौंपी गयी। देवी भवानी और माता का आशीर्वाद प्राप्त किया और दो हजार सेना के साथ महाराज राजगढ़ के नीचे उतर आये। गुप्तचरों द्वारा उन्होंने पहले ही शाइस्ता खान के खेमे की सूक्ष्म जानकारी हासिल कर ली थी।

पुणे से एक मील दूर पर आकर शिवाजी खड़े हुए। समय मध्यरात्रि का। ऊपर अष्टमी का चंद्रमा स्मितहास्य कर रहा था। महाराज के इस समय चयन का भी एक अर्थ था; महत्त्व था! मुसलमानों के लिए वे बड़े पाक दिन थे, रोजा–ए–शरीफ का महीना था! दिनभर की फाकेमस्ती, रात में आकंठ खान–पान! परिणाम – प्रगाढ़ एवं सुखभरी नींद! इसके अलावा, रमजान का छठवां दिन ही चुनने के पीछे और भी एक अहम कारण था। औरंगजेब के तख्तोनशीन होने की वह सालगिरह भी थी। बड़ी ईद का ही माहौल था! पुणे की छावनी में दिन और रात में दस–बीस मरतबा तो नगाड़े, तुरही आदि का वाद्य–घोष! अव्वल तो शब्बा–खैर; इतना ही नहीं तो सालगिरह भी! तो पूछे क्या? औरंगजेब को उसके ससुर शाइस्ता खान से कितने नजराने, खिलअतें रवाना हुई, न जाने और क्या–क्या?

अपनी–अपनी टुकड़ियों के साथ नेताजी पालकर, मोरोपंत पिंगले सिंहगढ़ की राह में प्रतीक्षा में खड़े थे। रास्तों में भी जहाँ–तहाँ नगाड़े, ढोल, तुरही आदि हाथ में धरे मावले भी खड़े हुए। सर्जेराव जेधे ने महाराज का अश्व सज्जित किया। लाल महल का काम पूरा होते ही महाराज और बाकी सब के सिंहगढ़ की ओर फरार होने की सारी सिद्धताएँ पूरी हो गयीं। हरेक को निश्चित, स्पष्ट, तयशुदा काम! एक ने यदि थोड़ी–सी भी गलती की, तो सर्वनाश! उसमें भी बाबाजी, चिमणाजी इन दो भाइयों पर कठिनतम दायित्व! दोनों ही शिवाजी के बाल–मित्र! "लंगोटिए"! पुणे में खेलते–कूदते बड़े हुए। पुणे, उसमें भी, लाल महल का चप्पा–चप्पा उन्हें भली भाँति पता था।

बाबाजी की टोली आगे गयी। पीछे–पीछे चिमणाजी की। उसमें ही शिवाजी एक! तब मध्य–रात्रि बीत चुकी थी। सब सोये थे। पहरेदार तो हमेशा की तरह गश्त दे रहे थे। लाल महल के सब लोग भी सुख–चैन की नींद सो रहे थे। पुणे तब तीन हजार का छोटा कस्बा! लेकिन उस छोटे गाँव के आस–पास ही एक लाख फौजियों की प्रचंड छावनी, तंबू–डेरे गाड़ दिये गये थे। बाबाजी की टोली पुणे की सीमा पर पहुँची। पहरेदार दिखाई देने लगे। अब "अपाय वलय" में कदम रखना था। उसके बाद पग–पग पर अपाय ही अपाय! किस पल में क्या होगा? लेकिन ये सब एक–से–एक लफंगे! एक ही अखाड़े के चेले! वहाँ की गश्त को नजरअंदाज कर, उनके बीचों–बीच से ही सीधे गाँव में पहुँच गये।

आराम से टहलती जा रही उस टोली को रोककर गश्तीदारों ने पूछा, "ठहरो, कौन है?"

"हम? सेना की टुकड़ी! पहरा देने गाँव के बाहर गये थे। अब अपने डेरे पर लौट रहे हैं।" उनकी बातें, हाव–भाव आदि बड़ी स्वाभाविक थी। किसी पर भी अंदेशा हो ही नहीं सकता था। शाइस्ता खान की फौज में काफी संख्या में मराठा सैनिक तो थे ही। उन सबका गश्त लगाने जाना–आना तो मामूली–सी बात थी। और आखिर वह तो मुगली दरबार ही था! कौन किसे पहचानता? कौन किस की चिंता करता?

बाबाजी की टोली तो आगे सलामती से पुणे की सीमा पारकर अंदर गयी। उसके बाद चिमणाजी भी उसी प्रकार अंदर गए। इस टोली में तो स्वयं शिवाजी महाराज भी थे। वे अब ऐसे ही सीधे लाल महल जायेंगे, शाइस्ता खान की गर्दन उड़ाएंगे और इत्मीनान से वापस भी आयेंगे ऐसा यदि बताया जाता, तो वे पहरेदार मानते थोड़े ही! बेचारे, इतने भोले थे मावले; शिवाजी और उनके साथी भी! पूरे रास्तों में ऐसा ही जवाब देते हुए, अपने शरीर की ही आँखें बनाकर, कदम–दर–कदम रखते आखिर में वे सब लाल महल के नजदीक पहुँच ही गए। जैसे–तैसे उतने लोगों की आँखों के सामने ही चकमा देते–देते, छोटी–छोटी टोलियों में ही आगे जाने की सतर्कता उन्होंने बरती थी।

अब, लाल महल के आँगन में प्रवेश कैसे करें? बगीचे के माली को पहले से ही हाथ गरम करते हुए अपनी ओर कर लिया था।

लाल महल के पिछवाड़े में ही रसोईघर! रसोईघर और खान के जनाने के बीच एक साधारण ईटों की दीवार! रसोईघर में प्रवेश के लिए एक सादा दरवाजा! कहाँ जाना? कैसे जाना? इसका निर्णय पहले ही किया जा चुका था। पूर्व योजना, पूर्ण योजना, इतना ही नहीं, परिपूर्ण योजना ही शिवाजी के सफलता की कुंजी थी। शिवाजी और उनके चार सौ साथी बिना कोई आवाज किये भूतों जैसे रसोईघर में घुस पड़ें। रमजान के कारण सुबह की रसोई की तैयारियाँ चली थी। चूंकि, सूर्योदय के बाद खाना मना था! रसोई के काम में सब रसोइए मगन थे। अब जनाने में जाने के लिए उस आड़ी दीवार को गिराना था। लेकिन रसोईयों का क्या? और क्षणार्ध में बगैर किसी चीख या आवाज के सब पठान रसोईये मराठों के तलवारों से ढेर हो गये। फौरन उस ईटों की दीवार को गिराने का काम शुरू हुआ।

वह आवाज सुनकर अंदर का एक नौकर जग गया। उसका तो कलेजा ही फट गया। वह सीधा शाइस्ता खान के पास दौड़ते जाकर रसोईघर में कुछ गड़बड़ चली है, ऐसी खबर उसने घबराते–घबराते ही बता दी। परंतु भोग–विलास की उन्माद में धुत खान ने उस बेचारे नौकर

पर ही गुस्सा किया, "कहीं, सुबह की रसोई के लिए रसोइये उठ गये होंगे।" फिर से नींद खराब की तो खैरियत नहीं रहेगी, ऐसी दमबाजी कर उसे खदेड़ दिया। रसोईघर याने कहीं चूहों की बड़बड़ भी हो सकती है, ऐसा खान ने खुद को समझाया होगा। और सही मायने में वह 'चूहे' की आवाज ही थी! परंतु वह रसोईघर का नहीं, पहाड़ का चूहा था! कुछ पल बीते। दीवार तोड़कर एक के पीछे एक नंगी तलवार लेकर लोग अंदर घुस रहे हैं, यह कुछ लौंडियों ने देखा। वे चिल्लाती हुई खान की आरामगाह की ओर दौड़ीं। अब जाकर कहीं खान की नींद पूरी खुल गयी। मानो अंगारों पर ही उसका पैर पड़ा हो, वह बिछौने से छलाँग मारकर कूद पड़ा। भाला, तीर–कमान जो कुछ हाथ लगा लेकर जनाने से बाहर दौड़ा। देखते ही मराठा उस पर टूट पड़े। तभी उसके जनाने की एक औरत ने बड़ी चालाकी से वहाँ का दिया बुझा दिया। बची औरतों ने उसे हाथ पकड़ के उठाकर जनानखाने में परदे के पीछे छिपा दिया। अंधेरे में खान को ढूँढते–ढूँढते, तलवारें घुमाते, मराठा वीर इधर–उधर दौड़ने लगे। लालमहल के ऊँघते पहरेदारों को, "कैसा पहरा देते हो?" ऐसा पूछते–पूछते, उन्होंने अपने शमशीरों से सुला ही दिया। समूचा लालमहल हाहाकारों से, चीत्कारों से भर गया। "शैतान मराठे आये हैं।" "दुश्मन आया है।" लेकिन कैसे आये? कितने आये? किसे पता!

कुछ मराठा सैनिक नगाड़खाने गए और कहा, "खान साहब का हुक्म है, नगाड़े बजाओ!" अब उसका धमाका भी शामिल हुआ। वहाँ के शोरगुल का अब क्या पूछे? लश्करी छावनी के हजारों सैनिक लालमहल की ओर दौड़े। तथापि शिवाजी के आदमियों ने सब दरवाजे अंदर से बड़ी मजबूती से बंद किये थे।

हल्लागुल्ला प्रारंभ होते ही खान का बहादुर बेटा अबल फतेह खान बाप की मदद के लिए दौड़ते आया। छिपे बैठे अपने बाप को उसने बड़ी चतुराई से कहा, "अरे, सिपाही, ये लोग तो शाइस्ता खान को ढूँढ रहे हैं, तुझे नहीं!" आवाज सुनते ही वही खान होगा, ऐसा समझकर मराठों ने फतेह खान को ही खत्म किया। उस अंधेरे में और चिल्लाहट में बिना कोई

पता चले, खान की कई पत्नियाँ मराठों की तलवारों की शिकार हुईं। खान तब तक परदे के अंदर ही अपनी औरतों के साथ अपनी जान मुट्ठी में पकड़े बैठा था। खुद खान को ही खोजने आये महाराज सीधे जनाने में घुस पड़े। उनके तलवार की वार से फर्र होकर वहाँ का परदा फट गया। खान ऊपर उठा। उसकी धुंधली आकृति देखकर महाराज ने अंदाजन तलवार चलायी। "कचक्" आवाज के साथ एक भीषण चीत्कार गूँज उठा। खान मारा गया, ऐसा समझकर महाराज वहाँ से भाग निकले। लेकिन खान के दाहिने हाथ की तीन उंगलियाँ मात्र कट गयी थीं। वह खिड़की से नीचे कूद पड़ा।

काम हो गया है, अब यहाँ से पलायन करना है; ऐसा महाराज ने तय किया। तब तक महल के आसपास फौजियों का हुजूम जमा हो गया था। सब ओर "गनीम, गनीम" की चिल्लाहट ही चिल्लाहट; शोरगुल ही शोरगुल! महल के अंदर के मराठा भी उसी हल्लेगुल्ले में शामिल होकर, चिल्लाने लगे। तभी किसी ने महल का दरवाजा खोला। अंदर–बाहर वही अंधेरा, कोलाहल, और खलबली–ही–खलबली! उस गड़बड़ में ही महाराज और उनके साथी बाहर निकल पड़े! वे भी "गनीम, गनीम" चिल्लाते ही बाहर गये। किसी को पता ही नहीं चला कि खान के खेमे से पार होकर, महाराज की टोली कैसे फरार हो गयी। जसवंतसिंह के सामने ही वे सब फरार हुए। पिछली रात ही, अपार हीरे जवाहरात का नजराना भेजकर शिवाजी ने उसे अपनी ओर कर लिया था, ऐसा कुछ इतिहासकारों ने लिखा है।

खान की छावनी के बाहर मोरोपंत पिंगले आदि हाथों में घोड़ों की लगामों को थामे प्रतीक्षा में खड़े थे। शिवाजी के आते ही सब लोग घोड़ों पर छलांग मारते हुए विद्युद्वेग से सिंहगढ़ की ओर दौड़ पड़े।

वहाँ लालमहल के अंदर–बाहर शोरगुल चल रहा था! शिवाजी की खोज भी चल ही रही थी! शाइस्ता खान की उंगलियों से खून टपक रहा था! शिवाजी के सात सैनिक मारे गये। शाइस्ता खान का नुकसान – उसका बड़ा बेटा फतेह खान, सात पत्नियां, एक सेनापति और चालीस

फौजी! और हाँ, साथ में वे तीन उंगलियाँ!

खान के अगल–बगल में, एक लाख की फौज का पहरा होते हुए भी एकाएक लाल महल के अंदर शिवाजी आया भी तो कैसे? और मारकाट कर फरार हुआ तो भी कैसे? किसी को भी दिखा तक नहीं! इसका सीधा मतलब था कि शिवाजी आदमी ही नहीं, शैतान होगा! हैवान ही होगा! सब तरफ यही धारणा फैली।

दूसरे दिन महाराज सुचारु रूप से राजगढ़ पर आ गये। उन्होंने जीजामाता को वंदन करते हुए बताया, "माँ, तेरे आशीष से जीत आया!" दिन था रामनवमी का! महापराक्रमी प्रभु श्री रामचंद्र के उस जन्मदिन पर एक विशेष गरिमा प्राप्त हुई। उन प्राचीन पराक्रमी पूर्वजों के जन्मदिन किस प्रकार मनायें, इसका एक नया वास्तुपाठ ही महाराज ने समस्त हिंदु समाज को पढ़ाया!

शिवाजी के इस अकल्पित मर्माघात से शाइस्ता खान तो पूरा टूट गया। मानो वह पिशाच–पीड़ा से संत्रस्त–सा हुआ। तीन सालों से स्वराज्य में लगातार जुल्मो–सितम का कहर ढाता बैठा शाइस्ता खान, अब पुणे में उस खौफनाक लालमहल में तीन दिनों तक भी ठहरने के लिए तैयार नहीं था। आँखें मूँदे या खोले, उसके सामने तलवार उठा के उस पर टूट पड़ने वाले शिवाजी का ही चित्र था! एक–एक निवाला मुँह तक लाते समय खान को उनकी ही याद! कटी हुई उन तीन उंगलियों के जरिए, उन तीन अक्षरों का ही सदैव स्मरण, "शि–वा–जी!" अपने अधीनस्थ सरदारों को अपनी फौज का जिम्मा सौंप कर, तीसरी ही रात में वह औरंगाबाद के लिए निकल पड़ा। औरंगजेब को अपने शूर ससुर की बहादुरी की खबर मिली! वह गुस्से से अंगारे उगलने लगा। फौरन बंगाल के सूबेदार की हैसियत से उसका तबादला कर दिया। उन दिनों बंगाल जाना याने जहन्नुम जाने के बराबर माना जाता था। शाइस्ता खान की तो बदनामी–बेइज्जती से जान ही चली गयी। लेकिन बेचारा, क्या करता? दूसरा चारा भी नहीं था। शाइस्ता खान के बदले, औरंगजेब ने अपने बेटे शहजादा मुअज्जम को दक्खन का सूबेदार तामील किया। वह तो महा

ठू, आलसी, मौजी–विलासी था। इसलिए उसका एतबार हो या डर रहा ही नहीं। शिवाजी का मार्ग पूर्णरूपेण निष्कंटक हुआ।

..... ३ .....

शिवाजी महाराज के उस प्रहार से औरंगजेब को पहुँचा आघात, अपमान कोई मामूली नहीं था। उस बेकरारी से, हुमस–हुलास पाने के पूर्व ही महाराज ने और एक अदभुत साहसी हिलोर लेने की योजना बनायी। शाइस्ता खान ने लगातार तीन साल स्वराज्य को अपने पैरों तले रौंदा था; जला के खाक किया था। महाराज उसका हर्जाना वसूलना चाहते थे। शिवाजी को बेवजह उकसाया तो उसका क्या हश्र होता है, यह औरंगजेब को दिखाना था। साथ में ही थी – आगामी स्वराज्य–विस्तार की, सागर–सेना, भू–सेना को और भी प्रबल एवं विशाल बनाने की योजना! इन सबके जवाब में महाराज का एक ही सिद्ध उत्तर था, "सूरत!" मुगल साम्राज्य की अत्यंत महत्त्वपूर्ण समृद्ध, ऐसा बंदरगाह सूरत! समूचे भारत में ही प्रमुख व्यापारी केंद्र – सूरत! पर्शिया, अरब देश, मिस्र, अफ्रीका, चीन यूरोपीय देशों के भारी–भारी व्यापारी वहाँ बसे थे। भारत के साथ उनका सारा व्यापार सूरत से ही होता था! मालाबार से गुजरात तक के प्रमुख बाजार–केंद्रों का माल तथा लाहौर से कर्नाटक की सामान–सामग्री भी सूरत से ही निर्यात होती थी। ऐश्वर्य, वैभव, समृद्धि में सूरत की बराबरी करनेवाला एक भी बंदरगाह तब पूरे भारतवर्ष में नहीं था। तब सूरत की जनसंख्या दो लाख थी। अनेक धनपति, कुबेर–पुत्र, सब धनदौलत से परिपूर्ण थे। साक्षात् रावण की स्वर्णनगरी लंका के समान ही सूरत का धन–संपत्ति–ऐश्वर्य था। वहाँ से औरंगजेब को चुंगी–जकात के रूप में हर साल करोड़ो रुपयों का भुगतान होता था। उस रेवापाटण की सुरक्षा के लिए उसी के बगल में ही एक अजेय किला भी था।

शिवाजी के जासूस बड़े बेजोड़ थे। उनमें बहिर्जी नायक तो हीरा था! बहुरूपियों में बहुरूपिया और रहस्य–भेदन में अति चतुर! महाराज के आदेशानुसार वेश बदलकर गुप्त रीति से वह सूरत गया था। एक–एक मंडी की, एक–एक धनपति की दौलत कितनी थी? किले की हालचाल

क्या थी? सुरक्षा व्यवस्था कैसी थी? फौज कितनी? इन सब बातों की सूक्ष्म जानकारी हासिल की। उस समय पूरे शहर की रक्षा करने केवल दो हजार राऊत थे। वहाँ का सूबेदार बड़ा निकम्मा और घूसखोरी में अव्वल! असल में वहाँ पर पाँच हजार की फौज तो होनी ही चाहिए थी। पर, पाँच हजार का ही हिसाब–किताब भेजकर दिल्ली से उतनी रकम पाता था। उसमें से अधिक हिस्सा खुद निगलता था! शिवाजी के लिए आवश्यक सब जानकारी इकट्ठा कर, बहिर्जी राजगढ़ को लौट आया। उसकी खबर सुनते ही शिवाजी की सूरत–यात्रा की आतुरता और भी बढ़ गयी।

राजगढ़ पर चुनिंदा आठ हजार की सेना निर्धारित हुई। साथ में सैंकड़ो खाली घोड़े भी निकल पड़े, स्वराज्य में आगमन करने आ रही "सूरत की लक्ष्मी" के रथारूढ़ होने! इतनी सारी सिद्धताएं देखकर, किसी को भी लगा होगा, इतनी भारी सवारी कहाँ जा रही होगी! लेकिन कहाँ पर? वह किसी को भी पता नहीं था! राजगढ़ से सूरत का अंतर भी कम नहीं था! अंदाजन तीन सौ मील! वहाँ तक सब ओर मुगली मुल्क ही! इतनी बड़ी सेना, पूरा दुश्मनी मुल्क, उतनी दूर तक जाकर सूरत की धन लक्ष्मी को उठाकर, फिर तीन सौ मील उन्हीं शत्रु–प्रदेशों से गुजर कर, स्वराज्य में लौट आना, कितनी दुस्साहसिक कल्पना! परंतु, उसका कार्यान्वयन करने वाले भी उतने ही दुर्दम्य साहसी पुरुष, स्वयं शिवाजी महाराज ही! साथ में था नेताजी पालकर! उसी समय जसवंतसिंह कोंडाणा किले की घेराबंदी कर बैठा ही था। उसकी सेना के सामने पंक्तियों से गुजरकर शिवाजी की सेना सूरत की ओर छः मील का फासला तय कर कब आगे बढ़ी, इसका पता तक उस 'सिंह' को नहीं लगा! दिन भर जंगलों की आड़ में विश्राम और रात के अंधेरों में आड़े मार्गों से आगे बढ़ना; यही शिवाजी के सैन्य–संचालन का तंत्र था।

राजगढ़ छोड़ने के बाद महाराज ने पहला पड़ाव त्र्यंबकेश्वर में डाला। राजगढ़ से पूरे दो सौ मील पर! महाराज तीर्थयात्रा करने आये होंगे, ऐसा वहाँ के लोगों को लगा। और भी एक छुपी खबर फैली। शिवाजी 'महाराज औरंगाबाद पर हमला करने जा रहे हैं। वह खबर

औरंगाबाद भी पहुँची। ठीक है, शिवाजी के हमले का सामना करने औरंगाबाद की फौज वहीं पर तैयार होकर खड़ी हुई; न इधर हिली, न उधर डुली! शिवाजी सूरत को जायेगा, यह कल्पना भी किसी के सपनों में भी नहीं आयी। शिवाजी त्र्यंबकेश्वर से आगे बढ़ने के बाद औरंगाबाद ही गये, ऐसी ही धारणा वहाँ प्रसारित हुई!

सूरत के बगल में ही घणदेवी नामक एक गाँव। एकाएक वहाँ पर शिवाजी की सेना आ धमकी। डर के मारे समस्त गाँव में कोलाहल मच गया। परंतु महाराज ने लोगों के डर का समाधान किया। "हम तो बादशाह औरंगजेब के सरदार है। औरंगाबाद के सेनापति महाबत खान की सूचनानुसार उनके पास जा रहे हैं।" तब कहीं गाँव वालों का डर दूर हुआ। उन्होंने राहत की सांस ली!

दूसरे दिन सुबह (५-१-१६६४) सूरत को खबर गयी, शिवाजी आया! शिवाजी आया! सेना के साथ आया है! वह समाचार सुनते ही व्यापार–व्यवहार में व्यस्त सबको एकाएक ऊपर से हजारों बिजलियाँ गिरने का एहसास हुआ! लेकिन वह खबर सुनकर सूबेदार इनायत खान ठहाके लगा के हँस पड़ा। कैसी पागलों जैसी बात? शिवाजी इतनी दूर हमारे मुल्क में आता है याने क्या? इसका भरोसा करने वाले लोग कितने पागल होंगे!

लेकिन आते–आते खबर पक्की साबित हुई। सूरत से दो मील दूरी पर महाराज ने डेरा डाल दिया। समूचे शहर में, उसमें भी मंडी बाजारों में मचे हाहाकार, चीत्कारों की तो क्या कहें? धनवान लोग लगे पाँव दौड़ने लगे। हाजी सैय्यद बेग, बहर्जी बोहरा आदि करोड़पतियों की परेशानी की तो पूछो ही मत! तभी खान को खबर आयी, महाबत खान के फरमान के मुताबिक एक मुगल सरदार अहमदाबाद की ओर जा रहा है! खान का छद्म हास्य, लोगों के अकारण भय के बारे में उसकी उदासीनता और भी बढ़ गयी। खान ने उस "मुगल सरदार" को अब कहलवा भेजा, "सूरत के नजदीक भी मत जाना। लोग बिना वजह घबरा जाते हैं। और इसकी खबर यदि बादशाह को मिली तो तुम्हारी खैरियत नहीं।" वह संदेशा लेकर

आये असामी को ही कैदकर महाराज ने बंदी बना दिया। शिवाजी आया है यह सच है या गलत, इसका फैसला करने डचों की ओर से दो जासूस भी आये। शिवाजी ने उनको भी गिरफ्तार करवाया। परंतु पलभर के बाद, उन दोनों को छोड़ देने की आज्ञा भी महाराज ने दी। उनमें से एक ने कभी शिवाजी महाराज को राजापुर में देखा भी था। उन्हें छोड़ने की ही फुरसत, दौड़ते–हाँफते "शिवाजी, शिवाजी! वही है शिवाजी!" ऐसा चिल्लाते हुए उन्होंने पूरे शहर में उस खबर को आग–सी फैला दी।

अब तो वहाँ के व्यापारियों का कलेजा ही फट गया। अंग्रेज तथा डच घबराये नहीं; उन्होंने अपना सारा सामान अंदर रखवाकर, उसकी हिफाजत का बंदोबस्त किया। तोपों को सज्जित किया। जैसे थे, उसी अवस्था में अपनी–अपनी मंडियों की सुरक्षा का प्रबंध किया। अंग्रेजों के पास तब दो सौ अंग्रेजी तथा पचास देसी सैनिक थे।

महाराज का संदेश लेकर, एक राजदूत इनायत खान की ओर निकला। "कल शिवाजी महाराज सूरत आ रहे हैं। तुम्हें और सब प्रमुख व्यापारियों को चाहिए कि आप सब उनसे मिलने आये। उनको देने का नजराना तय करना होगा। यदि चूके, तो समूचे शहर को लूटकर अग्नि को आहुति करनी पड़ेगी। वैसा कुछ हुआ तो उसकी पूरी जिम्मेदारी तुम्हारी होगी।" लेकिन खान ने कोई जवाब नहीं दिया; राजदूत चुपचाप वापस आया।

"शिवाजी को भेंट", यह सुनते ही, शहर के व्यापारियों ने हौलदिली से सीने पर हाथ रख के 'आह' भरीं। लेकिन खान अभी तक अपनी मगरूरी से बाज नहीं आया था। दूसरे दिन उसने अपने सवार के साथ उद्धता भरा उत्तर भेजा, "हम से दंड चाहिए? बताओ क्या दंड दूँ?" यह सुनकर महाराज क्रुद्ध हुए। उस संदेशवाहक को ही गिरफ्तार करवाया। अब क्या पूछे? महाराज की सेना सूरत पर झंझावात की तरह टूट पड़ी। शिवाजी अब आ ही रहा है, यह सुनकर शहर में अभूतपूर्व कोलाहल मच गया। अनेक लोग सुरक्षा के लिए किले की ओर दौड़े। खान ने उनसे बहुत अधिक घूस ली और सिर्फ उनके औरतों–बच्चों को ही अंदर लिया!

बाद में खुद तो अपने फौजियों के साथ किले में छिप गया और किले का महाद्वार बंद कर लिया। लेकिन अंग्रेज तो डरे नहीं। वैसी भीषण स्थिति में भी अपने दो सौ सैनिकों का एक संचलन निकाला और कवायद की। उनके व्यापारी भी अपने शस्त्र निकालकर आत्म–रक्षणार्थ सजकर खड़े हुए।

उधर, मराठा सैनिक एक हाथ में तलवार और दूसरे में जलती मशालें पकड़ कर साक्षात् यमदूत बनकर निकल पड़े। शहर का महाद्वार तोड़कर, टोलियों में मंडी–बाजारों में घुस गये। एक–एक मंडी, एक–एक मोहल्ले की लूट प्रारंभ हुई, लूट में भी बड़ी दक्षता–चतुरता! नजर में आने वाली छोटी वस्तुओं को हाथ ही नहीं लगाते थे। लेते थे केवल हीरे, मोती, माणिक, रत्न, सोना आदि जवाहरात ही! दौलत की राशियाँ ही राशियाँ गिरनी आरंभ हुईं।

अब इनायत खान किले के ऊपर से तोपें उड़ाने लगा। परंतु उससे एक भी मराठा सैनिक आहत नहीं हुआ! इसके विपरीत शहर की अनेक घर–दुकानें ध्वस्त हुईं।

शहर भर में भयावह लूट, कोलाहल, आगजनी चल रही थी। परंतु स्वराज्य के सैनिकों का संयम कहीं पर भी चूका नहीं। महिलाएँ हों या बच्चे, मौलवी हो या पादरी, मस्जिद हो या चर्च इनमें उनसे लेशमात्र का धक्का नहीं लगा; आग नहीं लगी। सामान्य जनता और गरीब लोगों को तिल मात्र हानि नहीं होनी चाहिए – ऐसा सख्त आदेश महाराज ने दिया था। उसी प्रकार शहर के परोपकारी धनवानों को भी मुक्त रखा जाय – ऐसी सूचना भी महाराज ने दे रखी थी। इन लोगों में जिसके घर को कोई भी अपाय नहीं पहुँचाया गया, ऐसा एक डच क्रिश्चन धनवान भी था। अपनी पूरी जिंदगी में वह एक बड़ा दानी, सद्गुणी हुआ करता था, ऐसा महाराज ने सुना था। बहिर्जी नायक ने एक–एक व्यक्ति के बारे में भी पूरा विवरण प्राप्त कर महाराज को सौंपा था। वह डच धनिक तब वहीं पर था, तो भी उसके घर को शिवाजी के सैनिकों ने बिल्कुल हाथ नहीं लगाया।

अबिसिनिया से औरंगजेब के नाम आयी नजराने की बड़ी भारी धनराशि शिवाजी महाराज के ही "नजर" हो गयी! तब कुछ व्यापारी तीस पीपों में भरा हुआ सोना शहर के बाहर ले जाने के लिए नदी पार करने के दुस्साहस में जुटे थे। उस स्वर्ण का भार महाराज ने स्वयं ही उठा लिया और उन्हें उसकी चिंता से मुक्त कर दिया। अड़ोस–पड़ोस में उनके गुप्तचर विचरण कर ही रहे थे, अनपेक्षित रीति से कहीं पर भी दुश्मन आया, तो दो–एक दिन पूर्व ही उसकी सूचना महाराज तक पहुँचाते!

इतने सारे हल्ले–गुल्ले में भी अंग्रेज हटे नहीं। वे अपनी संपत्ति की रक्षा करने डटे खड़े रहे। उनके द्वारा दिखाया गया अनुशासन–साहस सही मायने में प्रशंसनीय ही था। महाराज ने तीन बार उनको पत्र भेजकर डराने–धमकाने का प्रयत्न किया, फिर भी वे झुके नहीं, डिगे नहीं। अंत में तो उन्होंने, "और एक बार यदि दूत को भेजा, तो उसे काट देंगे।", ऐसा उत्तर भिजवाया! परंतु अंग्रेजों के साथ जूझने के लिए महाराज के पास पर्याप्त समय भी नहीं था। लूट ही प्रमुख उद्देश्य होने से उन्होंने अंग्रेजों को वैसे ही छोड़ देना अधिक पसंद किया।

दिन–रात संपत्ति की लूट यथासांग चल रही थी। तीसरे दिन सुबह में एक विचित्र एवं भयंकर घटना हुई। शामियाने में उंडेली जानेवाली धन–राशियों के सामने ही महाराज बैठे थे। उनकी अगल–बगल में नंगे हथियार लेकर अंगरक्षक खड़े थे। तभी एक पठान युवक राजदूत का वेश पहने किले का दरवाजा खोलते हुए महाराज से मुलाकात के लिए उतर आया। खान ने कुछ शर्तों के साथ अपने को राजदूत के नाते भेज दिया, ऐसा वह कहने लगा। उसे शिवाजी महाराज का जवाब था, "तुम्हारा खान खुद तो औरतों की भाँति किले में छिप के बैठता है और हमें शर्तें डालता है। क्या वह असल में औरत ही है?" तब दूत बोला, "नहीं, अभी मुझे बोलना है।" इतना कहकर, उसने अपनी गुप्त छुरी निकालते हुए शिवाजी पर हमला किया। छुरी शिवाजी के सीने में घुसने वाली ही थी कि शिवाजी के एक अंगरक्षक ने बड़ी फुर्ती के साथ अपनी तलवार बिजली की तेजी से घुमाते हुए उस हंतक के हाथ पर वार किया। उसका घातक हाथ छुरी

समेत टूटकर उड़ा व दूर जा गिरा। उस हमले से महाराज गिर पड़े। उस हत्यारे के रक्त से उनका शरीर सिंच गया। क्षणार्ध में ही मराठों के खड्गों ने उस "दूत" के टुकड़े–टुकड़े कर दिये।

इस विश्वासघाती प्रकरण के बाद महाराज के सैनिक उद्विग्न और क्षुब्ध हुए। स्वाभाविक भी था। हाथों में लगनेवाले कैदियों की ओर मराठों का प्रतिशोध मुड़ गया। कैदियों के हाथ–पैर–सिर धड़ाधड़ गिरने लगे। तभी महाराज उधर दौड़ते गये और उनको रोका। कैदियों में एंथनी स्मिथ नामक एक अंग्रेज था। अंग्रेजों ने खंडनी देना मना किया था। इसलिए महाराज ने स्मिथ का हाथ तोड़ने का निर्देश दिया। यह सुनते ही स्मिथ ने प्रत्युत्तर दिया, "मेरे हाथ ही क्यों तोड़ते हो? बजाय उसके, मेरा सिर ही क्यों नहीं कलम कर देते?" उसके धैर्य की महाराज ने सराहना की। उसके हाथ और सिर दोनों भी बचाये। आखिर उससे ३५० रुपये दंड वसूलकर उसे छोड़ने की आज्ञा दी।

औरंगजेब का हिसाब अब चुकता हुआ!

शिवाजी महाराज पर कायरता का आरोप लगाने वालों की आँखें खोलने वाला यह प्रसंग है। सैनिकों का गुस्सा अभी तक ठंडा नहीं हुआ था। उनके प्रतिशोध की आग में सारा शहर ही झुलस रहा था। शहर का पूरा तेल भंडार उसी के लिए सुरक्षित रखा गया था।

दिल्ली–रावण के उस स्वर्णनगरी में चार दिनों तक मानो लंका–दहन की ही पुनरावृत्ति हुई। स्वराज्य के यज्ञेश्वर की बहुत दिनों की क्षुत्पिपासा शमन करने का वह एक अनूठा हवन ठहरा! शहर में कुल तीस हजार दुकानें–मकान उस धधकती आग की लपटों की चपेट में आ गयी थीं। उस प्रलयंकारी अग्नि–ज्वालाओं का लाल प्रतिबिंब पश्चिम सागर की लहरों पर स्पष्ट

दिखायी दे रहा था। चौथे दिन गुप्तचरों ने समाचार दिया कि महाबत खान बड़ी फौज लेकर सूरत की ओर बढ़ रहा है। तुरंत ही महाराज ने अपनी सेना को वापस लौटने का आदेश दिया। तब तक लूट का काम समाप्त हो रहा था। उसकी गठरियों की संख्या थी कुल तीन हजार!

घोड़ों ने सब गठरियां ढोकर स्वराज्य की ओर कदम बढ़ाया। आकाश चूमनेवाली ज्वालाओं से धधक कर जलने वाले सूरत की ओर पल भर के लिए मुड़ के देखते खड़े हुए शिवाजी महाराज ने कहा, "हमें किसी से भी व्यक्तिगत द्वेष नहीं है। औरंगजेब ने निरंतर तीन सालों तक हमारे स्वराज्य को नष्ट–भ्रष्ट–ध्वस्त किया है। उसी के प्रायश्चित के लिए यह सब करना पड़ा। अनेक दिनों की चाहत आज पूरी हुई।"

अपार धन संपत्ति का भार उठाकर निकली अपनी सेना को पीछे से कोई अनपेक्षित संकट का सामना न करना पड़े, इसके बारे में भी महाराज ने सतर्कता बरती थी। पाँच सौ सवारों को पीछे छोड़ रखा था। उनको थोड़े दिनों के बाद आने की सूचना देकर महाराज आगे निकले। वापसी का प्रयाण, पहले से भी बड़ा धीमा था। कारण, प्रत्येक घोड़े पर अब भार अनेक गुना बढ़ गया था।

महाराज के लौटने के एक सप्ताह बाद महाबत खान अपनी अपार फौज के साथ सूरत आ पहुँचा। तब तक इनायत खान को किले के बाहर आने का साहस तक नहीं हुआ था। महाबत खान के आने पर उसे सबसे पहले जो सामने दिखाई पड़े, वे अंग्रेज थे। शिवाजी के हमले के समय भी अंग्रेजों के धैर्यपूर्ण बर्ताव के बारे में सुनकर खान ने उनके प्रमुख जार्ज आक्सिडन को अत्यंत अमूल्य–सी एक तलवार नजर करने हाथ फैलाया। तुरंत जार्ज आक्सिंडन ने नम्रता से कहा, "हम तो ठहरे व्यापारी लोग। मुझ जैसे व्यक्ति को यह पुरस्कार क्यों दे रहे हो? हमारे देश के व्यापारियों को सहूलियत दे दी, तो वही काफी है। अव्वल तो, हमारे माल पर जकात–चुंगी हटा दीजिए।" उसकी यह मांग फौरन मान ली गयी। आगे चलकर, औरंगजेब ने भी उनके साहस की सराहना करते हुए उनको एक साल तक चुंगी में छूट दी। इसे ही कहते हैं 'खुद' के स्थान पर 'राष्ट्र' का

अभिमान रखना। "कभी भी सूरज न ढलने वाला साम्राज्य" अंग्रेज खड़ा कर सके, इसके पीछे उनकी इस प्रकार की जाज्वल्य राष्ट्रनिष्ठा ही काम कर रही थी, इसमें क्या संदेह हो सकता है?

कुछ ही दिन पहले औरंगजेब कश्मीर की ठंडी हवा खाकर वापस आ रहा था। तब उसे लाल महल की पूरी खबर मिल गयी। सुनते ही उसने शिवाजी को फौरन जिंदा दफनाने का अपना इरादा मन ही मन पक्का कर लिया। और अब लाहौर से लौटते वक्त सूरत की खौफनाक कहानी उसे मिल गयी। सूरत की वह आग मानो अब उसके पूरे जिस्म को ही जलाने लगी।

शिवाजी महाराज सूरत की संपत्ति–ऐश्वर्य के साथ राजगढ़ की ओर दौड़ रहे थे। सूरत–लक्ष्मी को जीजामाता के चरणों में अर्पित कर, वंदन करना उस मातृभक्त के मन की आस थी। परंतु उसी समय, नियति के क्रूर हाथों ने जीजाबाई का सौभाग्य–सिंदूर मिटा दिया। कर्नाटक के शिमोगा जिला के होदिगेरे ग्राम में शिकार खेलने गये शाहजी राजे एकाएक घोड़े से गिर पड़े और उनकी मृत्यु हो गयी। राजगढ़ पर उल्का–पात की तरह वह समाचार पहुँच गया। सूरत से लायी सोने की गठरियाँ क्या माता के उस छोटे–से मंगलसूत्र के सोने के समतुल्य हो पातीं? शिवाजी पर तो उससे भी बड़ा आघात हुआ – माता द्वारा सहगमन के वज्रनिर्धार का! छोटों ने, बड़ों ने, मुत्सद्दियों ने अश्रुभरे नयनों से जीजाबाई को सती होने से रोकने का हर संभव प्रयत्न किया। शिवाजी तो माता की गोद में ही सिर छिपाते हुए, धाड़ें मारते हुए रोकर उनको मनाने लगा। परंतु उस महामाता का निश्चय अटूट था। अपने धीर–गंभीर निर्धार के अनुसार ही वह सती होने के लिए तैयार हुई। गऊ–माँ से बिछुड़े बछड़े जैसी आर्त चीख, "अम्माँ"! आँसुओं से भीगा शिवा चिल्ला उठा, "माँ साहब, मेरी सौगंध! आप मत जाइए!" उसकी वह आर्त विलाप सुनकर पत्थर भी पिघल जाता! शिवा के उन शब्दों ने माँ का दिल दहलाया, पिघला ही दिया! उसके सामने माँ का निर्धार टूट पड़ा! अपनी माँ के साथ हृदयांतराल में छेड़े उस महासंग्राम में भी अंत में महाराज ही विजयी हुए!

अब घर के दुखड़े रोते सिकुड़कर बैठने के लिए शिवाजी के पास समय भी कहाँ था? स्वराज्य की आगामी सैंकड़ों योजनाएं उन्हें हाथ हिला–हिला के बुला रहीं थी। उन सबको एक–एक कर कार्यान्वित करना था। सबसे पहले, सिंहगढ़ पर मोर्चेबंदी कर वहाँ बैठे जसवंतसिंह को धूमिल कर भगा दिया। तदनंतर, नेताजी पालकर मुगली मुल्कों में घुसकर वहाँ अपना प्रभाव जमाकर वापस आया। स्वयं शिवाजी महाराज अहमदनगर पर धावा बोल के, वहाँ की धन–दौलत लूटकर ले आये। स्वतंत्रता का क्षुधाशमन करने बीजापुर के अनेक भागों के निवाले निगले गये।

शिवाजी को मिटाने के लिए बीजापुर सुल्तान ने फिर से दरबार बुला के 'बीड़ा' सामने रखा। उसे उठाया नामीगिरामी सेनापति खवास खान ने। वह भारी भरकम फौज के साथ शिवाजी के खिलाफ निकल पड़ा। महाराज ने उसके प्रति भी कोई पक्षपात नहीं किया! पहले आये 'खानों' को प्रदत्त 'स्वागत' ही इस खान के लिए भी आयोजित किया। रणांगण में ही रक्त की उल्टी कर, माटी फाँककर, वह भी "जान बची तो लाखों पाये" कहते हुए भाग लौटा। उसकी सहायता के लिए मुधोल से बाजी घोरपडे आया था। शाहजी राजा को धोखे से गिरफ्तार करने वाला स्वराज्य का बड़ा पुराना दुश्मन था वह! खान के पराभव के बाद वह भी महाराज के भवानी की आहुति बना। पिता के पुराने विश्वासघात का हिसाब तब चुकता हुआ। स्वराज्य के लिए उत्पन्न बाजी घोरपडे का घोर संकट सदा के लिए खत्म हुआ।

तत्पश्चात महाराज ने आदिलशाह का सुप्रसिद्ध जलदुर्ग 'फोंडा' जीत लिया। उससे तल–कोंकण का बहुलांश भू–प्रदेश स्वराज्य में समाविष्ट हुआ। इसी समय शिवाजी महाराज नौका बल का निर्माण करने में जुट गये थे। मालवण के पास सागर तीर पर खड़े होकर महाराज ने एक बार दिगंत तक अपना दृष्टिक्षेप किया। तब पश्चिम सागर में कुछ मीलों के अंतर पर उन्हें एक द्वीप दिखाई दिया। वह देखते ही उनकी आंखें चमक उठीं। उन्होंने तुरंत एक नौका बुलवायी। उसमें बैठ गये। सागर–लहरों के साथ झूमती वह नौका उस छोटे द्वीप पर पहुँची। महाराज का वह प्रथम

नौकायन था। बारहवीं शताब्दी के पहले हिंदुओं का अपना खड़ा किया हुआ प्रचंड नौकाबल था। वे संसार भर द्वीप–द्वीपांतर जाकर व्यापार–व्यवहार करते थे। परंतु, उसके बाद वह परंपरा रुक गयी। "समुद्र–प्रयाण निषिद्ध", ऐसा मिथ्या प्रचार होने लगा। शिवाजी महाराज ने वह "समुद्र–बंदी" उस दिन तोड़ दी। हिंदू वीरों के साहस के लिए सागरी क्षेत्र खोल दिया। उस द्वीप पर एक जलदुर्ग का निर्माण करने की आज्ञा दी। वही है "सिंधुदुर्ग"! पश्चिम सागर याने सिंधु–सागर! उसमें स्थित वह दुर्ग ही "सिंधुदुर्ग"! कितना अन्वर्थक नाम! आज भी पश्चिमी सागर को "अरबी समुद्र" के नाम से हम जानते हैं। हमारा समुद्र ही हमारा नहीं है, ऐसा हम कहते हैं, मानते हैं। परंतु तीन शतकों के पूर्व ही उस राष्ट्रद्रष्टा ने दुर्ग का नामकरण करते समय भी समग्र राष्ट्र की दृष्टि भूली नहीं थी। शिवाजी महाराज की प्रतिभा, प्रताप का प्रतीक आज भी उस सिंधु–सागर में सिंधुदुर्ग के रूप में सीना तान, सिर उठा के खड़ा है। पश्चिम के उस जलराशि के मध्य में उस दुर्ग का निर्माण करने में सूरत की धनराशि का सार्थक विनियोग हुआ।

इन सभी साहसों के कारण शिवाजी याने अजेय अजिंक्य, ऐसी कल्पना एवं छवि सब ओर फैल गयी। महाराज के विरोध में तलवार उठाने का धैर्य रखना तो दूर अपने प्राणों को उनसे किसी प्रकार का अपाय न हो तो बस्स, ऐसा कहने के हद तक डर दुश्मनों के दिलों पर छा गया। उन दिनों योरोपीय पत्र–व्यवहार देखा, तो भी इस बात की असलियत सौ फीसदी साबित होती है। इस प्रकार स्वराज्य का भाग्य–सूर्य ऊपरोपर चढ़ता ही गया।

❖❖❖❖❖

जयसिंह की दक्षिण मुहिम

– छत्रपति शिवाजी का उत्तर में प्रयाण

अभिनव अभिमन्यु!

अब तो औरंगजेब को शिवाजी का गुस्सा अनावरणीय बन गया। कितना सहन करता? हमारे खासोखास ससुर, नामी सेनापति शाइस्ता खान की उंगलियाँ काट कर, चौबीस घंटों के अंदर ही उसकी एक लाख सेना का तेजो भंग कर, उसे भगा देना याने क्या? काजतलब खान, नामदार खान, इनायत खान, जसवंतसिंह राठौड़ जैसे मशहूर सरदारों के साथ मनमौजी खिलवाड़ करना याने क्या? हमारे साम्राज्य के गाँव–देहात, गली–कूचे, मंडी–बाजार, इतना ही नहीं बल्कि तैरते जहाज भी, उसमें भी धन–दौलत भरकर मक्का–यात्रा के लिए निकले जहाज को स्वच्छंदता से लूटना याने क्या? मुगलई प्रताप, प्रतिष्ठा, वैभव, ऐश्वर्य के प्रतीकस्वरूप हम दिल्लीश्वर के जिंदा रहते सार्वभौम, स्वतंत्र राजा की हैसियत से वह बदमाश 'सीवा' खुद का शासन चलाता है याने क्या? सूरत को लूटकर, उसे आग की लपटों में झोंकना याने क्या? मेरे जैसे कट्टर मुसलमान बादशाह के सीने पर कदम रखकर वह अपने आजाद हिंदवी तख्त को अंजाम देने की कोशिश में लगा है, याने क्या? ये सब एक–एक कर औरंगजेब के कलेजे को चीरते जा रहे थे। सारे संसार के सामने अपना "औरंग" (सिंहासन का रोब) मिटाकर, बदनामी–बेइज्जती की कालिख पोती गयी ना? इन सबकी वजह से वह तड़प रहा था।

तो फिर, अब खुद औरंगजेब ही शिवाजी का खात्मा करने निकल पड़ा था क्या? छीः, उतना बेअक्ल नहीं था वह! इस "पहाड़ी चूहे" के नुकीले नाखूनों के बारे में उसके मन में कोई भ्रम नहीं बचा था। सह्याद्रि के शेर को उसकी गुफा में ही जाकर ललकारने का क्या परिणाम होगा; उसे अच्छी तरह से पता था।

अपने दरबार में शिवाजी के तुल्यबल सेनापति कौन हो सकता है, इसकी फिराक में वह लग गया। अपने सैकड़ों बहादुर मुसलमान सरदारों में कोई भी उतनी मर्दानगी की काबिलियत रखने वाला है, इसका यकीन उसे नहीं हो रहा था। आखिर अत्यंत सुयोग्य चयन ही उसने किया। प्रचंड पराक्रमी, अनुभव में परिपक्व, दक्षता, कर्तव्यनिष्ठा, कुशाग्र बुद्धि इन सबका सुरेख संगम जिसमें हुआ है, ऐसा एक पर्वतप्राय व्यक्तित्व उसके

सामने खड़ा हुआ – जयपुर का मिर्जा राजा जयसिंह! विगत पचास वर्षों से मुगल साम्राज्य का मजबूत आधार–स्तंभ था वह! उत्तर में एशिया से लेकर, दक्षिणी भारत तक; पश्चिम में कंधार से लेकर पूर्व में मोंघिर तक; सैकड़ों युद्धों में विजय प्राप्त करने वाला अप्रतिम प्रभावी सेनापति। यशस्वी मुत्सद्दी, बहुभाषा विशारद, मधुरभाषी, हँसमुख! प्रारंभ से ही उसके बुद्धिबल एवं बाहुबल का प्रताप औरंगजेब के बादशाहत की मजबूत नींव थी। स्वतः को "प्रभु श्री रामचंद्र का वंशज" कहलाने में बड़ा अभिमान जताने वाला राजपुरुष था वह!

परंतु, उसकी निष्ठा, प्रतिभा, पराक्रम सब दिल्लीश्वर के चरणों में समर्पित थे। उसके पिता, पितामह के काल से ही वही परंपरा चली आ रही थी। अपने कुल की सुंदर कन्याओं को बादशाह के जनाने में भरती कराने में ही अभिमान का अनुभव करने वालों का कुल था वह! मुगल बादशाह के समधी होने, ससुर होने के अलावा कोई दूजा बड़ा भाग्य क्या हो सकता था? 'स्वराज्य' की बगावत करने वाले शिवाजी को हो अथवा उसके अपने वंश के मूलपुरुष प्रभु श्री रामचंद्रजी को हो, यह 'परम–भाग्य' उपलब्ध नहीं हो सका था! जहाँ अन्य सब मुसलमान सरदार हारकर हताश हुए थे, वैसे कठिन मुहिम पर बादशाह ने अपने को चुना है, इसी का जयसिंह को भारी अभिमान।

१६६४ ई. में औरंगजेब की ४७वीं सालगिरह पर बहुत बड़ा जश्न मनाया गया। उसी संदर्भ में औरंगजेब ने जयसिंह को दक्षिण दंडयात्रा के सेनापति पद का भार सौंपकर गौरव प्रदान किया। उसकी सहायता करने के लिए अपने अन्य अनेक नामी–गिरामी सरदारों को भी आदेश दिया। जयसिंह ने अपने तोपखाने के दारोगा के नाते इतालवी सरदार निकोलाव मनुची का चयन किया। जयसिंह की मदद करने दिलेर खान को औरंगजेब ने नामजद किया। उसका रहस्य क्या हो सकता है, यह जयसिंह के चाणाक्ष बुद्धि को तुरंत समझ में आया। "इतना कुछ होने पर भी, मैं ठहरा एक काफिर; मैं विश्वासपात्र कैसे बन सकता हूँ? अपने ऊपर गुप्त रूप से निगाह रखने के लिए ही बादशाह ने इस पठान को भेज

दिया है।" लेकिन मिर्जा राजा ऐसे छोटे–मोटे अपमानों की दखल लेने वालों में से नहीं था। बादशाह के प्रति उसकी निष्ठा अचल थी, अद्वितीय थी, परदास्यता का जहर कहाँ तक पहुँचता है, देखिए।

शूर तरुण शिवाजी पर यह वृद्ध सेनानी हथियार उठाये निकल पड़ा था। यह देखकर, सुप्रसिद्ध इतिहासकार जदुनाथ सरकार ने, 'अर्जुन पर चढ़ाई करने निकले भीष्म के समान था', इस प्रकार की सुंदर तुलना की है।

दिल्ली से निकल पड़े जयसिंह ने धीरे–धीरे अपनी सैन्य शक्ति सागर–जैसी बढ़ाते हुए बड़ी तेजी से आकर औरंगाबाद में अपना पड़ाव डाला। जयसिंह ने दक्खन के सेनाधिपत्य के सभी अधिकार स्वयं सम्हाल लिये। उसकी खबर महाराज को पहले ही पहुँच चुकी थी। मिर्जा राजा जयसिंह के अधीन ८०,००० राऊत (घुड़सवार) तथा दिलेर खान के नीचे ५,००० फौजी हथियार उठाकर स्वराज्य को डुबोने आ रहे हैं।

वह क्रोधनाम संवत्सर था। सूर्यग्रहण भी तभी घेरने वाला था। ग्रहण के निमित्त कुछ पुण्य कार्य भी करना था। तो ठीक है, जीजाबाई समान पुण्यमयी माता का स्वर्ण तुलाभार तथा दान–धर्म करने से बढ़कर शिवाजी के लिए और कौन–सा शुभकार्य हो सकता था? मातृपूजा का वह अमृत महोत्सव महाराज ने आयोजित किया। साथ में ही, अपने पूज्य गुरुवर आप्त सलाहकार वृद्ध सोनोपंत डबीर का स्वर्ण तुलाभार भी संपन्न किया। उसके तुरंत बाद, देश के स्वातंत्र्य–सूर्य का ग्रास करने वाले ग्रहण को समाप्त करने की महान योजना में महाराज तल्लीन हुए। उनके प्रिय साथियों को भी आगामी विपत्ति की भीषणता का आकलन तुरंत हो गया। परंतु कितना भी गंभीर संकट क्यों न आये, उसका सामना करने की दाहकता स्वराज्य के हर सामान्य सैनिक में मौजूद थी। डर–भय की छाया तक किसी के आसपास भी नहीं फटकती थी। दिल्ली बादशाह ने अपनी भौंहें थोड़ी–सी भी टेढ़ी की हैं अथवा दिल्ली से मुगल सेना निकल पड़ी है, ऐसा समाचार मिलते ही समूचे दक्षिण के थरथर काँप उठने का

समय कब का बीत चुका था। वह सब १६३० ई. याने शिवाजी के जन्म के पहले की बात थी।

मुगली फौज पहले ही कछुवे की गति वाली, उसमें भी बड़ा भारी लश्कर याने और भी धीमापन! वह सब कुछ शिवाजी को बहुत अच्छी तरह पता था अर्थात् जयसिंह की फौज को अपने यहाँ पहुँचने में अभी बहुत समय है। तब तक चुप क्यों बैठे? उसके पहले ही महाराज ने एक और योजना पूरी करने का निश्चय किया। उन्होंने तुरंत अपना विजयी अश्व पश्चिम की दिशा में दौड़ाया। वहाँ सिंधुदुर्ग का निर्माण बड़ी तीव्र गति से हो रहा था। वहीं से महाराज के नौकानयन का शुभारंभ हुआ। न जाने कितनी शताब्दियों से भारत के सागर–पराक्रम पर छाया वह शाप उस दिन मिट गया। महाराज का वह नौका प्रयाण किस ओर चला था? कारवार के दक्षिण में स्थित बसरूर की ओर। क्यों? स्वराज्य की नींव मजबूत करने के लिए अपार धन की आवश्यकता थी। स्वराज्य के गढ़–किले, बंदूक–तोपें, गोला–बारूद आदि के लिए जितना भी धन मिले, कम ही था। वह धन कहाँ से आयेगा? ठीक है, जुल्म, जबरदस्ती, अत्याचारों से विदेशी बादशाहों ने तथा राजाओं ने अपने ही देश का पैसा विपुल मात्रा में इकट्ठा कर रखा था। वही स्वदेश–स्वधर्म के काम न आये तो और किस काम का? वास्तव में, उनलोगों को चाहिए था कि वे खुद ही स्वराज्य की सेवा के लिए वह धन देने आगे आयें। और यदि वैसा न किया गया, तो वह उनकी गलती। उसे शक्ति–प्रयोग द्वारा हासिल करने का पूरा अधिकार महाराज को था। इसी कारण, वह प्रथम भेंट बसरूर का; तब बीजापुर सल्तनत में ही वह सबसे बड़ा धनी शहर बना था। तदनंतर क्रम अंकोला का। वहाँ का काम समाप्त कर महाराज ने कारवार में अपना डेरा डाला। कारवार के सरदार शेर खान ने महाराज के इच्छानुसार ही उन्हें नजराना देकर अपना बचाव कर लिया। वहाँ के अंग्रेजों को भी बिना कोई तकरार के अपने हिस्से का नजराना महाराज के सुपुर्द करना पड़ा।

..... २ .....

इधर, मिर्जाराजा जयसिंह के मस्तिष्क में दक्खन की ओर उतरते समय सैकड़ों चिंताएँ–योजनाएँ घुमड़ रही थीं। शिवाजी की शौर्य–कुशलता की कथाएँ, अफजल–शाइस्ता की दुर्गति आदि सब बातों की याद करते–करते अपनी अवस्था क्या होगी, इसकी भीति भी उसके मन को पीड़ा दिये बगैर नहीं रही।

दिल्ली से निकल पड़ते ही, अपनी विजय प्राप्ति के लिए उसने 'धार्मिक' व्रत–अनुष्ठान आदि आरंभ कर दिये थे। उसके बाद देवी आराधना भी प्रारंभ हुई। कोटि चंडी–होम तथा प्रत्येक एक–एक करोड़ के अनुसार एकादश रुद्राभिषेक करने ब्राह्मणों के संतर्पण की व्यवस्था लगाकर दक्षिणा प्रदान की। मुक्त हाथों से दान–धर्म किया। यह सब काहे के लिए? स्वराज्य–स्वधर्म के उद्धारार्थ जन्मे शिवाजी के विनाशार्थ तथा यह देश, धर्म आदि ध्वस्त करने के लिए कटिबद्ध औरंगजेब के विजयार्थ। 'धर्म', 'धर्मनिष्ठा', 'देवभक्ति' ये सब बातें समाज के सुख–समृद्धि–स्वातंत्र्य के लिए नहीं। समाज के धारणार्थ नहीं, उन सबका विनाश करने। अहाऽऽ, जयसिंह का अगाध 'धर्मप्रेम' सार्थक! उन सभी पवित्र कल्पनाओं की विडंबना, विपर्यास क्या; इससे भी अवनत स्तर पर आना संभव है?

स्वराज्य की सीमा समीप आयी। जयसिंह का समर–कौशल एक–एक कर बाहर आना प्रारंभ हुआ। शिवाजी के विरोध में प्रयोग में लाने का समर–तंत्र यदि तय हो जाता तो भी काफी था। तथापि आरंभ में ही उसके बारे में जयसिंह तथा दिलेर खान के मतभेदों का स्फोट हो गया। जयसिंह ने कहा, "सर्वप्रथम शिवाजी के गढ़–किले एवं उनके आसपास के मैदानी मुल्कों पर कब्जा करके किलों पर बाहर से आने वाली रसद तथा कुमुक काट देनी चाहिए। तदनंतर, किलों की घेराबंदी करके उसको नरम करना होगा। अन्यथा किलों को जीतना मुश्किल होगा।" परंतु खान का कहना तो उल्टा था, "किले ही शिवाजी का शक्ति–केंद्र हैं। पहले उन्हीं पर हमले करके उन्हें ध्वस्त करेंगे।" जयसिंह को डर था कि दिलेर को कहीं खफा किया तो माबदौलत आला बादशाह औरंगजेब अपने पर गुस्सा

करेंगे। सिर्फ इसीलिए जयसिंह ने दिलेर खान का कहना मान लिया। परंतु, मराठों का सही शक्ति–केंद्र कहाँ था, यह उन दोनों को मालूम ही नहीं था। और उनको यदि मालूम भी होता तो उसे दबाने की शक्ति उन्हें तो क्या, उनके बाप–दादाओं में भी नहीं थी। शिवाजी का असली शक्ति–केंद्र न तो किलों में था, न कि मैदानों में; वह था जनता के हृदयों में। उनकी स्वराज्य–स्वधर्म–स्वातंत्र्य की धधकती निष्ठा में।

अपना सामना करने के लिए शिवाजी बीजापुर सुल्तान के साथ संधान बढ़ायेगा, इसका अंदाजा जयसिंह को पहले से ही था। वह संधि हो ही नहीं पाये, इसलिए उन दोनों राज्यों के बीचों–बीच स्थित सासवड नामक गाँव में उसने अपनी फौज का डेरा डाला। उसके बाद बड़ी कुशलतापूर्वक शिवाजी के सभी दुश्मनों को उसके खिलाफ भड़काने का जाल बिछाना शुरू कर दिया। बीजापुर सुल्तान द्वारा दिल्ली को सालाना पहुँचने वाला नजराना कम करके उन्हें अपनी ओर झुका लिया। शिवाजी के बारे में बदले की भावना से पहले ही झुलस रहे अफजल के बेटे फाजल खान तथा अन्य सरदारों को अपनी ओर से लड़ने के लिए उन सबको अपने पास बुला लिया। पुर्तगालियों से जहाज प्राप्त करने गोवा, सूरत, मुंबई आदि शहरों की ओर अपने दूतों को दौड़ा दिया। तब बादशाह औरंगजेब का फर्जंद शहजादा मुअज्जम दक्खन का सूबेदार था। जयसिंह ने अपनी योजनाओं की सफलता के लिए अधीन रखे हुए सभी मुख्य अधिकारियों को मुअज्जम के हाथों में दे दिया अर्थात् उसके वालिद मोहतरम औरंगजेब की इजाजत से ही।

उधर, दिलेर खान ने सबसे पहले पुरंदरगढ़ पर हमला किया। अनेक गढ़–दुर्गों को अपने गर्भ में समाये बैठा प्रचंड, उत्तुंग दुर्ग – पुरंदरगढ़! दिलेर की मोर्चाबंदी तथा उसका पुरंदरगढ़ द्वारा प्रतिकार; तत्कालीन स्वराज्य–स्थापना के इतिहास के ही एक अमर अलंकार के रूप में शोभायमान ऐसा घनघोर संग्राम हुआ कि स्वराज्य सैनिकों की निष्ठा, जिद्द, पराक्रम की तेजस्विता आदि समस्त जगत की आँखें चौंधाने वहाँ प्रज्वलित हुई।

शिवाजी महाराज के जीवन के अनेक संकटग्रस्त प्रसंगों में ही अत्यंत भीषण प्राणसंकट का सन्निवेश था वह। उनके जीवन के अद्‌भुत चमत्कारों में अतीव विस्मयकारी, रोमांचकारी, साहस, एवं प्रतिभा का चरमबिंदु प्रकट करने वाली घटनावली का वह शुभारंभ ठहरा।

दिलेर द्वारा पुरंदरगढ़ पर हमलों का सिलसिला चल पड़ा। आघातों पर आघात होने लगे। लेकिन उन सबका प्रबल प्रतिकार करते हुए वह दुर्ग अपना सर उठा कर खड़ा ही था। वैसे भीषण संघर्षों में भी सर्वाधिक पराक्रम की जीती–जागती मूर्ति ठहरा, पुरंदरगढ़ का कौन किलेदार था, वह? समस्त महाराष्ट्र में आगे लोकगीत, लावणी–गीत आदि की स्फूर्ति–स्रोत बना – मुरारबाजी देशपांडे! जावली में महाराज का स्वर्ण–स्नेह हासिल किया हुआ एक रत्न था वह। मुरारबाजी के आज्ञानुसार ही किले में डटकर अप्रतिम संघर्ष करने वाले कौन थे वह? "अस्पृश्य!" समाज में अंत्यज नाम से तिरस्कृत हो रहे हमारे बांधव। वही लोग महाराज के कार्य में, स्वराज्य की सेवा में हँसते–हँसते अपने प्राण तक न्योछावर करने के लिए तैयार खड़े; स्पर्श करने योग्य भी नहीं ऐसा मानते हुए जिस समाज ने उन्हें दूर रखा था; उसी समाज की रक्षा करने में अपना रक्त बहा रहे थे!

पुरंदरगढ़ की सुरक्षा उसके बगल में खड़े वज्रगढ़ पर निर्भर करती है, यह दिलेर खान के ध्यान में आने में देर नहीं लगी। तुरंत उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर वज्रगढ़ पर हमला किया। दोनों ओर के असंख्य सैनिक पग–पग पर मारे गये। आखिर खान ने अपने पास के राक्षसप्राय तोपों के बल पर वज्रगढ़ जीत लिया। उस किले से गिरफ्त में आये सैनिकों को मुगली तहजीब के मुताबिक सीधे जन्नत भेजने के बजाय, उनके–उनके योग्यता के अनुसार सम्मान करके रिहा करने का आदेश जयसिंह ने दिया। यह क्या आश्चर्य! एकाएक इतना उदार अंतःकरण उसके पास कैसे आया? लेकिन वह उदारता नहीं, राजकारण–पटुता थी। पुरंदरगढ़ पर स्थित मराठा सैनिकों को सहजता से शरण में लाने के लिए लालच देने का तंत्र था वह! जयसिंह की पनाह में जाने के बाद तोपों से

उड़ा दिये जायेंगे, ऐसा यदि उन्हें लगा तो वे सब आखिरी दम तक लड़ते ही रहेंगे, शरण में आयेंगे ही नहीं। इसके विपरीत, वे बड़ी सुलभता से शरण में आ जायें, ऐसी धूर्त चाल चली थी जयसिंह ने। तथापि, स्वराज्य के सैनिक वह प्राणभय के कारण नहीं लड़ रहे थे, यह उस वृद्ध रणपंडित के भी समझ में नहीं आया। समझे भी तो कैसे? अपना पूरा जीवन ही जिसने बादशाह की गुलामी में बिताया, उसे स्वातंत्र्य–योद्धाओं की दिलेरी क्या होती है, यह समझ में आयेगी भी तो कैसे?

मराठों के गनिमी–कावा की गरमी मुगली सैनिकों को लग ही रही थी। नेताजी पालकर के शौर्य–तेज की तीक्ष्णता कदम–कदम पर शत्रुओं का सीना चीर रही थी। उधर जयसिंह ने स्वराज्य में जहाँ–तहाँ हत्या, अत्याचार, लूटपाट, आगजनी का शैतानी नाच ही प्रारंभ कर दिया। सब ओर आपत्तियां एवं सर्वनाश की ज्वालाएँ अपनी सहस्रों जिह्वाओं से स्वराज्य को जला रही थी। वे बेचारे मावला, अधनंगे किसान, कुम्हार, बुनकर, महार आदि सब वैसे भीषण अग्निप्रलय में भी दुश्मनों से बिल्कुल डरे नहीं, झुके नहीं। 'शरणागति' यह शब्द उनके सपने में भी नहीं आया। ऐसे लोगों के निर्माणकर्ता, हे शिवराय, तुम धन्य हो! तुम्हारे पुण्यप्रताप को शत–शत प्रणाम!

पुरंदरगढ़ के सब ओर वैसी सर्पीली मोर्चेबंदी के बावजूद महाराज ने अपनी चाणाक्षता का प्रयोग किया; अत्यंत गुप्तता से, साहसपूर्ण ढंग से दुर्ग के अंदर अत्यावश्यक सब साधन–सामग्री पहुँचायी। उसका पता चलते ही जयसिंह–दिलेर ने तो अचंभे से दाँतों तले उंगलियाँ दबा लीं।

पुरंदरगढ़ का ऐतिहासिक संघर्ष निरंतर आगे बढ़ता ही गया। किले के बुर्जों के बाद बुर्ज गिरना शुरू हुआ। वह गिरते ही मराठा उनके अंतर–वलयों में इकट्ठा होकर और भी अधिक जोश के साथ खड़े हो जाते थे। चिढ़ाये गये चीते के जैसा दिलेर खान पुरंदरगढ़ के दीवारों पर आखिरी हमला करने की तैयारियों में जुट गया। उसी समय मुरारबाजी ने भी एक प्रलयंकारी योजना रची। सात सौ कट्टर साहसी वीरों के साथ उसने स्वयं ही दिलेर पर टूट पड़ने का निश्चय किया। "हर हर महादेव!"

रणघोष गूँज उठा! अचानक किले का दरवाजा खोला गया, मानो साक्षात काल–भैरव ही अवतरित हुआ हो उसी आवेश में दुर्ग के नीचे खड़ी पठानों की फौज पर वह टूट पड़ा। नंगे बिजली की आग का मजा चखाते हुए उसने दुश्मनों को काटकर फेंकना शुरू किया। जहाँ देखें, वहाँ दीर्घ–देही पठानों की लाशों का ढेर पड़ने लगा। मुरारबाजी के दाएँ–बाएँ दोनों हाथों में तलवारें बिजली की तरह चमक रहीं थी। वह देखकर खुद शमशेर–बहादुर दिलेर खान हताश होकर अपनी छावनी में दौड़ते लौट गया। लेकिन मुरारबाजी का सारा लक्ष्य दिलेर पर ही केंद्रित था। किंचित् भी इधर–उधर देखे बगैर खान का पीछा करते–करते, वह दुश्मनी फौज की पंक्ति को चीरते हुए आगे बढ़ा। उसका अदभुत पराक्रम देखते भौंचक्का बना दिलेर अपने आप को ही कहने लगा, "क्या यह आदमी है या हैवान?" खान ने हाथी पर बैठे–बैठे ही चिल्लाते हुए मुरारबाजी को पुकारा, "ऐ, सूरमाओं के सूरमा! तेरी बेजोड़ बहादुरी देख मुझे बड़ी खुशी हुई है, हमारे साथ चल, आ हमारी तरफ, तुझे बड़ा इनाम दिलवाऊंगा।" यह सुनते ही बाजी के क्रोधाग्नि का विस्फोट ही हुआ। "मैं शिवाजी का सैनिक हूँ। क्यों मैं तुम्हारे पास आऊँ?" ऐसी गर्जना करते हुए हाथी पर अंबारी में बैठे दिलेर पर वह सिंह जैसा चढ़ गया। लेकिन, ऊँचाई पर बैठे खान तक उसका प्रहार पहुँचना दूभर हुआ। तभी खान ने अपने कमान पर तीर चढ़ाया; कानों तक खींचते हुए मुरारबाजी के गर्दन पर निशाना रखते हुए छोड़ दिया। सुँईई .....तीर ने अपना काम किया! मुरारबाजी का कंठ चीर दिया। वह अलौकिक तेजपुंज मूर्ति नीचे गिरी। तब तक तीन सौ मराठा वीर धराशायी हो चुके थे। बचे–खुचे सैनिक मुरारबाजी का देह उठाकर किले की ओर फरार हो गये। दिलेर खान भी एक पैदायशी बहादुर शख्स था। उस प्रकार का आदमी ही वीर पुरुषों का गौरव–गान गा सकता है। मुरारबाजी के गिरते ही, "कैसे जन्नती बहादुर को खुदा ने पैदा किया था।" ऐसे आदरयुक्त आवाज में वह बोल पड़ा।

मुरारबाजी गिरा; तो भी पुरंदरगढ़ नहीं गिरा। सिर गिरा; लेकिन उसका देह लड़ता ही गया। देह पर नहीं, ध्येय पर निष्ठा कैसी होती है,

इसका वह एक ज्वलंत उदाहरण था। एक गिरा, तो उसकी जगह लेने दूसरा। हफ्ता–दो हफ्ते, महीना–दो महीने ऐसे बीतते गये। तथापि दुर्ग के झुकने की बात ही नजर नहीं आ रही थी।

..... ३ .....

मुरार बाजी हत हुआ। और भी अनेक वीरगति को प्राप्त हुए और भी मरेंगे। स्वराज्य के लोग हताश हो रहे थे। यह सब देख शिवाजी महाराज का हृदय निचुड़ा जा रहा था। परंतु उनका मस्तिष्क भावी योजनाओं में ही संचार कर रहा था। इतिहास दिङ्मूढ़ बन गया! आज भी दिङ्मूढ़ ही है! एक दिन राजा जयसिंह को शिवाजी महाराज ने रघुनाथ पंत के हाथों एक संधि–पत्र भेज दिया, "इसके बाद मुगल बादशाह के साथ ईमानदारी से रहूंगा। बीजापुर के खिलाफ आपकी मदद करूंगा। युद्ध समाप्त करेंगे।" जन्मजात गुलाम को ही शोभा देने वाला उत्तर जयसिंह ने लिखा, "आकाश–गंगा के तारों की भाँति बादशाह की फौज असंख्य है। अपनी जान बचानी है, तो बादशाह की गुलामी स्वीकार करो। सब गढ़–किले हमें सौंपकर पूर्ण शरण में आ जाओ।"

महाराज ने दिलेर खान को भी उसी तर्जुमे का समझौता–सूचक पत्र भेज दिया था। उसे तो आश्चर्य का जबरदस्त धक्का ही लगा। अभी पहला पराभव हुआ भी नहीं और यहाँ शिवाजी जैसा शैतानी बहादुरी वाला शख्स समझौते की बातें क्यों कर रहा है, यह सोचते–सोचते वह पगला गया। फिर भी, गरूर भरा जवाब दिया, "हम तो तुम्हारे साथ जंग करने की ख्वाहिश लेकर ही उतनी दूरी से यहाँ पर आये हैं। उसे छोड़ तुम्हारे साथ समझौते की बातें करना हमारे जैसे बादशाह के सिपहसालारों की गैरत की दूसरी बात नहीं।" उसने तो समझौते का प्रस्ताव ही अमान्य किया ताकि अपना पराक्रम दिखाने का मौका कहीं हाथ से फिसल न जाये।

बीजापुर को भी शिवाजी महाराज ने पत्र लिखा, "आज हमें डुबोने आया यह जयसिंह, कल आदिलशाही को भी डुबोये बगैर नहीं छोड़ेगा। अब हम दोनों ने मिलकर यदि जयसिंह की चरबी नहीं उतारी, तो कल

हम दोनों की खैरियत नहीं।" परंतु दिल्ली बादशाह की तुलना में शिवाजी का ही खौफ ज्यादा खाये, बीजापुर सुल्तान ने उस पत्र को नजरअंदाज किया!

मिर्जाराजा जयसिंह को भी उस पत्र की खबर मिल गयी। उसके कलेजे में भी धस्स (धक्) हुआ। शिवाजी महाचतुर, उसने यदि बीजापुर को अपनी ओर कर लिया तो फजीहत होगी, ऐसा मिर्जा राजा ने सोचा। कुछ भी हो, शिवाजी का दूत तो अब समझौते के लिए ही यहाँ आया है। समझौते के दौरान शिवाजी को जितना झुका सकते हैं, झुका देंगे। ठीक है, उसने समझौते के प्रस्ताव को औरंगजेब की अनुमति के लिए पत्र लिख दिया। महाराज ने राजदूत के नाते रघुनाथ पंत को जयसिंह के पास भेज दिया। "निःशस्त्र रूप में खुद ही आकर, अपराधी जैसे खड़े होकर क्षमायाचना की, तो मुमकिन है कि बादशाह सलामत आपको एक बार बख्श देंगे।" जयसिंह ने उत्तर दिया। शिवाजी के बदले, राजपुत्र संभाजी राजे को भेजने की सलाह जयसिंह ने तिरस्कृत की। अंत में, उसे शिवाजी का एक और संदेशा आया, "हमारे प्राणों पर किसी तरह का आँच नहीं आयेगा, ऐसा वचन यदि आप हमें दोगे तो हम वहाँ आने के लिए तैयार हैं।" जयसिंह को बड़ा आनंद हुआ। उसने उसका जवाब भी भेजा, "हम शिवाजी को अपने पुत्र रामसिंह जैसा ही मानते हैं। आपका कोई अनिष्ट नहीं होगा, ऐसा वचन हम आपको देते हैं।" अपने वचन को सत्यापित करने के लिए जयसिंह ने देवता की पूजा कर, तुलसी–बिल्वपत्र आदि रघुनाथपंत के हाथों महाराज के लिए भेज दिया। वह प्राप्त होते ही, महाराज राजगढ़ से जयसिंह से भेंट करने निकल पड़े।

क्या आश्चर्य! सह्याद्रि का सिंह आखिर दिल्ली के सियार को कुर्निसात करने तैयार हो ही गया। उनका मन परतंत्रता की ओर झुक ही गया ना? अथवा, क्या अपने ऊपर ढायी हुई आफत को देखकर उसका दिल थर्रा गया? उस सिंह के बाल्य–काल से ही दर्शायी गयी अजिंक्य–स्वतंत्र–निर्भय–वृत्ति, एक से अद्भुत एक साहसी चमत्कार आदि; जिसने देखे–सुने थे, ऐसे किसी को भी महाराज के इस कृति का क्या

रहस्य हो सकता था, यह सहजता से समझ में आयेगा! उसके बारे में इतिहासकारों ने, समकालीन राजकारणियों ने अपना–अपना मतितार्थ निकाला है। यह सही है कि कुछ इतिहासकारों ने उसे शिवाजी की शरणागति ही कहा है। तथापि जिनको शिवाजी महाराज के अलौकिक प्रतिभा का परिचय है, वे सब उस समझौता–प्रस्ताव के पीछे कुछ गूढ़–अगम्य अवश्य ही होगा, ऐसा अपना स्वाभाविक अनुमान व्यक्त करते हैं। उन दिनों अंग्रेज अधिकारियों के लिखे पत्रों में भी, "इसमें शिवाजी की कोई दूरदर्शी, साहसी योजना थी" ऐसा स्पष्ट उल्लेख मिलता है। वैसे देखा भी जाए, तो अपने दाँतों तले घास चबाते हुए शरणागत होने जैसी परिस्थिति तब शिवाजी की सर्वथा नहीं थी। तब तक जयसिंह–दिलेर दोनों को एक भी किला जीतना मुमकिन नहीं हुआ था। एक पुरंदरगढ़ ही ढाई महीनों तक दिलेर का विरोध करते सीना ताने खड़ा था। उस दिन तक शरणागति का कोई सुराग भी नहीं दिखाई दिया था। पुरंदरगढ़ की तरह और कितने ही किलों में दृढ़ता से खड़े होकर, शिवाजी जयसिंह की सेना को परेशान कर सकते थे। अफजल खान, शाइस्ता खान, जसवंत सिंह आदि को माटी फाँकने भेजने वाला शिवाजी, इतनी सुलभता से शरणागति स्वीकार सकता है, यह कल्पना ही असंभवनीय!

शिवाजी महाराज के इस कृति का मर्म जानने के लिए उन दिनों की परिस्थिति, जयसिंह–शिवाजी का रणकौशल, बलाबल आदि की तुलना करना उचित रहेगा। शिवाजी के साथ संधि प्रकरण समाप्त होने के बाद, जयसिंह बीजापुर पर हमले करने में जुट जाता है। परंतु, वहाँ पग–पग पर बीजापुर के सरदारों से मार खाकर उसे पीछे हटना पड़ा था। तथापि, उन्हीं बीजापुर के सरदारों को शिवाजी बार–बार धूल चाटने पर मजबूर करता है। तो फिर, जब युद्ध का आरंभ भी नहीं हुआ था, तब जयसिंह का सामना किए बगैर असहाय बनकर शिवाजी शरणागति स्वीकारने तैयार हो जाता है, यह न केवल शिवाजी के लिए, बल्कि उस कालखंड के इतिहास का ही अपचार होगा।

तो फिर समझौता–प्रस्ताव में छिपा वह गूढ़ रहस्य क्या था? वही शिवाजी महाराज के जयसिंह को लिखे एक पत्र में ध्वनित हुआ है, "तुम दक्खन प्रांत जीतने आये हो। यदि आप एक स्वतंत्र राजा के नाते आते तो मैं अपना सिर काटकर आपके चरणों में रख देता। किंतु औरंगजेब का दास बनके तुम आये हो। अब आपके साथ लड़ाई की तो दोनों ओर से हिंदुओं का ही विनाश होगा। सिंह यदि आपस में लड़ के मर जाते हैं, तो सियार–भेड़ियों को ही जंगल में राज्य करने में सुविधा प्राप्त होगी। इसी उद्देश्य से औरंगजेब ने तुमको भेज दिया है। औरंगजेब जैसे कुकर्मी, नीच और अधम का सेवक बनना आपके लिए जरा–सा भी भूषणावह नहीं। आज तो सकल हिंदु समाज के जीवन–मरण के संघर्ष का ही प्रसंग उद्भूत हुआ है। आप उत्तर में राजा जसवंतसिंह, राणा राजसिंह आदि के साथ हाथ मिलाकर ऊपर उठिए। दक्षिण से मैं मेरे मराठा बालवीरों के साथ आकर आपसे मिल जाता हूँ। हम सब एक होकर औरंगजेब रूपी कालयवन को कुचलकर फेंक देंगे। उसका 'औरंग' हो या 'जेब' हो; कुछ भी नहीं बच पायेगा, ऐसा कर देंगे। यदि आपको यह मान्य न हो, तो म्यान से बाहर आने के लिए मेरा खड्ग सदैव ही सिद्ध है।"

महाराज का आंतरिक बड़प्पन अंकित करने वाला यह पत्र देखिए। दोनों पक्षों के हिंदुओं का नाश रोकना; यही पहला उद्देश्य। दूसरा, खुद जयसिंह को ही स्वराज्य स्थापना के कार्य के लिए प्रेरित कर सकते हैं क्या; यह देखना था। इस पत्र से जयसिंह के पूर्णरूपेण परिवर्तित होने की उम्मीद तो थी ही नहीं; फिर भी, उसका परिणाम उस पर हुआ ही होगा। तथापि, उसे औरंगजेब एवं अपने साथ आये दिलेर खान को अपने मन का रुझान का पता न चले, ऐसी आवश्यक सतर्कता बरतनी थी। सबसे बढ़कर था औरंगजेब का खौफ! उसी कारण, शिवाजी के बारे में जयसिंह के बाह्यकारी व्यवहार अत्यंत कठोर ही होते थे।

जयसिंह का सम्मति–पत्र, तुलसी–बिल्वपत्र हाथों में आते ही शिवाजी महाराज उससे मुलाकात करने पालकी में बैठकर निकल पड़े। केवल छः ब्राह्मणों के साथ निहत्थे होकर दुश्मन छावनी की ओर वे निकले थे।

शिवाजी महाराज आ रहे हैं, यह खबर सुनते ही मुगली छावनी में भय–कौतूहल का माहौल व्याप्त हो गया। जयसिंह भी थोड़ा डर गया। परंतु शांत स्वर में उसने आदेश दिया, "शिवाजी यदि अपने कब्जे के सभी किले हमें बिना शर्त सौंपने को तैयार हो तभी उसे अंदर भेजना। अन्यथा, वह वहाँ से ही वापस लौट जाये।" महाराज ने उत्तर दिया, "मैं अब बादशाह का चाकर हूँ। कमोबेश सभी किले छोड़ देने को तैयार हूँ।"

जयसिंह के शामियाने में शिवाजी महाराज का स्वागत किया गया। जयसिंह ने अपनी सुरक्षा के लिए अगल–बगल में राजपूत अंगरक्षकों को खड़ा किया था। वहाँ आते ही महाराज ने जयसिंह का हार्दिक आलिंगन किया। कुछ ही दिन पहले शिवाजी के आलिंगन से ही अफजल खान की अवस्था क्या हुई थी, इसके स्मरण से जयसिंह का हृदय भी क्षणमात्र स्तब्ध हुआ था! तथापि कितना भी हुआ, तो जयसिंह 'अपना' है। शिवाजी महाराज का जीवन ही अपनों के लिए समर्पित था। उनके उद्धार के लिए, उन्हें धर्मरक्षा कार्य के लिए प्रेरित करना ही था। तो फिर शिवाजी के मन में जयसिंह का घात करने की कल्पना भी कैसे आ सकती थी।

पुरंदरगढ़ का घनघोर संग्राम बैठे–बैठे ही आँखों को दिखाई दे, ऐसी जगह पर उन दोनों के बातचीत का इन्तजाम किया गया था। ठीक उसी समय पुरंदरगढ़ पर जोरदार हमला करने की सूचना भी जयसिंह ने दिलेर खान को दे रखी थी। बातचीत प्रारंभ होते ही जयसिंह के सामने महाराज ने पुरंदरगढ़ तुरंत छोड़ देने की पेशकश की, तत्काल युद्धविराम करने की सूचना पुरंदरगढ़ के किलेदार को भेज दी। समरभूमि शांत हो गयी। आगे समझौते की शर्तें तय हो गयी। जयसिंह–शिवाजी के इस भेंट के समय, जयसिंह का अपना सरदार निकोलाव मनुचि भी हाजिर था। महाराज तथा मनुचि दोनों का परस्पर परिचय हुआ।

समझौते के अनुसार, शिवाजी तत्काल पुरंदरगढ़, सिंहगढ़ आदि प्रमुख २३ गढ़ किले छोड़ देंगे; साथ में १६ लाख के सालाना आमदनी वाला मुल्क भी जयसिंह के सुपुर्द किया जायेगा; केवल १२ किले तथा एक लाख के वार्षिक उत्पन्न का भू–प्रदेश, वह भी बादशाह औरंगजेब की

मेहरबानी के रूप में और उसके दक्खनी सूबेदार के अधीन रहकर ही शिवाजी अपने पास रख सकते थे। पुत्र संभाजी राजे दिल्ली बादशाह का पंचहजारी मनसबदार बनकर दक्खनी सूबेदार के पास रहे। बीजापुरी मुल्क जीतने के लिए शिवाजी मुगलों की मदद करें। उस प्रकार से जीते हुए मुल्क शिवाजी अपने पास रख सकता है। उसके बदले में, शिवाजी को हर साल कुल 40 लाख 'होन्न' (स्वर्ण मुद्राएँ) नजराना के रूप में दिल्ली को देना होगा। यही था वह सुप्रसिद्ध 'पुरंदर–समझौता'!

इस अपमानस्पद 'संधि' के मूल में उपरोक्त दो उद्देश्य तो थे ही। उसके साथ ही, मुगलों की सहायता लेकर दक्खन की आदिलशाही, कुतुबशाही समाप्त करना और अपना प्राबल्य अप्रतिहत रीति से बढ़ाते जाना; ऐसी महायोजना महाराज के मन में थी। दिल्ली के अधीनस्थ के रूप में समस्त दक्षिण में बाकी सबको डरा–धमका कर उन्हें नेस्तनाबूद करना तथा अपना हाथ पर्याप्त मजबूत होते ही एक दिन दिल्ली का जुआ फेंककर बिजली की गति से स्वातंत्र्य की स्थापना करना। यह कोई कठिन बात तो थी नहीं। परंतु जयसिंह–शिवाजी के इस संधि से एक व्यक्ति अवश्य नाराज और गुस्सैल बना था – दिलेरखान! अपनी बहादुरी से मैंने पुरंदरगढ़ जीता है, ऐसी बड़ाई हाँकने का एक सुनहरा मौका जो उसे हासिल हो ही रहा था कि जयसिंह ने लड़ाई रुकवा कर इस समझौते के तहत वह किला अपने कब्जे में कर लिया था। दिलेर के हिस्से की शोहरत उसने छीनी थी। पठान के नसीब का सेहरा अब एक राजपूत के सर पर बाँधा गया था। खान का गुस्सा जयसिंह के दिमाग में आये बगैर नहीं रहा। इसीलिए खान को ठंडा करने के लिए उसने शिवाजी को दिलेर खान से मुलाकात करने भेजने के इरादे से उनको कहा, "आप पुरंदरगढ़ पर दिलेर खान से अवश्य मुलाकात कर आइएगा। आपको कोई अपाय न हो, इसलिए आपके साथ अपने सरदारों को भेज दूँगा। चिंता की कोई बात नहीं।" उस पर शिवाजी महाराज ने उत्तर दिया। "मैं हूँ शिवाजी! दिलेर खान का डर मुझे क्यों होगा। आप जहाँ कहें, वहाँ उसे मिलने जाऊंगा।" दिलेर खान की तत्कालीन मनस्थिति में वह मुलाकात

असल में अपायकारी बन सकती थी, इसमें दो राय नहीं थी। महाराज भी यह भली–भाँति जानते थे। तथापि प्रभु की कृपा से मुलाकात आपसी प्यार तथा आदर भरे माहौल में ही हुई। खान ने शिवाजी को हार्दिकता से आलिंगन किया। विदाई के वक्त भी रत्नजड़ित खड्ग और कटार, सोने के आभूषण, वस्त्रालंकारों से सुशोभित अश्व आदि देकर सम्मान दिया। दिलेर के उस दिलेरी भरे बर्ताव का कारण याने उसके खुले मन वाली पठानी वृत्ति के साथ–साथ शिवाजी महाराज का प्रभावी व्यक्तित्व भी था, इसमें कोई अंदेशा नहीं था।

उस समझौते के अनुरूप दिल्ली बादशाह की मेहरबानी की गुजारिश करनेवाले पत्र पर भी महाराज ने अपने हस्ताक्षर किये। वह पत्र भी जयसिंह ने अव्वल गुलामी शैली में ही तैयार किया था। औरंगजेब की ओर से समझौते को सम्मति देनेवाला एक पत्र तथा खिलअत, वस्त्रप्रावरण आदि आये। माबदौलत आलमगीर बादशाह औरंगजेब का दिल्ली से आया पत्र स्वीकारना; क्या कोई मामूली बात थी? मुगलशाही रस्मों–रिवाज के अनुसार, वह पत्र पाने के लिए वाहन में नहीं पाँच–छः मीलों तक निहत्थे पैदल ही जाना चाहिए; दिल्ली के दूत के सामने आते ही घुटनों के बल बैठ के वह पत्र हाथों में लेना चाहिए। पत्र को सिर पर रखकर, वाद्यघोष के साथ चलते ही वापस आना चाहिए। शिवाजी महाराज जैसे स्वाभिमान–स्वातंत्र्य की पताका हाथ में लिए खड़े व्यक्तियों के लिए वह कितना दारुण मर्माघात हुआ होगा। परंतु कभी पुराण काल में भगवान शिवशंकर ने विष–पान किया था, उसी प्रकार शिवाजी महाराज ने भी वह कटु गोली शांत चित्त से निगल ली! सिंह–पराक्रम के साथ–साथ उच्चकोटि का अतुलनीय मनोनिग्रह भी उनमें था। इसीलिए वे सदैव अंतिम विजय के अधिकारी बनें।

शिवाजी प्रकरण समाप्त ही हुआ, ऐसा सोचकर जयसिंह अब बीजापुर पर हमले की तैयारियाँ करने लगा। समझौते के अनुसार शिवाजी महाराज भी उसके साथ निकल पड़े। परंतु, वहाँ से आगे जयसिंह का भाग्य ही पूरा उल्टा–पुल्टा हो गया। जिंदगी और मौत की कैंची में फँस

की बीजापुर की फौज ने घोर प्रतिकार किया। उसके सामने जयसिंह की सेना काँप उठी। दिलेर खान भी बार–बार पराभूत होते गया। जयसिंह और शिवाजी महाराज दोनों मिलकर लड़े युद्धों का भी वही हश्र हुआ। उसी समय, गोलकोंडा के कुतुबशाह ने बीजापुर के सहायतार्थ 0,000 की फौज भेज दी। आज बीजापुर डुबोने निकला दिल्ली का बादशाह कल मुझे भी नहीं छोड़ेगा, ऐसा उसे लगा। मिर्जा राजा जयसिंह के जीवन में प्रथम बार पराभव का कलंक मत्थे लग गया।

जयसिंह की चिंता और अधिक तीव्र होने का एक प्रसंग हुआ। 'पुरंदर संधि' के क्षण से ही उस पर दिलेर खान का गुस्सा उबल रहा था। और तो और, बीजापुर के विरोध में अब पराभव का ही सिलसिला जारी था। 'काक–तालीय' न्याय के अनुसार, दिलेर खान की नजरों में इन सबके लिए सिर्फ शिवाजी ही जिम्मेदार। शिवाजी अंदर से ही बीजापुर के साथ मिल गया है, ऐसा आरोप भी उसने लगाया। एक दिन तो वह भड़क उठा और जयसिंह से कहने लगा, "यदि आपने शिवाजी को नहीं मार डाला, तो मैं ही उसे खत्म कर देता हूँ।"

दिलेर के दुष्ट उद्देश्य की आहट महाराज को मिली थी। स्वयं बीजापुर के अधीनस्थ पन्हालगढ़ पर चढ़ाई करने तुरंत जाना चाहता हूँ, ऐसा कहते उन्होंने जयसिंह से अनुमति माँगी। जयसिंह भी वही चाहता था। खान के हाथों से शिवाजी को बचाने की दृष्टि से उनको त्वरित अनुमति दे दी। उसी समय, एक और अतीव आश्चर्यकर घटना घटी। पन्हालगढ़ के उस जंग में शिवाजी महाराज की सहायता करने नेताजी पालकर का आना बहुत ही जरूरी था। परंतु वह आया नहीं। परिणामतः महाराज का घोर पराभव हुआ। शिवाजी महाराज ने वचन भंग का दोषी ठहरा कर नेताजी पालकर को सरसेनापति पद से हटा दिया। वह फौरन बीजापुर गया और वहाँ के सुल्तान के साथ हाथ मिलाने की पेशकश की। 'प्रति शिवाजी' स्वयं ही अपनी ओर से लड़ाई करने को तैयार हुआ है, यह देखकर सुल्तान को बड़ी खुशी हुई। बीजापुर सुल्तान ने तुरंत उसे चार लाख होन्न की बख्शीश और पाँच हजार की मनसब दे दी। अब नेताजी

द्वारा भी जयसिंह पर वज्रप्रहार प्रारंभ हुआ। 'प्रति शिवाजी' नेताजी पालकर के बीजापुर की ओर से अचानक खड़ा होने में भी शिवाजी का ही कोई हस्तलाघव होगा, ऐसा संदेह जयसिंह को आये बगैर नहीं रहा। तत्कालीन अंग्रेजों ने तो शिवाजी की वह एक धूर्त चाल ही थी, ऐसा लिखा है। जिस तरह आज नेताजी गया, उसी प्रकार कल शिवाजी भी बीजापुर के साथ हाथ मिलाएगा। तब हमारी क्या अवस्था होगी, ऐसी एक नयी चिंता जयसिंह को पीड़ा देने लगी।

जयसिंह को एकाएक एक कल्पना सूझी। वाह, कितनी सुंदर कल्पना! अपनी सब विकट समस्याओं को एक ही उत्तर में हल करने वाला रामबाण! शिवाजी को औरंगजेब से मुलाकात करने दिल्ली भेजना। उससे बादशाह और शिवाजी के बीच आपसी संबंध सुदृढ़ होंगे। साथ–साथ बीजापुर से शिवाजी की चली मसलहत के भय से भी छुटकारा मिलेगा। इसके अलावा, दिलेर खान से शिवाजी को दूर रखना भी संभव होगा। जयसिंह ने औरंगजेब एवं शिवाजी की आपसी मुलाकात की जरूरत के बारे में एक पत्र दोनों के नाम भेज दिया। लेकिन, उधर औरंगजेब से भी उसका जवाब नहीं आया और इधर शिवाजी ने भी उत्तर नहीं दिया। महाराज तो उस सूचना के बारे में सोचने के लिए भी तैयार नहीं हुए। तथापि स्वतः को ठीक लगने वाली हर योजना का अंत तक पीछा करने के अपने स्वभाव के लिए जयसिंह मशहूर था। बिना विश्राम, वह औरंगजेब को बार–बार पत्र लिखता ही रहा। "दक्खन में फतेह हासिल करने के लिए शिवाजी का पूरा दिलो–दिमाग हमारी ओर झुका लेना बड़ा जरूरी है।" ऐसा वह बादशाह से गुजारिश करते गया। इधर, शिवाजी को भी दिल्ली–यात्रा के लिए मनाने का दुस्साध्य प्रयास करता रहा। वह शिवाजी महाराज के समक्ष नाना विध आश्वासन–आकर्षण प्रस्तुत करता ही गया। बादशाह से पूरे दक्खन की सूबेदारी दिलवाने का अभिवचन भी बेहिचक दे दिया।

उसी समय आगरा के बंदीखाने में शाहजहाँ ने आखिरी साँस ली। औरंगजेब ने बेफिक्र होकर राहत की साँस भरी। उसी आसमानी खुशी में

उसने जयसिंह के पत्र का भी उत्तर भेज दिया, "ठीक है, शिवाजी को भेज दो!" साथ में ही, उसके लिए जरूरी इन्तजामात भी करवाये।

तथापि जयसिंह के लिए, शिवाजी को मनाना और भी मुश्किल बन गया। बादशाह के सामने खड़े होकर क्या वह सह्याद्रि का सिंह अपना सिर झुकायेगा? किशोर अवस्था में बीजापुर सुल्तान के सामने सिर नहीं झुकाऊंगा; ऐसा फटकारने वाला वह स्वातंत्र्य केसरी क्या अब अपना शीश नवायेगा? अब तक किसी परकीय के सामने झुका ऐसा सिर वह नहीं था। इसके विपरीत, औरंगजेब के क्रूर, कपटी तथा हिंदुद्वेषी स्वभाव का परिचय महाराज को जितना अच्छा पता था, उतना शायद ही और किसी को था। और अचानक एक दिन महाराज ने जयसिंह की सूचना मान ली। यही था शिवाजी के रोमांचकारी जीवन का सबसे अधिक अद्‌भुतरम्य प्रसंग।

शिवाजी महाराज ने तब तक एक से बढ़कर एक निस्सीम साहस की योजनाएँ ही हाथों में ले ली थीं। उसकी पृष्ठभूमि पर यदि विचार किया जाये, तो उनके मन में सबसे अधिक कदाचित् उनके जीवन में ही कलशप्राय साबित होने वाले इस महासाहसी कल्पना का स्मरण अवश्य ही करना चाहिए, ऐसा इतिहास के अनेक अध्येताओं का अभिमत है। वह रोमहर्षक कल्पना याने मुगलशाही के मूल पर ही कठोर कुठाराघात करके इंद्रप्रस्थ में ही हिंदु–पादशाही की स्थापना करना। आगरा भेंट का मौका साधकर औरंगजेब को ही 'अल्लाह को प्यारा' कर देना!!

यह योजना, जैसे प्रथम दर्शन में दिखायी देती है, उतनी असंभव तो थी नहीं। उन दिनों राज्य के केंद्रस्थ व्यक्ति के गिरने के बाद बड़े–बड़े साम्राज्य भी उल्टे–पुल्टे हो जाते थे। और उस समय हिंदु साम्राज्य स्थापना की प्रमुख बाधा हिंदु राजाओं का हृदय–दौर्बल्य था। दिल्ली में ही हिंदु साम्राज्य की स्थापना करनी चाहिए, इसी आकांक्षा एवं आत्मविश्वास का अभाव। तब तक शिवाजी महाराज का अद्‌भुत पराक्रम तथा शौर्य गाथा सब ओर प्रसिद्ध हुई थी। उन्हें आज हो या कल दिल्लीश्वर होने की महत्त्वाकांक्षा है, यह समाचार भी सर्वश्रुत हुआ था। एक बार औरंगजेब को प्रत्यक्ष खत्म करने का काम हो गया, तो शेष हिंदु राजाओं का क्लैव्य

मिटना संभव होगा; उनका मनोधैर्य बंधेगा; तब उनसे भी सहायता मिलेगी, इसमें कोई संदेह नहीं। केवल शिवाजी को ही शोभा देनेवाली कल्पना एवं योजना थी वह।

किसी कारणवशात् वह योजना कार्यगत नहीं हो पायी तो? पुरंदर संधि के समय अपने मन में जो उद्देश्य था, वही पूर्ण कर सकते हैं। बादशाह से समूचे दक्षिण हिंदुस्थान की सूबेदारी दिलवाने का आश्वासन जयसिंह ने दे ही रखा था। हाल की परिस्थिति में तो सब दुश्मनों का एक साथ मुकाबला करना केवल असंभव था। दिल्ली का अपार सैन्य, सरंजाम, साधन–सामग्री, संपत्ति इनके बल पर आदिलशाही, कुतुबशाही आदि को तो डुबो सकते हैं। इसके अलावा, मेरे लिए जीतने में असाध्य बना जंजीरे का किला भी अपने कब्जे में देने की विनती कर बादशाह से उसे हासिल करना सुलभ बन जायेगा।

और महाराज के प्राणों की रक्षा के बारे में तो स्वयं जयसिंह ने ही सौगंध खायी थी। दिल्ली स्थित अपने पुत्र रामसिंह को भी जयसिंह ने उनकी सुरक्षा का कड़ा प्रबंध करने का आदेश दे रखा था। एक राजपूत का वचन था वह! बेशक, भरोसेमंद! इस पर भी घातकी औरंगजेब ने कोई विश्वासघात किया तो भवानी मुझे अवश्य मार्ग दिखायेगी। अपनी प्रतिभा ही मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करेगी। महाराज का आत्मविश्वास इतना दुर्दम्य था।

अलबत्ता, स्वीकृत ध्येय की पूर्ति के लिए उन दिनों की परिस्थिति में सबसे उत्तम, तथापि लोकोत्तर साहस एवं प्राणापायों से युक्त ऐसी महान कल्पना थी वह! शिवाजी महाराज के उद्दाम पराक्रम पर कलश स्थापित करने वाली कल्पना एवं योजना थी वह।

..... ५ .....

शिवाजी महाराज आगरा जा रहे हैं, यह खबर दावानल की तरह फैल गयी। राजगढ़ पर तो सबके अंतःकरण चर्रर हो गये। क्या वह वृद्धा जीजामाता अपने एकमेव पुत्र शिवा को औरंगजेब के यमपाशों में प्रत्यक्ष मृत्यु की गुफा में भेज पाएगी? इसी की प्रत्यक्ष परीक्षा अब होने जा रही

थी। शिवाजी के साथ नौ साल का संभाजी भी जायेगा, ऐसा तय हुआ। भावी महाराज के राजनीति की शिक्षा अब से ही प्रारंभ करनी थी। पहले से ही दहकते चिंता के चिताग्नि में, इस खबर से तेल उंडेलने जैसा हुआ।

आगरा जाने के पहले स्वराज्य की सुरक्षा एवं योगक्षेम की व्यवस्था लगानी थी। नेताजी पालकर के जाने के बाद प्रतापराव गुर्जर को सरसेनापति के नाते नियुक्त किया। अपनी अनुपस्थिति में स्वराज्य का कारोबार सम्हालने के लिए पेशवा मोरोपंत पिंगले, निलोजी सोनदेव एवं प्रतापराव गुर्जर इन तीनों की एक राज–प्रतिनिधि मंडली का गठन किया गया। इन तीनों की प्रमुख थी – जीजामाता। आगरा जाने के बाद भी सभी किलों का बंदोबस्त मजबूत रहना चाहिए, ऐसा आदेश महाराज ने सब किलेदारों को जारी किया। किसी भी परिस्थिति में धाँधली को कोई स्थान न दिया जाय, ऐसी चेतावनी भी सबको दे दी। एक बार स्वयं सब ओर जाकर, सकल प्रबंध सूक्ष्मता से परख कर स्थान–स्थान पर यथावश्यक अनुदेश भी दे दिये।

तब तैयारियाँ पूरी हुईं। प्रस्थान की तिथि तय हुई। ५ मार्च, १६६६ ई. को महाराज राजगढ़ से उतरे। गढ़ का गढ़ ही अपना हृदय पिरोकर उनकी शुभकामनाएँ करता खड़ा हुआ! इसके पूर्व भी मृत्यु के जबड़े से गुजरने के लिए महाराज प्रतापगढ़, पन्हालगढ़, इतना ही क्यों, राजगढ़ से भी बाहर गए थे। परंतु पीछे के सभी संकटों से भी आज की विपदा भयंकर थी, इसकी समझ सबको थी। महाराज के साथ चुनिंदा ३५० मालवा योद्धा तथा निराजी रावजी, बाजी सर्जेराव जेधे, हिरोजी फर्जंद, मदारी, महतर, कविंद्र परमानंद आदि सब आप्त स्वकीय भी निकल पड़े। माता का हृदय सबके सब सुख से वापस आयें, ऐसी मूक प्रार्थना करने लगा।

शिवाजी महाराज का आगरा प्रयाण सुगम एवं अतीव उत्कृष्ट रीति से संपन्न हो जाये, इसलिए सब प्रकार का प्रबंध बादशाह ने किया था। पूरे मार्ग के समूचे लंबाई पर स्थान–स्थान में उस व्यवस्था के निगरानी के लिए अपना खास प्रतिनिधि गाझी बेग को नामजद किया था। पर

निगरानी से भी बढ़कर जासूसी करना, यही उसका असली काम था। पूरे मार्ग में दिल्ली आलमगीर के शहजादे की हैसियत से ही शिवाजी की मेहमाननवाजी करने का हुक्म बादशाह ने जारी किया था। जयसिंह ने भी शिवाजी की सुरक्षा के लिए अपना विश्वासपात्र दूत तेजसिंह कछवाहा को साथ में भेज दिया था। महाराज का यह उत्तरी उड्डाण आगे बढ़ ही रहा था कि औरंगजेब की ओर से उन्हें शुभ–स्वागत का संदेश तथा खिलअत का नजराना मिल गया। "मुलाकात के बाद, बढ़िया दौलत–शोहरत से नवाज कर वापस भेज दिया जायेगा।" ऐसा औरंगजेब के उस पत्र के आखिर में लिखा था।

मुगल साम्राज्य की दक्खन की राजधानी औरंगाबाद में महाराज ने अपना पहला पड़ाव डाला। उस परम प्रतापी राजपुरुष का दर्शन करने हजारों आदमी–औरतें, बूढ़े–जवान सब शहर के प्रवेश द्वार पर ही खड़े हो गये। भव्य, अलंकृत हाथी पर चांदी की अंबारी; अंबारी पर फहराता भगवा ध्वज; अंदर वह तेजपुंज राजपुरुष; बगल में ही बाल राजकुंवर संभाजी राजे और आगे–पीछे तथा बाएँ–दाएँ शूर मराठा एवं राजपूत! हिंदु राजश्रेष्ठ का वह भव्य रूप देखकर दर्शनार्थियों की आँखें एवं अंतःकरण दोनों पुलकित हो उठी। विजयनगर हिंदु साम्राज्य के बाद, समूचे भारत भूमि में ही वैसा दृश्य पहली बार दिखाई दे रहा था।

लेकिन, औरंगाबाद का सूबेदार शेख शिकन खान शिवाजी की अगुआई करने नहीं आया। "शिवाजी, याने एक सामान्य मराठा सरदार का बेटा! उसका स्वागत करने मेरे जैसा मुगल सरदार कैसे जा सकता है? छीः! चाहे, तो वही आकर मुझे मिले।" उसी प्रकार खान ने महाराज को सूचना भी भेज दी। परंतु महाराज ने उसे पूरा नजरअंदाज किया। वे सीधे अपने मुकाम पर गये। उसकी खबर खान को पहुँची। वह हड़बड़ा गया; उसका घमंड एकाएक टूट गया। अपना यह शरारत भरा बर्ताव कल बादशाह को पता चला, तो अपनी खैरियत नहीं; इस डर के मारे उसका दिल काँप उठा। फौरन वह अपने सारे अधिकारियों को साथ लेकर, खुद ही शिवाजी के मुकाम पर दौड़ते गया। उन्हें तहे–दिल से अपना गौरव

अर्पित किया। दूसरे दिन महाराज ने भी उसके पास जाकर, उससे सौजन्य–भेंट की। तदनंतर शिवाजी महाराज भीमा, गोदावरी, ताप्ती, नर्मदा आदि नदियों में अवगाहन करते हुए उनके आशीष एवं मनौतियां माँगते आगे बढ़े।

उसी साल, अपने वालिद की मैय्यत के बाद औरंगजेब को तख्तोनशीन होने का 'नैतिक' अधिकार प्राप्त हुआ। उसके कई साल पहले ही अपने बीमार बाप को कैद कर सिंहासन पर अपना 'प्रत्यक्ष' अधिकार उसने हासिल कर ही लिया था, यह बात अलहदा! इसी कारण उसने अपना राज्यारोहण फिर से एक बार समारोहपूर्वक संपन्न किया। उसके बाद, अपनी पचासवीं सालगिरह इतनी धूमधाम से मनाने की सोची, ताकि सारी दुनिया मुख्यतः शिवाजी की आँखें चकाचौंध हो जाये। यही उसके दिल की अव्वल ख्वाहिश थी। इसीलिए उसने शिवाजी एक दिन पहले ही आगरा पहुँच जाये, ऐसी सूचना भिजवा दी थी।

प्रवास के निर्धारित योजना के अनुसार, शिवाजी महाराज आगरा से छः मील की दूरी पर एक दिन पहले ही पहुँच चुके थे। लेकिन वहाँ से आगे औरंगजेब के औदार्य एवं सत्कार की नौटंकी का वह अंक एकाएक खत्म हो गया और नाटक के एक नये दृश्य के लिए परदा ऊपर खींचा गया।

आगरा दरबार के तत्कालीन रस्मो–रिवाज के मुताबिक, मेहमानों के हैसियत के अनुसार बादशाह का प्रतिनिधि राजकीय अतिथि से भेंटकर उनकी अगुआई करता था, उन्हें नजराना पेश करता था; राज–पथों से उन्हें गाजे–बाजे के साथ जुलुस में बुला ले जाता था। शिवाजी के उत्तुंग व्यक्तित्व के लिए या तो बादशाह या उसके शहजादा को खुद आकर उनकी मेहमाननवाजी करनी चाहिए थी। बजाय उसके, कोई दो अनजाने शख्स स्वागत करने आये। स्वयं रामसिंह भी वहाँ न जा सके, इसके लिए बादशाह ने उसे ठीक उसी समय शहर के पहरे का काम दे रखा था। महाराज के निवास की व्यवस्था किसी साधारण धर्मशाला में ही की गयी थी। आखिर उन्हें बुला ले जाने आया भी तो एक सामान्य कारकून। ये

सब लक्षण देखते ही आगे दरबार में अपना किस प्रकार का स्वागत होगा; इसकी कल्पना महाराज को आ ही गयी। तथापि अपने आगामी योजना को किसी प्रकार की चोट न पहुँचे, इस दृष्टि से उन्होंने बड़ा ही संयम रखा। इस बीच, एक आकस्मिक गड़बड़ी भी हो गयी। शिवाजी को लिवा जाने का रास्ता भी चूक गया। तब तक औरंगजेब की सालगिरह का समारोह भी प्रारंभ हो चुका था।

ये सब घोर अपमान निगलते हुए शिवाजी महाराज स्थितप्रज्ञ योगी जैसे अपने उद्देश्य–पूर्ति में ही अपना मन स्थिर रखकर आगे बढ़ रहे थे। प्रसंगवशात्, वीर पुरुषों को भी अपने स्वाभिमान को विवेक के नियंत्रण में रखना पड़ता है। अंत में, कुँवर रामसिंह आ ही गया। उसने शिवाजी की अगुआई की। संभाजी सहित सबने आगरा के किले में प्रवेश किया। बादशाह का दरबार तब तक शुरू हो चुका था। इसलिए उन सबने शीघ्र ही अपने कदम दरबार की ओर बढ़ाये।

उस दिन के दरबार की शानोशौकत इंद्रसभा को भी फीका साबित करने वाली थी। परंतु बादशाह औरंगजेब के लिए, उस दरबार से भी महत्त्व की एक और बात थी – वहाँ आये मुख्य अतिथि के पराक्रमी चमत्कार सुनने के बाद, उसके लिए सबसे अहम बात एक ही थी खुद के जान की सलामती! उसके लिए उसने हर तरह का बंदोबस्त करवाया था। शिवाजी याने एक जादुई जिन्न, ४०-५० हाथ अंतर की छलांग लगाने वाला आदि कल्पनाएँ फैल चुकी थीं। अफजल खान, शाइस्ता खान इनकी उस हालात के बाद तो शिवाजी के बारे में कोई भी कल्पना विश्वासार्ह बन गयी थी। औरंगजेब तो अपनी खुद की छाया पर भी विश्वास न दिखाने वाला शकी स्वभाव का शख्स! बड़े हिसाब के साथ, शिवाजी की 'उस' छलांग से ऊपर (परे) ही हो, उतनी ऊँचाई पर उसने अपना तख्त बनवा लिया था। अपने पूरे जिस्म पर उसने लोहे का चिलखत पहना था। अपने पास अलग–अलग किस्म के पाँच हथियार रखवाये थे। इसके अलावा २,००० चुनिंदा अंगरक्षकों को भी तैयार रखा था। उस प्रसंग पर यदि एक पत्ता भी हिलता तो भी अपनी जान बचाकर भागने की मानसिकता में

औरंगजेब था, ऐसा प्रसिद्ध इतिहासकार डगलस ने लिख रखा है।

..... ६ .....

शिवाजी महाराज ने संभाजी, रामसिंह और दस सरदारों के साथ दरबार में प्रवेश किया। आते ही पल भर के लिए 'अतिथि' तथा 'आतिथेय' इन दोनों ने एक–दूसरे की ओर देखा। कैसा विलक्षण, अवर्णनीय क्षण! "यही है वह शिवा!', 'यही है वह औरंगजेब।' बादशाह के अपनी सुरक्षा के लिए किये सभी प्रबंध महाराज ने क्षणार्ध में ही भाँप लिये। हाय, इतनी दूर आने के बाद ऐसा होना! शिवाजी महाराज के मन पर पहला आघात हुआ। फिर भी महाराज शांत के शांत ही! विनम्रता से चलते हुए सिंहासन के सामने जाकर, अपना नजराना बादशाह को पेश किया। तीन बार कुर्निसात किया। शिवाजी महाराज के जीवन में ही वह सर्वाधिक मरणप्राय यातनाओं का क्षण होगा, इसमें क्या संदेह हो सकता है? तथापि यहाँ पर वे स्वयं–स्वीकृत अभिनय के केवल एक पात्र थे। शांत तो रहना ही था। सब कुछ सहना ही था। अपने सामने ही शिवाजी आया है, यह देखकर भी औरंगजेब कुछ नहीं बोला। मुखड़े के भाव–भावनाओं में कुछ बदलाव नहीं दिखाया। उसने शिवाजी की पूरी अनदेखी की।

तदनंतर, औरंगजेब की धूर्त योजना के अनुसार महाराज को शाही तख्त से बहुत दूर ले जाकर पीछे की पंक्ति में खड़ा किया। पंचहजारी मनसबदारों के लिए ही आरक्षित ऐसी तृतीय दर्जे की पंक्ति थी वह! दरबार खत्म होने के पहले, जसवंतसिंह तथा अन्य सरदारों को खिलअत–शिरपाव दिये गये। तथापि शिवाजी दरबार में आया है या नहीं, ऐसे उपेक्षा भरे माहौल में दरबार का कामकाज चलाया गया। अब दरबार समाप्त ही हो रहा था। तभी, शिवाजी के असली रूप का प्रस्फोट हुआ।

अपने मन की साहसी गुप्त योजना कार्यगत करने की कोई भी गुंजाइश अब रही ही नहीं, ऐसा महाराज को स्पष्ट दिखाई दिया। बादशाह की मर्जी से अन्य योजनाएँ सफल करने की उनकी कल्पना भी गलत साबित हुई। आगरा आगमन के क्षण से ही बादशाह द्वारा फेंके जा रहे अपमान के शूल एक के बाद एक उनके अंतःकरण को चीरते हुए

असह्य पीड़ा दे ही रहे थे। निराशा, अवमानना, क्रोध आदि से सह्याद्रि का सिंह क्षुब्ध हुआ। अब गुलामी का अभिनय, बस! निरर्थक!!

शिवाजी महाराज तत्काल रामसिंह की ओर मुड़कर बिजली जैसी ध्वनि में गरज पड़े, "रामसिंह, मेरे से भी आगे खड़े ये कौन हैं?" इस अभूतपूर्व गड़गड़ाहट को सुन के समूचा दरबार थर्रा गया! मुगल दरबार के रिवाजानुसार, बादशाह के सामने चलना हो या बोलना; सब कुछ दबे स्वर में होना चाहिए। यह सही है कि दरबार में अनेक राजपूत 'सिंह' थे। लेकिन, उनमें से किसी ने भी खुद ही गर्जना करना तो दूर असली शेर की गर्जना भी शायद ही सुनी होगी। शिवाजी की गड़गड़ाहट सुनकर रामसिंह डर ही गया। शिवाजी के पास दौड़ते आकर, दबे आवाज में कहा, "आप हैं महाराज जसवंतसिंह!" वह सुनते ही शिवाजी और भी क्रुद्ध हुए, "यह कहाँ का रिवाज है? कई बार मेरे बहादुर सिपाहियों ने इस रणछोड़ जसवंत की पीठ देखी है। क्या हमारा दर्जा ऐसे दरबारी से भी नीचे है?" रामसिंह के समझ में कुछ नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दें। उसने हर तरह से विनती–प्रार्थना की ताकि शिवाजी शांत हो जायें, परंतु सब व्यर्थ था।

और अधिक आवेश तथा आक्रोश से शिवाजी महाराज ने अपनी बात आगे बढ़ा दी, "बिना इस दरबार में आये भी मेरे पुत्र की पाँच हजार की मनसब है। मेरा नौकर नेताजी पालकर भी पंचहजारी सरदार है। और मुझे भी वही दर्जा? क्या मैं केवल इतने भर के लिए दक्षिण से इतना दूर आया हूँ? उनके एक–एक शब्द से पूरा दरबार थरथर काँप रहा था। यह क्या, दिल्ली दरबार में सैकड़ों सालों से अघटित ऐसी घटना अब हो रही है। अब क्या होगा? एक पल बाद क्या होगा? ऐसे अप्रतिभ बन कर सब लोग एक बार बादशाह की ओर, तो दूसरी बार शिवाजी की ओर आँखें फाड़–फाड़ कर देखने लगे।

शिवाजी महाराज का फूत्कार औरंगजेब के कानों तक पहुँचा। उसने मानो उसे कुछ पता ही नहीं ऐसा जतलाते हुए, रामसिंह को

बुलाकर कहा, "शिवाजी की आवाज ऊँची क्यों हुई है? पूछो उसे!"

रामसिंह की ओर देखते हुए महाराज ने सन्नाटा–भरा दरबार सुन सके, ऐसी तप्त आवाज में कहा, "आप, आपके पिताजी, बादशाह और सबको भली–भाँति पता है कि मैं कौन हूँ? फिर भी मुझे इतने नीचे के दर्जे में, इतनी दूर खड़ा किया है? आखिर, मुझे बुलाया ही क्यों?"

नजदीक आकर रामसिंह ने महाराज को शांत करने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। उसे झिझकारते हुए महाराज ने अपनी पीठ बादशाह की ओर दिखायी और एक किनारे बैठकर कहा, "मैं मर जाना पसंद करूंगा, फिर भी बादशाह से मिलने हरगिज नहीं आऊंगा। चाहे तो आत्महत्या कर लूंगा, लेकिन ऐसा अपमान नहीं सहन करूंगा। कहाँ, रामसिंह, दे दो तुम्हारी कटार!"

यदि कटार उनके हाथ लग जाती तो क्या हो? आत्महत्या कर लेने जैसे नरम दिल के इन्सान तो वे नहीं थे। शस्त्र–संधान में सिद्धहस्त ऐसे उनको औरंगजेब के कंठ पर उसका प्रयोग करना कोई कठिन बात नहीं थी। परंतु, रामसिंह ने कटार दी नहीं, कहीं शिवाजी सचमुच ही आत्महत्या न कर बैठे।

"शिवाजी नाराज हुए हैं," रामसिंह दौड़ते बादशाह के पास जाकर बोला। मुगल बादशाह के खिलाफ ऊँची आवाज में अपनी नाराजगी जाहिर करने वाले तथा उसकी ओर पीठ दिखा बैठने वाले पहले पुरुष थे महाराज। मुगल दरबार के इतिहास में ही ऐसी यह पहली अभूतपूर्व घटना थी। फौरन बादशाह ने अपने तीन सरदारों के हाथों नयी खिलअत–वस्त्रालंकार देकर शिवाजी के पास भेज दिया। उसे पहनकर दरबार में हाजिर होने के लिए भी कहलवा भिजवाया। तथापि तब तक महाराज का रौद्र रूप प्रकट हो चुका था। गुलामी की झूठी नौटंकी अब समाप्त हुई थी। दिल्ली दरबार में खड़े होकर समस्त हिंदु समाज को स्वाभिमान का पाठ पढ़ाने की आवश्यकता थी। वह नजराना देखते ही महाराज फिर गरज उठे, "मैं कभी नहीं बनूंगा, बादशाह का गुलाम! चाहे तो मुझे मार डालो! लेकिन यह खिलअत मुझे नहीं चाहिए।"

उन तीन सरदारों ने बादशाह को शिवाजी का उत्तर सुनाया। जरा सोचिए तो, औरंगजेब का गुस्सा कौन–सी मंजिल तक चढ़ा होगा। उसी समय रामसिंह आगे आया और बादशाह से मिन्नतें करने लगा, "शिवाजी पहाड़ों–जंगलों से आये हैं। दरबारी तमीज उन्हें मालूम नहीं। बादशाह सलामत उनको बख्श दें।" बादशाह ने अपने चेहरे पर गुस्से की या नाराजगी की एक शिकन तक नहीं दिखायी। उसने बड़े ठंडे दिल से रामसिंह से कहा, "शिवाजी को बुला ले जाओ। उसे दरबार के रस्मो–रिवाज बता दो। उसे समझा–बुझाकर फिर से दरबार ले आना।" इधर शिवाजी महाराज को क्रोध–निराशा के अतिरेक से मूर्छा आ गयी। उतने परम संयमी पुरुष को भी मूर्छा आने जैसी बात ही क्या हुई? उनके हृदयांतराल की परमोच्च आकांक्षा विफल नहीं होगी? इतने दूर आने के श्रम–साहस व्यर्थ हुए ऐसा ही तीव्र आघात उन्हें हुआ होगा। कुछ इतिहासकारों ने तो ऐसा लिखा है कि शिवाजी के समान धीर पुरुष का मूर्छित होना ही असंभव है; शायद दरबार में यत्कश्चित् सरदारों के साथ खड़े होने के बजाय मूर्छा का अभिनय किया होगा।

रामसिंह शिवाजी को दरबार से सीधे अपने महल पर ले गया। वहाँ शिवाजी को दिलासा देने के सब प्रयत्न विफल बन गये। तत्पश्चात्, शिवाजी महाराज उसी महल के आहाते में डाले हुए तंबुओं में निवास के लिए गये। अब आगामी कठिन प्रसंगों में शिवाजी के प्राणों की रक्षा करने का गुरुतर भार अपने ऊपर ही है, इसका स्मरण होते ही रामसिंह का ईमानदार राजपूत अंतःकरण काँप उठा।

शिवाजी के जान की हिफाजत की दृष्टि से औरंगजेब की मेहरबानी तथा रजामंदी हासिल किये बगैर दूसरा चारा नहीं है, यह रामसिंह को मालूम था। इसी कारण, हर दिन दरबार में हाजिर होकर कुर्निसात अदा करने के वास्ते शिवाजी को मनाने की हरसंभव कोशिश रामसिंह ने की। महाराज की सुरक्षा की दृष्टि से वह बहुत जरूरी है, यह भी उन्हें आग्रहपूर्वक बता दिया। आखिर, महाराज ने कहा, "इसके बाद मेरा पुत्र संभाजी दरबार जाया करेगा। कुछ दिनों के बाद मैं आऊंगा।" कुछ दिनों

के बाद औरंगजेब ने रामसिंह को पूछा, "क्या रिवाज के मुताबिक शिवाजी हर दिन दरबार में हाजिर होता है?" रामसिंह ने जबाव दिया, "नहीं, उन्हें बुखार आया है, वे नहीं आ पायेंगे।" वह स्वाभिमान का ज्वर था।

उधर दरबार समाप्त हुआ। महाराष्ट्र के रणमैदान में महाराज के सैनिकों द्वारा मार खाकर भागे अनेक सरदार वहाँ थे। भरे दरबार में हुए अपने अपमान का बदला लेने की फिराक में जसवंतसिंह था। पीछे कभी सिंहगढ़ के युद्ध में भुगता हुआ पराभव का कटु अनुभव भी उसे सता रहा था। वजीर जाफर खान भी बदले की आग में झुलस रहा था। कौन था वह? शाइस्ता खान की बहिन का खाविंद। तो फिर उसका गुस्सा जायज ही था। शिवाजी पर अंगारे उगलने वाली एक और थी, खुद बादशाह की बहिन – जहाँआरा बेगम। उसे क्यों था शिवाजी से द्वेष? सूरत के जकात की अदायगी से ही बादशाह उसे सालाना एक लाख रुपये अदा करता था, 'तैनात' के रूप में उसके जाती खर्चे के लिए। हाल ही में इसी डकैत शिवाजी ने सूरत को लूटकर, जलाकर खाक में मिला दिया था। इसी कारण उस शहजादी की 'तैनात' बंद होकर, उसकी शानो–शोहरत मटियामेट हो गयी थी। शिवाजी के मारे 'संत्रस्त' वे तीनों मिलकर एक अनुरोध लेकर बादशाह से मिलने गये। उन्होंने उसके गुस्से की आग में और तेल उँड़ेला, "दरबार में इस शिवाजी के घमंडी तथा बेअदबी के बर्ताव के कारण बादशाह की बड़ी बेइज्जती हुई है। मुगली तहजीब की तौहीन हुई है। फिर भी आलिजाह इतने ठंडे दिल से काम ले रहे हैं। दूसरा कोई होता तो, उसे मुआफ नहीं किया होता। उसे कुछ–न–कुछ सजा फरमानी ही चाहिए।"

औरंगजेब को ऐसे मामलों में औरों से सलाह की जरूरत ही नहीं थी। बिना प्रयास, अपने आप ही हाथ लगे जिगरी दुश्मन शिवाजी को फिर से उसके ही मुल्कों में आजाद छोड़ देने के लिए औरंगजेब सियासती नजरिए से कोई बचकाने फितरत वाला शख्स नहीं था। तथापि खुद के ऊपर कोई भी इलजाम आये बगैर ही शिवाजी को किस प्रकार खत्म किया जाये, इसके बारे में अब वह पातालयंत्री गहराई से सोचने लगा।

उसी समय शिवाजी महाराज भी, "मुझे वचन देकर, इतने दूर बुलाकर अब आप का बादशाह फरेब कर रहा है।" ऐसा सबके सामने जाहिर तौर पर बोलने लगे। अपनी ही राजधानी में, अपनी ही इज्जत कौड़ी के मोल से तौलने वाली यह बात भी औरंगजेब के कानों तक पहुँची। हरेक के मुँह में यही बात। बादशाह से दगा; आलमगीर से फरेब। अब तो औरंगजेब का गुस्सा हद से गुजर गया।

आखिर, औरंगजेब ने फैसला कर ही लिया बगैर किसी और देरी के शिवाजी को खत्म करना। उसे आगरा के किलेदार – रादअंदाज खान के हवाले करने का फरमान शहर के कोतवाल सिद्दी फुलाद खान को औरंगजेब ने जारी किया। यदि किसी को कत्ल कर के चील–कौवों को खिलाना हो, तो उसे रादअंदाज के हवाले करने का रिवाज था। कितनी खौफनाक आफत! अब क्या होगा? क्या स्वराज्य की पुण्याई समाप्त हुई थी? क्या जीजाबाई को अपनी उर्वरित आयु पुत्रहीन होकर बितानी पड़ेगी? क्या उसके पुत्र पर से देवी भवानी का कृपाछत्र टूट गया? ओह!

तभी न जाने, कैसे यह खबर रामसिंह को पहुँची। अपने पिता का याने एक राजपूत का शिवाजी को वचन दिया गया है; मुझे भी पिताजी की आज्ञा है कि शिवाजी का बाल भी बाँका न हो। समाचार मिलते ही रामसिंह बिथर गया। कड़े इरादे से उठा। सीधा मीरबक्ष मोहम्मद अमीन खान के पास गया। अमीन खान का दरबार में खास वजन भी था। रामसिंह ने भावोद्वेग से अपनी आखिरी बात कह ही डाली, "शिवाजी को खत्म करने की मंशा से ही बादशाह ने वह फरमान जारी किया है। तथापि उनका एक बाल भी बांका न हो ऐसी जागरूकता बरतने का मुझे मेरे पिताजी का आदेश है। इसलिए शिवाजी की जान को कोई भी अपाय होने से पहले मुझे ही मार डालो। उसके बाद बादशाह चाहे जो करें।" रामसिंह की इन बातों का अर्थ क्या हो सकता है, यह अमीन खान ने फौरन भाँप लिया। रामसिंह पर अपना खास मोहब्बत भरा नजरिया रखने वाला बड़ा अक्लमंद खान था वह। फौरन बादशाह के पास जाकर उसने रामसिंह का

मंतव्य बता दिया।

वह सुनकर औरंगजेब भी डर गया। रामसिंह के बातों का अर्थ सीधा था, "जीवित रहते शिवाजी को हाथ लगाने नहीं दूंगा।" औरंगजेब के सामने बड़ा पेचीदा प्रसंग खड़ा हुआ। यदि अब यहाँ शिवाजी को कुछ किया गया, तो वहाँ मिर्जा राजा जैसे तजुर्बेकार, बुजुर्ग, बहादुर सेनापति को ठेस पहुँचेगी। बाद में दूर दक्खन में पूरी फौज के साथ वहाँ आप और यहाँ यह बेटा दोनों मिलकर मेरी नींद हराम कर सकते हैं। अब तो अपना इरादा बड़ी चालाकी के साथ पूरा करना होगा। गड़बड़ की तो काम बिगड़ेगा, इसलिए औरंगजेब ने बड़ी ही धूर्त चाल चली, "शिवाजी के बंदोबस्त का जिम्मेदार खुद रामसिंह ही होगा। शिवाजी भाग नहीं जायेगा, इसकी जमानत खुद रामसिंह ही देगा।" रामसिंह ने वह मान लिया। तत्कालतः ही क्यों न हो, महाराज को मृत्यु से बचा लिया था।

रामसिंह ने घटित सब घटनाएं उसी रात ब्योरेबार शिवाजी को बता दी। उसी दिन महाराज का वध होने जा रहा था, यह सुनते ही सभी साथियों के शरीरों पर रोमांच खड़े हुए। दिल्ली आने के पश्चात् महाराज तो रामसिंह को अपना भाई ही मानते थे। अब तो उसकी वह हिम्मत देखकर उसके लिए उनका प्यार–दुलार उमड़ आया।

रामसिंह ने हस्ताक्षर कर जामीननामा बादशाह के सुपुर्द किया। वह अपने हाथ में पड़ते ही, औरंगजेब ने रामसिंह को कहा, "शिवाजी और तुम दोनों मिलकर काबुल की मुहिम पर जाओ। उसके लिए एक अच्छा–सा मुहूर्त तुम ही तय करो।" तब वहीं खड़े रादअंदाज खान ने बड़ी सूचकता से अपनी बात भी जोड़ ही दी, "आपके साथ मदद के लिए मुझे भी जाने का हुक्म हुआ है।" अर्थात् काबुल मुहिम के बीच में ही मौका देखकर शिवाजी को कत्ल करने की साजिश। दुश्मनों ने ही शिवाजी को मारा, ऐसा सब ओर प्रचार करना तब बड़ा आसान हो सकता था। रामसिंह ने इस भीषण षड्यंत्र को तुरंत भाँप लिया। तथापि अपनी मन की भावनाएँ वैसे ही दबाकर रखते हुए, "ठीक है।" ऐसा कहकर, रामसिंह वहाँ से निकल पड़ा।

एक नया संकट और एक नयी चिंता रामसिंह को अब खाने लगी। अपने ऊपर वादा–फरामोशी के इल्जाम से बचने की दृष्टि से औरंगजेब ने मिर्जा राजा को एक पत्र भेजकर पूछा, "मेरे जानकारी के बाहर तुमने शिवाजी को ऐसे कौन–से आश्वासन दिये हैं?" और मिर्जा राजा से उसका जवाब आने तक 'काबुल–मुहिम' आगे ढकेल दी अर्थात् महाराज के प्राणों को अंदाजन एक और महीने की मोहलत मिल गयी।

"काबुल योजना" शिवाजी को भी मालूम हो गयी। अब आगरा से शीघ्रातिशीघ्र पार होना चाहिए अन्यथा जान से ही हाथ धोना पड़ेगा, यह उन्होंने जान लिया। तथापि गुप्त रीति से पलायन करने में सब से बड़ी अड़चन थी – रामसिंह के जामिननामा की। बादशाह से ही सीधी परवानगी हासिल हो सकती है क्या, इसके बारे में भी महाराज ने गहराई से सोचा। बादशाह को मनाने के वास्ते अमीर तथा खुद जाफर खान को भी बड़ी भारी रकम एवं वस्त्रालंकार दिये गये। एक बार महाराज जाफर खान से मिले भी। परंतु कुछ हासिल नहीं हुआ, मुलाकात के बीच ही खान की बेगम याने खुद शाइस्ता खान की बहिन से ही खान को कहलावा आया, "अफजल खान का फटा पेट और मेरे भाई शाइस्ता खान की कटी उंगलियाँ याद करो। अपनी बातें खत्म करो और शिवाजी को जल्दी वापस भेज दो।" शिवाजी अपने से मुलाकात करने आ रहा है, ऐसी इत्तला मिलने के समय से ही भयभीत बने खान ने बेगम से यह सलाह आने के बाद तो मुलाकात ही खत्म की। उल्टे उसने शिवाजी को ही नजराना, खिलअत देकर वापस भेज दिया। उसने महाराज की अर्जी बादशाह तक पहुँचाने के अलावा कुछ नहीं किया। महाराज तो बादशाह को अर्जियों के बाद अर्जी भेज ही रहे थे। परंतु कुछ असर नहीं था। "चाहे तो संभाजी को यहाँ रख लो, पर मुझे दक्खन में बीजापुर के खिलाफ लड़ने भेज दो। बादशाह के प्रति मेरी निष्ठा सदा के लिए अभंग है।" ऐसा सुझाव भी दिया। शिवाजी का वह पत्र देखने के बाद तो बादशाह का शक मजबूत हुआ कि शिवाजी किसी भी बहाने दक्खन भाग जाने की कोशिश कर रहा

। फौरन उसने शिवाजी पर पहरा और भी कड़ा कर दिया। 'स्थानबद्ध', किसी के साथ मिलना नहीं, जुलना नहीं। रामसिंह के महल पर भी जाना हीं। एक दिन बादशाह के फरमान के मुताबिक ही शिवाजी पर पहरा ने कोतवाल सिद्दी फुलाद खान ने अपना डेरा वहाँ डाल दिया। उसके ड़सवार तथा तोपखाने के लोग एकाएक शिवाजी के डेरे की मोर्चाबंदी र खड़े हुए। वह देखते ही महाराज को अपना भविष्य कराल अंधकारमय लगने लगा। स्वराज्य के अस्तित्व की चिंता उनके हृदय को जलाने गी।

तब रामसिंह फिर एक बार दृढ़ता से खड़ा हुआ। उसने "शिवाजी के रक्षा का जिम्मा मेरा है। उसके लिए मेरा लिखित जामिननामा भी है", सा फुलाद खान को साफ–साफ बता दिया और खान के पहरों के बीच ी महाराज के अंगरक्षा के लिए अपने विश्वासपात्र योद्धाओं को खड़ा किया। उधर, मिर्जा राजा को उसने शिवाजी के साथ कौन–कौन से वादे किये हैं, यह पूछने वाला औरंगजेब का वह पत्र पहुँच गया। उसके जवाब में जयसिंह ने 'पुरंदर–समझौते' के मुद्दे ही फिर से एक बार लिख के भेज दिये। उससे ज्यादा कोई वचन शिवाजी को हमने नहीं दिया, ऐसा कहकर वह खिसक गया।

कुछ दिनों में ही जयसिंह को शिवाजी के गिरफ्तारी की खबर भी पहुँची। उसके मन को भारी आघात हुआ। शिवाजी के प्राणों की रक्षा की चिंता उसे खाने लगी। तुरंत उसने बादशाह को एक अर्जी भेज दी, "शिवाजी को गिरफ्तार करने या मार डालने से हमें कोई फायदा नहीं है। क्योंकि यहाँ पर नहीं होते हुए भी उसके राज्य का कारोबार बड़े सुचारु रूप से चल रहा है। शिवाजी के साथ प्यार–मोहब्बत से पेश आकर दक्खन में भेज देने से दिल्ली शहंशाही की हिफाजत करना आसान होगा तथा दरबार के मुलाजिमों द्वारा दिया हुआ वचन दरबार की ओर से कितनी ईमानदारी से रखा जाता है, इसका यकीन भी उसे आयेगा।"

लेकिन कुछ ही दिनों में दक्खन में मुगली कारोबार की हालत बिगड़ गयी। वैसी परिस्थिति में शिवाजी का दक्षिण में आना अपायकारी होगा, ऐसा सोचकर जयसिंह ने बादशाह को एक और पत्र लिखा। शिवाजी को आगरा में हिफाजत से रख लेने की प्रार्थना उसमें थी। रामसिंह को भी, "राजपूतों का वचन–मान रखो" ऐसा बार–बार पत्र लिख रहा था। उधर राजगढ़ पर, भय–आतंक के दबाव से जीजाबाई का हृदय निचुड़ रहा था। सब के अंतःकरणों में भवानी देवी की प्रार्थना निरंतर चल रही थी। तथापि स्वराज्य के कारोबार में रत्ती भी ढिलाई नहीं आयी थी।

दक्षिण के सब दुश्मनों ने तो राहत की साँस ली थी। उफ्, इस शिवाजी की परेशानी तो हमेशा–हमेशा के लिए खत्म हुई। त्रयस्थ निरीक्षकों के उन दिनों के पत्रों में यह बात स्पष्ट दिखती है।

..... ७ .....

इधर, शिवाजी और उनके साथियों का हृदय चिंताग्नि में झुलस रहा था। महाराज के चारों ओर नंगे हथियार लिए पठानी साँपों का तगड़ा पहरा था। प्रत्यक्ष कालसर्प की ही छाया थी वह! डसने की ताक में झूल रहा था उसका फन! किसी भी क्षण डस सकता था।

वैसी जहरीली छाया में भी शिवाजी महाराज के शतमुखी प्रतिभा की आभा नहीं धुँधलायी। इसके विपरीत उस अंधकार को चीरते हुए वह चमक उठी। एक आशा की किरण फूट पड़ी। एक कल्पना का स्फुरण हुआ। अद्‌भुत–रम्य योजना! अतीव सावधानी तथा साहस से भरी–पूरी योजना। उसमें यदि लेश मात्र की भी गड़बड़ी हुई, तो क्या होगा यह कहने की आवश्यकता नहीं। योजना कितनी भी सतर्कता से क्यों न बनी हो, आखिरी भरोसा भवानी माता का ही था।

एक दिन एकाएक शिवाजी महाराज के चेहरे पर म्लानता, निराशा दिखाई देने लगी। अपने साथ आये मराठा सैनिकों को उन्होंने बड़े उद्वेग से आदेश दिया, "जाओ, तुम सब लोग यहाँ से निकल जाओ।" बेचारे, उन निष्ठावंत अनुयायियों को कुछ भी समझ में नहीं आया। रामसिंह भी समझ

नहीं पाया। महाराज हताश हुए हैं, इसीलिए ऐसी जुगुप्साभरी बातें कर रहे हैं, ऐसा ही रामसिंह को लगा। शिवाजी को पता लगाए बिना मराठा सैनिकों को अपने महल के पिछवाड़े में ठहरने की व्यवस्था उसने कर दी थी। बेचारा, उसे महाराज के अंतरंग का गूढ़ कैसे पता चलता? तुरंत फुलाद खान के जरिए शिवाजी की एक और अर्जी औरंगजेब को गयी, "मेरे साथ आये सब सैनिकों को दक्खन लौटने की इजाजत दीजिए।" औरंगजेब जैसे चालाक एवं चाणाक्ष को भी इस योजना का गूढ़ क्या होगा, यह समझ में नहीं आया। उसने अपनी साजिश को सफल बनाने की दृष्टि से यह अनुकूल ही है, ऐसा सोचा। फौरन इजाजत दे दी। फिर भी उनको तुरंत जाने नहीं दिया। पूरे ४८ दिन उनको रोके रखा और असल में निराश होकर ही शिवाजी ने यह फैसला किया है, इसका यकीन होने के बाद ही उन सब को जाने दिया। औरंगजेब याने फरेब, दगा, धोखा, शक और साजिश इन सब का जीता–जागता पुतला ही था। लेकिन उसके मस्तिष्क से भी प्रभावी प्रतिभा उसका सामना कर रही थी। इस प्रकार आगरा से वापस आने वालों में, आगे चलकर संस्कृत में 'शिवभारत' की रचना करने वाले, कवींद्र परमानंद भी एक थे।

सेना के वापस जाने के बाद कुछ ही लोग महाराज के साथ बच गये। महाराज के आगामी योजना के लिए अपार धन की आवश्यकता थी। वह महाराज ने रामसिंह से प्राप्त कर उतनी ही धनराशि रायगढ़ के राजकोष से मिर्जा राजा को परस्पर दिलवाने का प्रबंध कराया था।

एक और नाजुक बंधन से भी महाराज अपने को छुड़ाना चाहते थे, वह था – रामसिंह का जामिननामा। फुलाद खान द्वारा लगाये गये पहरे के बंधन से भी रामसिंह के जमानत का बंधन महाराज के लिए अधिक पीड़ादायक था। कारण, उसमें उनके मान एवं प्राणों का प्रश्न छिपा था। उस जमानत के मान की रक्षा करूंगा, ऐसा ईश्वर को साक्षी मानकर महाराज ने अभिवचन दिया था। महाराज ने बादशाह को एक और पत्र लिखा, "मुझे किसी दूसरी जगह पर रखें। यहाँ से मुझे हटाइए।" लेकिन बादशाह का जवाब था, "मेरा सब से अधिक विश्वासपात्र व्यक्ति रामसिंह

है। तुम्हारा उसके महल में ही ठहरना बेहतर होगा।" अब महाराज रामसिंह के ही पीछे पड़ गये। "अपना दिया हुआ जामिननामा वापस ले लो। मेरा कुछ भी क्यों न हो।" परंतु रामसिंह का महाराज पर प्रगाढ़ प्रेम था। इसलिए अपनी ओर की सुरक्षा व्यवस्था रोकी गयी, तो कुछ भी हो सकता है। यही डर उसे था। शिवाजी के ये विचार हताशा से उत्पन्न हुए होंगे, ऐसा उसने सोचा। बेचारा, सीधा स्वभाव वाला राजपूत जो ठहरा।

उसी समय, औरंगजेब ने खुद ही दक्खन की मुहिम पर जाने का अपना इरादा जाहिर किया अर्थात् यहाँ शिवाजी को रामसिंह की जिम्मेदारी पर छोड़ कर ही। औरंगजेब को जयसिंह से एक पत्र आया, "शिवाजी की आजादी और जान को खतरा है। ऐसी खबर यहाँ फैल गयी, तो यहाँ के सब मराठा सरदार बीजापुर के साथ मिल जायेंगे। अभी हमारी हालत बड़ी खराब है।" उसी प्रकार उसने रामसिंह को भी बता दिया, "तुम्हारी जिम्मेदारी पर शिवाजी को छोड़ बादशाह दक्खन की मुहिम पर आना चाहते हैं। उसमें तुम मत फँसो। आलमगीर यदि दक्खन में आ ही रहे हैं, तो तुम भी उनके साथ चले आओ। अब शिवाजी की जिम्मेदारी हरगिज नहीं उठाना।" परंतु किसी गुमनाम वजह से बादशाह ने अपनी प्रस्तावित दक्खन–मुहिम वहीं पर छोड़ दी।

पिता के पत्र का अर्थ झट से रामसिंह की समझ में आ गया। शिवाजी के जमानत के झमेले से छुटकारा पाना ही बेहतर होगा, ऐसा उसे भी लगा। उसके मुताबिक, उसने औरंगजेब को एक अर्जी भी दे दी और बादशाह भी मान गया। तथापि रामसिंह ने शिवाजी के सुरक्षा के लिए रखे अपने राजपूत सरदारों का पहरा हटाया नहीं। शिवाजी की अर्जियाँ लगातार औरंगजेब को जा रही थी, "मैं सर्वसंग परित्यागी बनकर संन्यास लेना चाहता हूँ। काशी जाने की अनुमति दीजिए।" औरंगजेब ने उसका जवाब भी दिया, "तुम्हें फकीर होना ही है, तो हम मना नहीं करेंगे। फकीर बन कर तुम इलाहाबाद के हमारे किले में ही ठहरो।" तब से जीवन के बारे में आये उदासीनता–जुगुप्सा के सारे लक्षण शिवाजी में दिखाई देने लगे।

इसी समय, आगरा में फिदा–ए–हुसैन नामक एक सरदार अपना महल बनवा रहा था। उसका काम अब पूरा होने ही वाला था। उसी के बारे में औरंगजेब को खास दिलचस्पी थी। उसके ज़ेहन में एक विकराल साजिश रची जा रही थी। इस शिवाजी को उस नयी इमारत में ले जाकर जिंदा दफना देने की। मर जाने पर, शिवा के खोपड़ी को चांदी के संदूक में रखवाने की तैयारी करने के लिए उसने एक गुप्त आदेश भी दे रखा था। इतनी सब योजनाएं बड़ी चोरी–छिपे ही चल रही थीं।

इधर, महाराज की योजना भी गुप्त रूप से चल रही थी। महाराज ने आगरा दरबार एवं शहर के बड़े–बड़े अमीनों, सरदारों के साथ 'प्यार–मुहब्बत' के रिश्ते पक्का करना शुरू किया। उन सभी 'नगर–देवताओं' को अमूल्य वस्त्र–अलंकार, नजराना आदि देकर वे उनका गौरव करने लगे। इससे महाराज के बारे में सब ओर अपनत्व का माहौल बनने लगा। दक्खन के इस मराठा राजा का सौजन्य, औदार्य देखकर सब को बड़ा आनंद हो रहा था। शिवाजी अनेक बड़ी–बड़ी हस्तियों के चहेते एवं जिगरी दोस्त बन गये।

..... ८ .....

और एकाएक शिवाजी महाराज की तबीयत बिगड़ गयी। बड़ी जोरों की खाँसी शुरू हो गयी। साथ में ही असहनीय पेट दर्द। शहर के नामी–गिरामी हकीम–वैद्य आये। औषधोपचार प्रारंभ हुआ। धीरे–धीरे महाराज के बीमारी की खबर रामसिंह, फुलाद खान, वजीर, सब अमीनों व सरदारों और आखिर खुद बादशाह तक पहुँची। आते–आते बीमारी बढ़ती ही गयी। महाराज का अभिनय कौशल देखकर नजदीकी सब लोग अचंभित हुए। बीच–बीच में फुलाद खान भी आने लगा; महाराज को देखकर जाने लगा। एक सोलह–सत्रह साल का लड़का महाराज की खास सेवा–सुश्रुषा कर रहा था। छोरा मुसलमान का, नाम था – मदारी मेहतर। महाराज पर उसके भक्ति की तुलना ही नहीं थी। चालाक भी उतना ही! महाराज उसे राजगढ़ से अपने साथ लाये थे।

हकीम–पंडित सब आये, गये। तथापि किसी के भी औषध से महाराज की बीमारी हटी नहीं। अब बचा हुआ मार्ग एक ही – ईशकृपा। वह हासिल करने फकीर, गरीब, ब्राह्मण, अन्य बड़ी–बड़ी हस्तियों आदि को प्रभु के नाम पर मिठाइयाँ प्रसाद के रूप में भेजना चाहिए; उनके आशीष प्राप्त करने चाहिए। उनके आशीर्वाद के पुण्य से अपनी बीमारी दूर होगी, ऐसी एक आखिरी आस लगाये महाराज बैठे थे। अपने आदमियों के जरिए ही मिठाई लाने एवं वितरित करने की व्यवस्था महाराज ने की थी। इस में बड़ी श्रद्धा से रामसिंह ने भी 'हाँ' भरी। बड़े–बड़े बंबू के आधार पर ढोकर लाने–ले–जाने वाले वे बाँस के पिटारे देखकर फुलाद खान ने पूछा, "यह क्या है?" उत्तर आया, "महाराज की बीमारी दूर करने के लिए बुजुर्गों, फकीरों को मिठाई।" "ठीक है," खान ने कहा। औरंगजेब को भी इसकी खबर मिली। वैसे पाताल–यंत्री को भी इसके बारे में कोई शक नहीं हुआ। क्या हुआ, है तो भी वह आखिर खैरात ही, चलने दो; अब और कितने दिन, ऐसा सोचकर वह चुप रहा। महाराज का पुण्य–प्राप्ति का कार्य निर्बाध रूप से चल रहा था। बाँस के उन पिटारों की लंबाई, ऊँचाई और चौड़ाई सब कुछ नपा–तुला था। मानो उनके आकार–प्रकार पर ही 'पुण्य' का प्रमाण भी अवलंबित था। थोड़ा भी कम–अधिक होता तो भी महाराज के 'पुण्यप्राप्ति' में भंग आ जाता। शायद वह ठीक भी था। फुलाद खान वह सब बाहर निकालने से पहले देखकर ही छोड़ता था।

प्रतिदिन मिठाई के पिटारे फुलाद के जाँच–पड़ताल के बाद ही बाहर जाने लगे। कवींद्र परमानंद के जाते समय महाराज ने उसे रत्न, मोती, हाथी, घोड़ा, अन्य अमूल्य वस्तुएं देकर भेजा – वह सब पुण्यसंचय के लिए, बीमारी दूर हो, इसीलिए था।

पिटारों का आवागमन इसी प्रकार अनेक दिनों तक चलता ही गया। मिठाई के अलावा इन पिटारों में अन्य कुछ भी नहीं रहता, इसके बारे में पहरेदारों को पूरा यकीन हो चुका। महाराज को भी अल्प आरोग्य–लाभ दिखाई देने लगा। लेकिन एक दिन अचानक उनकी तबीयत बहुत ही बिगड़ गयी। सेवासुश्रुषा भी बढ़ गयी। अंदर से बाहर, बाहर से अंदर

निराजी पंत, दत्ताजी पंत आदि की दौड़–धूप बड़ी जोरों से चली। काम के निमित्त वे एक–एक कर बाहर गये। परंतु वापस लौटे नहीं। न जाने, सब के सब कहाँ गायब हुए। बाद में दो दिन बीत गये।

१७ अगस्त, १६६६ ई. की सुबह होते ही महाराज के मुख से भवानी का जाप अखंड चल रहा था। उधर, फिदा–हुसैन का 'मृत्यु–महल' भी बनकर तैयार हुआ था। दूसरे दिन ही याने १८ अगस्त, औरंगजेब के तय किये हुए दिन को ही शिवाजी को उस महल में 'स्थानांतरित' करना था।

१७ अगस्त, १६६६ ई. हिंदुराष्ट्र के भाग्यविधाता के जीवन–मरण का निर्णय करने का दिन। वह छोरा, मदारी मेहतर महाराज के पैर दबा रहा था। नौ साल का संभाजी भी अत्यंत सावधानी एवं गंभीरता बरत रहा था। कुछ भी हुआ, तो भी वह शिवशावक था। दोपहर हुआ। फुलाद महाराज के पास आया; उनके स्वास्थ्य की पूछताछ की। अब काहे का आरोग्य? अब कुछ घंटों का ही सवाल था। आसपास के सभी लोग उस आखिरी क्षण के दुःख में ही तो डूबे थे। शिवाजी अब मरने ही वाला है, ऐसा सोचते खान लौट गया। हर दिन की तरह, उस दिन भी पिटारे अंदर आये। पलंग पर 'सख्त' बीमारी से सोये महाराज झट से ऊपर उठे। उनमें केवल दो पिटारे ही खाली थे। उनकी ओर महाराज और संभाजी खिसक गये। भीषण मानसिक खींचातानी का पल। किसी ने यदि देखा तो! पलक झपकने से पहले ही महाराज ने अपने उंगली की अंगूठी निकाल कर हिरोजी फर्जन्द के उंगली में डाल दी। खाली पिटारों के ढक्कन खोले गये। एक में महाराज बैठ गये, दूसरे में संभाजी। भोइयों ने पिटारे उठाये। यह सब कुछ निमिषार्थ में हो गया। अब आगे सब माँ भवानी की कृपा।

हिरोजी फर्जन्द पूरी शाल ओढ़कर महाराज के पलंग पर सो गया। महाराज की अंगूठी वाला हाथ मात्र बाहर था। मदारी मेहतर यथाप्रकार 'महाराज' के पैर दबाते बैठ गया।

बाहर निकल पड़ी पिटारों की कतार। बड़ा कातर पल! भीषण भी! महाराज तथा उनके साथियों का हृदय किस वेग से धड़क रहा होगा कल्पना करना भी मुश्किल है।

यथा प्रकार पहरेदारों ने रोका। "ठहरो।" अब क्या होगा? माँ जगदंबा, तू ही रक्षा कर, सब हृदयों ने मूक प्रार्थना की। सब देवी देवता, ऋषि–मुनिगण क्षण भर में ही उधर दौड़कर आये। स्वराज्य के भविष्य को, हिंदुराष्ट्र के अस्तित्व को ही मानो 'ठहरो' ऐसा कहा गया था। पठान पहरेदारों ने पिटारे खोलके देखना शुरू किया। एक देखा, दूसरा देखा यथापूर्व उसमें मिठाई ही थी। इसी तरह अब कितना देखें? सभी पिटारे ऐसे ही देखे तो? कैसी घोर घटिका? इतने में "ठीक है, जाने दो", खान का हुक्म सुनाई दिया। मानो उसके मुख से देवी भवानी का ही आशीर्वाद आया। खान की 'जाने दो' की आज्ञा ही हिंदुराष्ट्र के लिए 'जीने दो' का आदेश बन गयी।

स्वातंत्र्य–सूर्य को ग्रस्त ग्रहण क्षण भर में लुप्त हुआ। औरंगजेब जैसे छद्मी–कपटी के मृत्युजाल से, नहीं; नहीं, साक्षात् मृत्यु के जबड़े से ही शिवाजी महाराज एवं संभाजी केवल चौबीस घंटे पहले पार हो गये।

वहाँ औरंगजेब दूसरे दिन की अपनी योजना में मगन था। पिटारे आगरा से दूर गये, बहुत दूर; जहाँ पहुँचना था वहीं गये। शाम ढली, रात का अंधेरा छाने लगा। पहले से ही वहाँ पर स्वराज्य के सरन्यायाधीश निराजी पंत, दत्ताजी पंत राह देखते खड़े थे। भोई लोग दो पिटारे लेकर आ रहे हैं, यह उन्होंने देखा। अहा, क्या आनंद! अब एक–एक पल भी अमूल्य। पिटारे रखे गये, ढक्कन खोले गये। अंदर बैठे लोगों ने छलांग मारी; वे बाहर आये। वहाँ तैयार खड़े घोड़ों पर बैठ गये। मानो अश्वों ने भी उनके शीघ्रगमन की आतुरता पहचान ली हो, वे फुर्ती से कूदते–फाँदते दौड़ पड़े। सामान्यतः मध्य रात्रि के समय तक वे सुरक्षित मथुरा पहुँच गये। वहाँ के कृष्णाजी त्रिमल नामक एक धर्मनिष्ठ ब्राह्मण के साथ पहले से ही संपर्क बढ़ाया था। सब वहाँ उतर गये। महाराज ने संभाजी को कृष्णाजी के हाथ में सौंप दिया। हजारों मीलों का कठिन प्रयाण करने की उसकी अभी आयु और आदत नहीं थी। पिता और पुत्र दोनों के एक साथ रहने में धोखा भी अधिक था। स्वराज्य में पहुँचने के बाद योग्य समय देखकर हम आपको कहलवा भेज देंगे; तब आप बेटे को साथ लाकर छोड़

जाइएगा; ऐसा महाराज ने कृष्णाजी त्रिमल को सूचित किया। उन्होंने भी खतरों से भरी वह जिम्मेदारी बड़े हर्ष से स्वीकार की। क्षण का भी विलंब किए बगैर महाराज तथा अन्य साथियों ने अपना भेष बदला और वहाँ से निकल पड़े।

इधर पिटारे निकलते ही महाराज के स्थान पर हिरोजी सो गया। द्वापरयुग में श्रीकृष्ण के स्थान पर रोहिणी सोयी थी ना, वैसे ही! मदारी ने पैर दबाते रहने का काम निरंतर जारी ही रखा था। "क्यों आज बहुत देर तक सोए हैं, ना?" ऐसा पूछने वाले गश्त के सिपाहियों को रोती सूरत से उत्तर देता रहा, "महाराज की बीमारी और भी बढ़ गयी है। कब, क्या होगा, कुछ कह नहीं सकते।" बीच–बीच में फुलाद खान भी झांककर जा रहा था। इसी प्रकार कुछ घंटे बीत गये। भली अंधेरी रात हुई। सोये हुए 'महाराज' धीरे से उठ गये। तकियों को चद्दर में लपेटकर 'उसे' पलंग पर सुला दिया। उसके ऊपर महाराज की शाल ओढ़ा दी। तब से आगे पलंग पर 'तीसरे' महाराज सोये रहे। तुरंत हिरोजी ने अपना हर दिन का वेश धारण किया। दोनों भी चुपचाप बाहर निकल पड़े। दरवाजे पर एक चौकीदार ने पूछा, "कहाँ?" हिरोजी ने बड़ी गंभीरता से कहा, "महाराज की स्थिति बड़ी नाजुक है। अंदर किसे भी छोड़ना नहीं। हम औषध लेकर आते हैं।" ऐसा कहकर उसने अपना रास्ता नापा। मदारी ने भी आराम से उसका पीछा किया। परंतु वे दोनों औषध लेकर वापस लौटे नहीं।

पलंग पर लेटे 'महाराज' रात भर सुख–चैन से सोये रहे। बाहर नंगे हथियारों से लैस पठानों का सर्पीला पहरा भी यथावत् जारी ही था।

18 अगस्त की सुबह हुई। औरंगजेब का सपना साकार होने का वह सुदिन था। अब आगे पूरी जिंदगी भर चैन की नींद एवं नसीब बख्श देने वाली खैरियत का दिन। सुबह होने के बाद भी थोड़ा वक्त गुमसुम ही गुजर गया। लेकिन महाराज के बिडार (डेर) में कोई चहल–पहल नहीं। सब कुछ नीरव, निःशब्द। वह विचित्र–सा सन्नाटा भरा माहौल देखकर, बाहर गश्त वालों को शक हुआ। डर के मारे उन्होंने 'कुछ हुआ होगा।'

ऐसी खबर फुलाद खान को दी। उसके आँखों के सामने तो अंधेरा छा गया। वह शिवाजी के कक्ष में दौड़ते गया। उफ्, 'महाराज' सोये हुए दिखाई दिये। खान की जान में जान आ गयी। लेकिन यह क्या? कुछ भी हल–चल नहीं। साँस भी बंद। शिवाजी मर तो नहीं गया? मरा हो, तो अच्छा ही हुआ; एक बला तो टली। लेकिन उसके दवा–पानी का बंदोबस्त करने वाले खिदमतगार भी यहाँ नहीं हैं। शिवाजी को छोड़ वे सब कहाँ गये? खान अंदर गया। आहिस्ता–आहिस्ता महाराज की ओढ़ी हुई शाल उठायी। देखा! क्या था वहाँ? हाय, हाय, केवल तकियों–चद्दरों की गाँठें! ओफ्, अल्लाह! शिवाजी फरार हुआ। क्या वह आसमान में उड़ गया या जमीन में घुस गया।

खान अब तो जल्लादे–जिन्न के फेरे में आया। मरियल आवाज में रामसिंह को खबर पहुँचा दी। उसे भी आश्चर्य का धक्का ही लगा। तथापि, उसके लिए वह दर्दीली खबर नहीं थी। रामसिंह सिर झुका कर, अपनी ही ख्याली खुशी के नशे में धुत् ऐसे औरंगजेब के सामने जाकर पिशाच–पीड़ित जैसा खड़ा हुआ। "ऐसे क्यों खड़े हो," औरंगजेब ने पूछा। दबी आवाज में रामसिंह ने कहा, "बड़ी खराब खबर है, आलमपनाह! शिवाजी हमारे हाथों से खिसक कर भाग गया।"

बादशाह के सिर पर मानो आसमान ही टूट पड़ा। साथ ही गिर पड़े उसके सपनों के भविष्य–नियंत्रक ग्रह–तारे, चाँद और सूरज भी। उसके रोम–रोम में गुस्से की आग भड़क उठी। अपने मत्थे पर हाथ मारते वह फिसलकर जमीन पर बैठ गया। न जाने, कहीं शिवाजी अपने आस–पास तो नहीं आया, इस डर से उसने इधर–उधर देखा भी। गुस्से का बढ़ता सैलाब वह रोक नहीं पाया। उस फिदा–ए–हुसैन के महल में अब किसकी कब्र बनाऊँ? तैयार बने उस करंडक में अब किस की खोपड़ी बिठाऊँ? इस प्रकार वह अंदर ही अंदर झुलसने लगा। उसी समय, फुलाद खान भी आया, "देखते ही देखते, शिवाजी गायब हो गया। उसे क्या जमीन निगल गयी या आसमान खा गया? कुछ भी पता नहीं चला। हमारे नंगे हथियार

वालों का पहरा तो दिन–रात जारी ही है। हमारी कोई गलती नहीं हुई," उसने बता दिया।

तो अब, शिवाजी आगरा में ही कहीं छिपा बैठा होगा। इतनी जल्दी वह कितनी दूर जा सकता है? अब एक चींटी भी किले के बाहर न जाये, इसलिए फौरन पूरे आगरा शहर पर ही बड़ा तगड़ा पहरा बिठा दिया। खुद बादशाह के महल पर भी गश्त शुरू हुई। रामसिंह के महल से गायब हुआ शिवाजी कहीं राजमहल में पैदा न हो जाये, इसलिए ही। सब ओर तगड़ी खोजबीन शुरू हो गयी। शहर के बाहर आठों दिशाओं में घुड़सवार दौड़ाये गये। दूर–दूर की सब चौकियों पर, इतना ही नहीं, तो स्नान के घाटों पर भी खास पैगाम भेजे गये। संन्यासी के भेष में शिवाजी फरार हुआ होगा – होशियार! होशियार!! आगरा शहर भर में खबर फैली। सब लोग आश्चर्य से दंग रह गये। अनेकों ने सहजता से ही उद्गार निकाले, "बादशाह के नाक पर ही चूना लगा के मराठा राजा अपने बेटे के साथ फरार हुआ। क्या उसका ढाँढस, क्या चतुराई होगी? भले, भले!" लेकिन बादशाह की नींद तो पूरी की पूरी हराम हो गयी।

एक दिन बीत गया। दो दिन गये। दिन की रात हुई, रात का दिन हुआ। दिन के बाद दिन लुढ़कते गये। लेकिन शिवाजी की भनक तक नहीं मिली। बहुत दिन बीतने के बाद फुलाद खान को सुराग मिला शिवाजी का नहीं, पर शिवाजी किस तरह खिसक गया होगा, इसका। शिवाजी और संभाजी मिठाई के पिटारों में बैठके फिसल गया, यह खबर न जाने किस तरह से फुलाद को तब पता चल ही गयी। शहर में भी वह फैल गयी। तब तक, मिठाई खाकर चटखारे लगाने वाले सब अमीरों, उमरावों के मुँह खटाई में पड़ गये। शिवाजी के उस अप्रतिम प्रतिभा की झलक से तो औरंगजेब की आँखें चौंधिया कर घना अंधेरा छा गया।

आते–आते वह अनुपमेय खबर देश में सब जगह फैल गयी, जगत में भी प्रसृत हो गयी। विश्व के कल्पक उपन्यासकारों ने भी इसके सामने अपनी हार मान ली है। जगत् के इतिहास में ही एक अद्भुत–रम्य घटना ऐसा सब इतिहासकारों ने उसका उल्लेख किया है। अब तक कारागारों

से अनेकों कैदी फरार हुए हैं। घूस देकर, सेंध लगाकर, ताला तोड़के वे सब गये होंगे। मगर, दुश्मनों की राजधानी से सैंकड़ों शत्रु–सैनिकों के कड़े पहरे से उनके मुँह में मिठाई रखके, 'हो आइएगा', ऐसा कहलवा के एक राजा और राजकुँवर दोनों के निकल जाने का दाखिला पूरे दुनिया में दूसरा नहीं। वह भी एक का पलायन या एक दिन का पलायन नहीं, हाथी–घोड़े, मोती–रत्न, अनाज–दाना, सैनिक–सरंजाम, अपना नौ साल का पुत्र, इन सबको साथ लेकर सैकड़ों मीलों वाले शत्रु मुल्कों से गुजरते हुए पलायन। शिवाजी की तुलना केवल शिवाजी से ही होगी। उनके साथ होड़ लेने वाला दूजा नहीं मिलेगा।

अब आस्ते–कदम करने से अपाय ही अधिक। दुश्मनों को दिया हुआ सोलह–अठारह घंटों तक का भुलावा ही हमारे बचाव का बहुत बड़ा आधार है, ऐसा महाराज ने सोचा। औरंगजेब की पूरी जासूसी टुकड़ी ही अब सजग होकर उनके पीछे लग चुकी थी। इसीलिए महाराज और उनके साथ, कमान से निकले तीर जैसे दक्षिण की ओर निकल पड़े। रास्ते में पग–पग पर खतरा। एक–एक गाँव याने आफत का बहुत बड़ा गड्ढा ही था। शिवाजी को पकड़कर देनेवालों को अपार बहुमान दिया जायेगा। इस प्रलोभन से मुगल सैनिक, सरदार, जासूस, अनेक मुसलमान नागरिक शिवाजी के लिए अपनी नजरें जमाकर ताक में बैठे थे। उत्तर से लेकर दक्षिण तक के इस यात्रा में यदि कोई सहाय एवं सहारा अपरिमित मात्रा में मिला हो, तो वह केवल श्री रामदास के मठों का ही। ऐसे कितने ही प्रसंग थे, जब महाराज दुश्मनों के शिकंजे में फँसने वाले ही थे, तथापि अपनी बुद्धि के आधार पर तथा धन के बलबूते वे आगे बढ़ते ही गये।

हिरोजी तथा मदारी भी सुखरूपता से दक्षिण की ओर निकल पड़े थे। तथापि त्र्यंबक पंत डबीर और रघुनाथ पंत कोरडे महाराज के दोनों सलाहकार आगरा में ही फुलाद खान के हाथों में लग गये। शिवाजी के हिस्से का सारा गुस्सा खान ने उन पर उतारा। उस राक्षस फुलाद के हाथों उन पर हुए बर्बर अत्याचार तथा हिंसाचार की कल्पना करना भी

असहनीय है। इतना कुछ होने और कहने पर भी शिवाजी महाराज कैसे गये, उनके पलायन में कौन–कौन भागी थे आदि के बारे में उनके मुँह से चकार तक नहीं आया। स्वराज्य–निष्ठा नामक जादू का क्या कहें! शिवाजी महाराज ने एक–एक को कैसे मृत्युंजय वीर बना दिया था इसकी मिसाल दूसरी कोई हो सकती है, क्या?

..... १० .....

उधर, राजगढ़ पर एक वृद्धा का मातृ–हृदय दिन–रात प्रतीक्षा में बैठा था, शिवा के लिए। समूचा स्वराज्य ही उन तीन अक्षर वाले स्फूर्तिप्रद मूर्ति का दर्शन करने के लिए तीव्रता से लालायित था। महाराज की अनुपस्थिति में ही एक नया किला जीतकर स्वराज्य में दाखिल किया गया था।

आखिर, एक दिन उत्तर के गोसाँइयों की एक टोली ने महाराष्ट्र की भूमि पर पदार्पण किया। वहाँ आते ही, हजारों मीलों का प्रवास समाप्त कर आया हुआ उनका हृदय पुलकित हुआ। उनकी सब थकान क्षणार्ध में गल गयी। वह टोली सीधी राजगढ़ के पाँयते पर पहुँच गयी, १६६६ ई. के २० नवंबर को। गोसाँइयों को राजमाता का दर्शन करना था। जीजाबाई को खबर मिली कि कोई उत्तरदेशीय बैरागी उनका दर्शन करने किले पर आने की आज्ञा माँग रहा है। उनके जैसे पुण्यवंतों के अनुग्रह से क्यों न हो, अपना पुत्र घर वापस आने को हो यही उस माता के मन की आस। तत्काल बैरागियों को गढ़ पर आने की अनुमति मिल गयी। पूरी टोली की टोली ही जीजाबाई के सामने जाकर खड़ी हुई। राजमाता को देखते ही उनमें से एक बैरागी के आँखों में तो आनंदाश्रु उमड़ आये। वह अपना भावोद्वेग रोक नहीं पाया और उसने सीधा उस वृद्धा को साष्टांग प्रणिपात किया। जीजामाता आश्चर्यचकित हुई, "यह क्या विचित्र है? मुझे ही उनको नमस्कार करना था, परंतु यह गोसाँई मुझे ही प्रणाम कर रहा है!

कौन हैं ये?" उस क्षण में उसे कुछ नहीं सूझा। वह वैरागी कौन है, इसका पता ही नहीं लगा। उसे ही क्यों, राजप्रासाद में किसी को भी नहीं।

'माँ साहब', पुत्र की आवाज माँ के हृदय को तत्काल छू गयी। "शिवा", झट से उसने कहा। अपने आँचल में छिपे बैरागी के सिर को माँ थपकने–सँवारने लगी। सिर के पुराने घाव के निशान को उसके हाथ ने पहचान लिया। अफज़ल खान प्रकरण के संदर्भ में लगा घाव था वह। हाँ, हाँ; यह शिवा ही है। संशय ही नही! माता ने पुत्र को गले लगाया। शब्दातीत भाव आँखों में पानी बनकर बहने लगा। राजगढ़ पर वह समाचार कस्तूरी के सुगंध की भाँति फैल गया। "आये, महाराज आये।"

उस आनंद का वर्णन करें भी तो कैसे! किले के ऊपर से तोपें, नगाड़े, शृंग, तुरहियाँ सब वाद्य एक साथ गरजने लगे। समस्त स्वराज्य को वे महाराज के शुभागमन का संदेश पहुँचा रहे थे। अपने राजा के रोमांचकारी साहस के बारे में सुनने के बाद तो स्वराज्य–वासियों के अभिमान के लिए हृदय पर्याप्त नहीं हुए।

इतने सब संभ्रम में, संभाजी कहाँ? स्वराज्य का वह छोटा युवराज कहाँ? सबकी आँखों में वही प्रश्न। जीजाबाई ने बड़ी कातरता से पूछा, "कहाँ है मेरा शंभुराज?" महाराज ने गंभीरता से कहा, "रास्ते में आते–आते ही मर गया।" संभाजी का अंतिम क्रिया–कर्म सब महाराज ने यथासांग पूरे किये। नौ साल के बछड़े का हाथ पकड़कर आगरा बुलाकर ले जाने वाले पिता के हाथ वापस आते समय खाली हो गये। जीजामाता की पीड़ा तो असहनीय थी। वही दारुण खबर सब ओर फैल गयी। स्वराज्य की सीमा पार कर, वह उत्तर में पहुँची। आगरा तक गयी। औरंगजेब के कानों में भी पड़ी। संभाजी के मौत की खबर सुनते ही उसने संभाजी की बिना वजह चली खोज अब बंद करो, ऐसा फरमान जारी किया। जासूसों की हलचल ठंडी पड़ी। शिवाजी महाराज के सम्मोहनास्त्र ने अपना काम कर दिया।

अब संभाजी को वापस लाने का मार्ग निष्कंटक हुआ। कुछ दिनों के बाद संभाजी को लेकर आने के लिए कृष्णाजी पंत को महाराज ने सूचना भेज दी। तब उन्होंने राजकुँवर को क्षेम रूप से लाकर छोड़ दिया।

बाद में, औरंगजेब को यह खबर मिल गयी कि आगरा से निकल पड़े दक्खन के सभी अतिथि संभाजी सहित सुखरूपता से राजगढ़ पहुँच चुके हैं।

❖❖❖❖❖

राज्य–विस्तार

— राज्याभिषेक

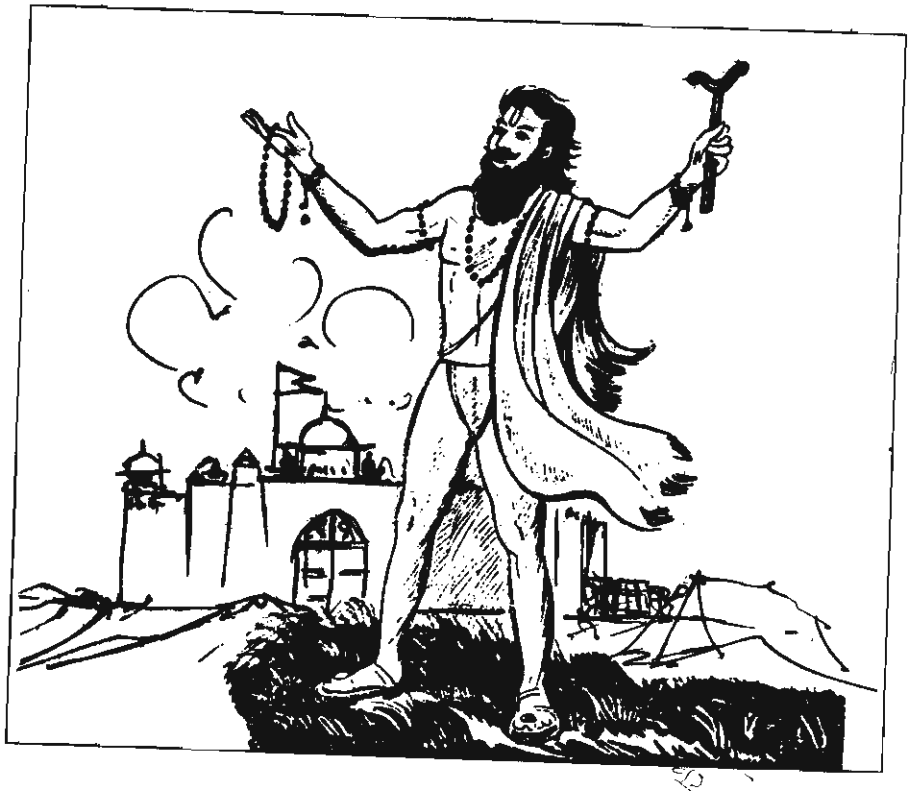

स्वप्न में जो देखा, साकार हुआ
आनंदवन–भुवन के प्राकार में!

'कुत्ते का गुस्सा गधे पर' इस कहावत के अनुसार, औरंगजेब शिवाजी का गुस्सा दूसरों पर उतारने लगा। उसकी वक्रदृष्टि सर्वप्रथम पड़ी बेचारे रामसिंह पर। कितना भी हुआ तो रामसिंह एक हिंदु याने काफिर! शिवाजी भी! तो फिर, शिवाजी के पलायन के लिए रामसिंह ही जिम्मेदार! औरंगजेब ने रामसिंह की जागीर जब्त की। उसकी पंचहजारी मनसब भी छीन ली। फिर भी उसे तसल्ली नहीं हुई, मन को शांति नहीं! जब शिवाजी का कुछ नहीं बिगाड़ सका तो ठीक है, अब 'प्रति–शिवाजी' के ऊपर तो बदला चुकाऊंगा, ऐसा उसने सोचा। औरंगजेब तो बदले की आग में झुलस रहा था। नेताजी पालकर को उसके परिवार के साथ गिरफ्तार कर आगरा को फौरन भेज दिया जाय, ऐसी औरंगजेब ने मिर्जा राजा को गुप्त सूचना भेज दी।

उसी समय जयसिंह ने शिवाजी के पलायन की खबर सुनी और वह स्तंभित हुआ। शिवाजी को आगरा भेज देने का उद्देश्य, योजना आदि सब धूमिल हो गये, यह देखकर वह हताश हुआ। अलबत्ता शिवाजी जान से बच गया; अपना वचन–भंग तो नहीं हुआ, इसी का उसे संतोष था। तभी बादशाह से उसे नेताजी पालकर की गिरफ्तारी का फरमान मिल गया। तभी तो जयसिंह ने भेद–तंत्र का प्रयोग करते हुए नेताजी को बीजापुर से अलग कर अपनी ओर कर लिया था। अभी–अभी अपने पास आये पालकर को अब स्वयं ही गिरफ्तार करना पड़ रहा है। मन में हो या न हो, अब गुलामी की कीमत तो चुकानी ही थी। इसीलिए एक दिन जयसिंह ने एकाएक नेताजी को घेर लिया, उसके परिवार के साथ उसे कैद किया और अत्यंत तगड़े पहरे में उसको दिल्ली भेज दिया। तब तक औरंगजेब आगरा से दिल्ली आया था। उसने नेताजी पर अनन्वित अत्याचार, हिंसाचार किया। साथ ही साथ वह यदि अपने पूरे परिवार समेत मुसलमान हुआ, तो ही उन सजाओं, अत्याचारों से छुटकारा मिलेगा, ऐसा प्रलोभन भी दिखाया। तब 'प्रति–शिवाजी' की क्या प्रतिक्रिया थी? आश्चर्य! परम आश्चर्य! मुसलमान बनने के लिए उसने अपनी अनुमति दे डाली। अपने अहंकार की बलिवेदी पर स्वयं को ही बलि चढ़ाने वाले लोग जीवन में

यदि पतित हुए तो उनका अधःपतन किसी भी हद तक हो सकता है, यही सत्य है। शिवाजी महाराज का दाहिना हाथ कहलाने वाला, स्वराज्य का सरसेनापति रह चुका नेताजी पालकर अब मोहम्मद कुली खान बन गया। तदुपरांत, औरंगजेब ने नेताजी पालकर की पत्नी-बच्चों को भी दिल्ली लाकर उन्हें भी इस्लाम स्वीकारने पर बाध्य किया।

अपनी पुरानी बातें याद कर, नेताजी कभी भी दक्षिण वापस जा सकेगा, इसलिए औरंगजेब ने उसे काबुल की मुहिम पर जाने का फरमान देकर भेज दिया।

अब बारी जयसिंह की! बीजापुर के साथ हुए संघर्षों में जयसिंह के लगातार पराभव की वार्ताएँ बादशाह को मिल ही रही थीं, उससे जयसिंह की अवस्था भी बड़ी शोचनीय बन गयी थी। साथ ही, स्वराज्य में वापस आया हुआ शिवाजी अब क्या गुल खिलायेगा, इसका डर भी उसे सताने लगा था। तब तक उसके लिए दिल्ली का वातावरण भी प्रतिकूल बन गया था। दिल्ली में जयसिंह की दरबारी अहमियत न सहने वाले अनेक सरदार वहाँ थे। उन्होंने बादशाह से चुगली की। जयसिंह अंदर ही अंदर बादशाह से गद्दारी कर रहा है, ऐसी अफवाह भी फैला दी। इन सब बातों की जानकारी जयसिंह को भी मिल ही रही थी। साथ ही उसके पुत्र रामसिंह के साथ किया गया अपमान भी उसे अंदर ही खाए जा रहा था। जयसिंह जैसे बादशाह के एकनिष्ठ सेवक के हृदय को इससे बड़ा कोई और आघात हो सकता था क्या? वह कलंक धो डालने के लिए जयसिंह ने औरंगजेब के दिल्ली स्थित वजीर जाफ़र खान को एक पत्र लिखा, "पूरे दक्खन को बादशाह के कब्जे में लाने के लिए मैं जी-जान से कोशिश कर रहा हूँ। कुछ भी करके फिर एक बार शिवाजी को मुलाकात के लिए बुला लाने का नुस्खा सोच रहा हूँ। मौका देखकर मैं उसे खत्म कर देता हूँ। बादशाह की इस ख्वाहिश को कामयाब बनाने के लिए मैं कुछ भी करने को तैयार हूँ। लोगों की बातों की परवाह मैं बिल्कुल नहीं करता। यदि बादशाह की इजाजत हो, तो अपने लड़के के लिए शिवाजी की लड़की का हाथ माँग लूंगा। मेरे स्वयं उत्तम कुल का होने के कारण, हीन

कुल वाला शिवाजी मेरा यह प्रस्ताव नहीं ठुकरायेगा। शादी का मौका साधकर मैं उसे समाप्त कर दूंगा। यह बात पूरी गुप्त रखिए। जल्दी जवाब देने की मेहरबानी कीजिए।"

हर दिन घंटों तक एकलिंगजी की पूजा करने वाले उस भगवद्भक्त राजपूत की नैतिकता का दर्जा देखिए! पर-दास्य करते-करते, कैसे-कैसे उत्तुंग व्यक्तित्व भी कैसी हीन अवस्था को पहुँचते हैं, इसकी क्या कोई दूजी मिसाल चाहिए?

जयसिंह के पत्र का औरंगजेब से कोई जवाब नहीं आया। बादशाह ने जाफरखान से भी कोई जवाब नहीं दिलवाया। उल्टे बादशाह ने अपने बेटे शहजादा मुअज्जम को दक्खन का सूबेदार नामजद किया। जयसिंह के दिल पर उसका जबरदस्त आघात पहुँचा। वह टूटे दिल से ही उत्तर की ओर निकल पड़ा, परंतु औरंगजेब के फरेबी दिमाग ने तब तक उसके लिए अपना जाल बिछा ही दिया। जयसिंह के ही दूसरे बेटे कीर्तिसिंह को मनसबदारी का लालच दिखाकर, उसी के जरिए उसके ही पिता जयसिंह को बुरहानपुर में जहर दिलाकर मरवाया। तदुपरांत कीर्तिसिंह ने, अपने पिता के प्रमुख सलाहकार उदयराज ने ही विष-प्रयोग किया है, ऐसी अफवाह फैला दी। इसी बहाने मुंशी को भी खत्म करने का उसका इरादा था। बहुत दिनों से उन दोनों में चली आपसी दुश्मनी ही उसका कारण थी। तथापि कीर्तिसिंह से छुटकारा पाने के लिए उदयराज ने इस्लाम अपनाया। वही उसका अभेद्य रक्षाकवच बन गया। बादशाह के धर्म वालों का खातमा करने की हिम्मत किसमें थी? तुरंत कीर्तिसिंह का आवेश ठंडा पड़ गया। आपसी दुश्मनी बरकरार रहेगी वह केवल हिंदुओं में, हिंदु बने रहने तक ही। एक बार मुसलमान बन गया, तो किस्सा ही समाप्त! मानो वह उन्नत श्रेणी में पहुँच जाता हो! उस जमाने का यथा-तथ्य दर्शन कराने वाली घटना है यह।

मिर्जा राजा जयसिंह का घोर अंत हुआ। जन्म भर एकांतिक निष्ठा, दक्षता, साहसी मनोभाव से औरंगजेब की खिदमत करने का फल था वह!

ऐसा कहते हैं ना कि पापकर्म भी अत्यधिक परिमाण में हुए तो उसका फल उसी जन्म में भुगतना पड़ता है। उसी की यह एक मिसाल थी।

रामसिंह, नेताजी, जयसिंह पर इतना कुछ बदला चुकाने के बाद भी औरंगजेब के दिल को तसल्ली नहीं मिली। शिवाजी के आगरा से पलायन करते समय दर्शायी प्रतिभा, साहस तथा उसे प्राप्त सफलता से समूचे संसार की नजरों में औरंगजेब के मुँह पर कालिख पोती गयी थी। इनमें से एक–एक बात उसके दिल को शूल–जैसे चुभने लगी थी।

शिवाजी महाराज के देहांत के बाद महाराष्ट्र के मुहिम पर आए औरंगजेब ने दक्खन में ही अपनी आखिरी साँस ली। अपने उन आखिरी दिनों में लिखे मृत्युपत्र में भी बड़ी यादगारी से औरंगजेब ने उस घटना का उल्लेख किया है, "राज्य के जासूसों के काम में यदि थोड़ी–सी भी ढिलाई हो गयी, तो कैसी–कैसी मुसीबतें पैदा होती है, इसके लिए मेरी खुद की मिसाल ही काफी है। उस बदनुमा नामाकुल 'शिवा' के आगरे से फरार होने की वजह से मुझे आखिर तक इस लड़ाई के झमेले में उलझना पड़ा।"

..... २ .....

शिवाजी महाराज फरार होकर वापस महाराष्ट्र लौटे हैं, यह समाचार पहुँचते ही दक्खन के सब दुश्मनों के छक्के छूट गये। तत्कालीन यूरोपीय अधिकारियों के पत्रों में वह डर स्पष्ट दिखाई देता है। अब यह सह्याद्रि का सिंह अपने आगरा–अपमान का बदला दूसरे दुश्मनों से चुकाये बगैर नहीं रहेगा, इस विचार के मारे वे सब काँप उठे। औरंगजेब भी वैसा ही महसूस कर रहा था।

परंतु, शिवाजी महाराज का अपनाया हुआ उपाय ही अलग था। वह देखकर औरंगजेब को भी दाँतों तले उंगली दबानी पड़ी। राजगढ़ पहुँचते ही महाराज ने बादशाह औरंगजेब को समझौते का पत्र लिखा। कारण? पुरंदर–संघर्ष एवं समझौते के बाद मुगल साम्राज्य के साथ तुरंत संघर्ष छेड़ने की स्थिति में स्वराज्य नहीं था। राज्य का राजस्व, आय बढ़ाना आवश्यक था। किलों की सुरक्षा तथा सुव्यवस्था और भी मजबूत करनी

थी। पश्चिमी किनारे पर स्वराज्य का प्रभुत्व बढ़ाना था। प्रतिशोध लेने के लिए आवश्यक शक्ति–सामर्थ्य प्राप्त होने तक प्रतीक्षा करनी थी। शिवाजी महाराज के सभी उपायों, योजनाओं का सूत्र एक ही था – अंगीकृत ध्येय का अंतिम विजय।

उनके औरंगजेब को लिखे समझौते–पत्र की शैली देखिए, "आपका यह गुलाम आपकी खिदमत करने में ही खुशी महसूस करता है। मैंने कब्जे के सब गढ़–किले तभी आप के सुपुर्द कर दिये। मेरे बचे–खुचे दुर्ग भी आप ही की सेवा में अर्पित हैं। मेहरबान, आलिजा से गुजारिश है कि आप मेरी खिदमत कुबूल फरमायें। मेरा फर्जन्द आप के खिदमत में पेश है। उसे चार हजार की मनसब बख्श देने की मेहरबानी हो।" और आखिर में, औरंगजेब के इजाजत के बगैर आगरा से 'वापस' आने का अफसोस जाहिर करते हुए, मुआफी की गुजारिश करना भी महाराज भूले नहीं। वह पत्र देख औरंगजेब को क्या कुछ नहीं लगा होगा? "मुझे ही गुल खिलाकर भाग जाने वाला शिवाजी अब मुझसे ही क्षमा–याचना कर रहा है। और तो और मर गया है, ऐसा सुनकर जिसकी खोज मैंने बंद करवायी थी, उस संभाजी के लिए, उसके आराम से अपने घर लौटने पर मनसबदारी की गुजारिश। वाह! वाह!" लेकिन बादशाह ने न 'हाँ' भरी, न 'ना' कहा।

औरंगजेब से उत्तर न आने के कारण महाराज अब दक्खन के मुगल सेनापति जसवंतसिंह के पीछे पड़े। उसे भी एक पत्र लिखा, "बादशाह की मुझ पर खफा मर्जी हुई है। आगरा में मुझे जान का खतरा था, इसलिए मैं वहाँ से छुपकर वापस आया। अब आपके अलावा, बादशाह के पास मेरी तरफदारी करने वाला दूसरा कोई नहीं है। आपकी मध्यस्थता से मुझे क्षमादान मिल जाये। मेरा पुत्र संभाजी भी अब शहजादा मुअज्जम की खिदमत में हाजिर होगा।" शिवाजी के साथ लड़ाई का प्रश्न जसवंतसिंह को साँप सूँघने जैसा ही था। शिवाजी उसके लिए भयमिश्रित गौरव था। उन दोनों को शिवाजी का वह पत्र देखकर प्रसन्नता हुई। दोनों ने मिलकर औरंगजेब को शिवाजी के बारे में जोरदार सिफारिश की। उसी समय औरंगजेब को ईरान के शाह के हमले के खिलाफ मुकाबला करने की

जरूरत आ पड़ी। इस कारण, शिवाजी के पत्र को मंजूरी देना ही बेहतर होगा, ऐसी जरूरत औरंगजेब को महसूस हुई। इस प्रकार शिवाजी को आलमगीर औरंगजेब बादशाह की मेहरबानी हासिल हो गयी। शिवाजी के पत्र को बादशाह का जवाब आया, "आप पर माबदौलत की बड़ी मेहरनजर है। इसलिए आपको उन्होंने 'राजा' की पदवी से नवाजा है। आपकी पेशकश को हमारी मंजूरी है।"

इस समझौते के तहत एक और महत्त्वपूर्ण काम शिवाजी महाराज ने हाथों में ले लिया। वह था आगरा में यमयातना का अनुभव कर रहे अपने निष्ठावंत सलाहकार रघुनाथपंत तथा त्र्यंबकपंत की रिहाई का! लोगों को एक बार 'अपना' कहने के बाद, स्वराज्य की दीक्षा देने के बाद, वैसे एक–एक व्यक्ति के बारे में भी महाराज के हृदय की तिलमिलाहट, किस तरह बखान करें?

इस समझौते के निमित्त शिवाजी महाराज ने स्वराज्य–हित के और भी अनेक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हासिल किये। विगत कई वर्षों में राज्य की आय कम हुई थी। इस तरह इतने सालों के अथक प्रयासों से निर्मित अपनी अप्रतिम सेना का विसर्जन करने की विकट परिस्थिति उद्भूत हुई थी। इस समस्या का समाधान भी महाराज ने बड़ी कुशलता से किया। इसी समझौते के तहत ही संभाजी के साथ अपनी पंचहजारी सेना सरसेनापति प्रतापराव गुर्जर के अधीन देकर मुगल सूबेदार की सहायता करने औरंगाबाद भेज दिया। उस सेना का खर्चा निभाने के लिए मुगली मुल्क के वरहाड़ प्रांत में वसूली के लिए अपने चतुर मुत्सद्दी रावजी सोमनाथ को दो हजार सेना के साथ भेज दिया। मुगली दरबार का भेद जानने के लिए निराजी राव जैसे बहुभाषा–विज्ञ, चाणाक्ष मुत्सद्दी को स्वराज्य के प्रतिनिधि के नाते मुअज्जम के पास छोड़ दिया। स्वराज्य के उन तीनों अतुलनीय, चतुर प्रतिनिधियों ने मिलकर मुगलशाही की मजबूतियाँ तथा मजबूरियाँ क्या हैं? राजकाज की पद्धति एवं उसके दोष क्या हैं? उनके व्यापार–वाणिज्य के संबंध किनसे हैं? आदि सब बातों को सूक्ष्म अवलोकन द्वारा खोज निकाला। स्वराज्य स्थापना के कार्य में कहाँ से,

किन से, किस रीति से लाभ उठाना संभव था, उन सब सुअवसरों का शिवाजी महाराज ने बड़ी कुशलता से उपयोग कर स्वराज्य को मजबूती प्रदान की।

शहजादा मुअज्जम को भी शिवाजी की दोस्ती से खुशी ही हुई, कल कभी दिल्ली के तख्त को हथियाते वक्त शिवाजी जैसे मशहूर शमशेर–बहादुर की मदद मिल पाये इसलिए!

..... ३ .....

इधर, महाराज ने स्वराज्य को समृद्ध बनाते हुए सुराज्य निर्माण के लिए अनेक क्रांतिकारी कदम उठाये। सबसे पहले, शताब्दियों से चली आ रही जागीरदारी की पद्धति समाप्त कर दी। इससे सर्वसाधारण किसानों का स्वाभिमान से जीना संभव हो गया। जयसिंह के हमलों से कंगाल बने किसानों को धन के बदले धान के रूप में कर देने की सुविधा प्रदान की गयी, वह भी उनके द्वारा उगायी गयी फसल के अनुपात में ही। फसल खराब हुई तो किसानों को छूट देने का ऐलान किया गया। अपने ऊपर अपने राजा की सहानुभूति, आत्मीयता आदि देखकर किसान अधिक परिश्रम करने लगे। परिणामस्वरूप, कृषि–उत्पादन भी बढ़ता गया। उससे राजस्व में भी वृद्धि हुई। तब तक जागीरदारी में जनसामान्यों का शोषण, आपसी झगड़े, स्वेच्छाचार इत्यादि का बोलबाला होता था। जागीर की पद्धति रद्द हो जाने से वे सब बातें अपने आप ही दूर हो गयीं।

इसी समय घटित एक छोटा प्रसंग उलझन पैदा करता गया। कोंकण का पिलाजी राजे शिर्के एक बड़ा जागीरदार था। नये सुधारों के कारण उसकी जागीर भी गयी। कुछ दिनों के बाद, शिर्के की पुत्री का संभाजी के साथ तथा शिवाजी की पुत्री का शिर्के के पुत्र के साथ विवाह संपन्न हुआ। इसी का लाभ उठाते हुए शिर्के ने शिवाजी से अपनी जागीर लौटाने का आग्रह किया। अब क्या करें? समधी का हक बड़ा या स्वराज्य का हित? शिवाजी की प्रतिभा ने इस विकट समस्या का हल चुटकी में किया। इधर, संबंध भी ना बिगड़े, उधर राजकर्तव्य का लोप भी ना हो! इसलिए शिर्के द्वारा जागीर माँगने पर स्मित करते हुए बड़ी सहजता से

महाराज ने कहा, "हमारे राज्य में जागीर की पद्धति नहीं है। फिर भी स्वराज्य के लिए आपकी सेवा अतिमहत्त्व की है। इसलिए राजकुमारी के पुत्र–प्राप्ति पर दे देंगे।"

नवविवाहिता राजकुमारी की आयु तब कुछ चार–पाँच साल की थी। पहले तो वह योग्य आयु में आये, तत्पश्चात् उसे संतान हो और वह भी पुत्र; याने अभी कम–से–कम दस–बारह साल तो वतनदारी की बातें ही नहीं। क्या अनोखा उत्तर था महाराज का! अपने स्वयं के समधी को भी रियायत नहीं। किसी भी प्रसंग में, उनका न्यायदान बड़ा तगड़ा ही रहा। न्यायदेवता के सामने सब समान; उसके परे कोई नहीं। यही था उनके राज्य संचालन का सूत्र।

कृषि सुधारों द्वारा आर्थिक अभिवृद्धि प्राप्त करने के साथ ही महाराज ने पदाती सेना तथा नौका–दल को मजबूत करने की ओर अपना सारा ध्यान दिया। जनता संतुष्ट हुई। सेना समर्थ हुई। शासन दक्ष हुआ। कुल मिलाकर स्वराज्य सुभद्र एवं सुरक्षित हुआ। अब विस्तार की बारी।

सब से पहले शिवाजी की दृष्टि गोवा के पुर्तगालियों पर पड़ी। वहाँ के वायसराय ने रोमन कैथोलिकों को छोड़कर बाकी सबको हद पार का आदेश जारी किया था। वह सुनते ही 'शिव' का तृतीय नेत्र खुल गया। छः हजार सेना के साथ अचानक गोवा के समीप जाकर महाराज ने वहाँ अपना पड़ाव डाला। वहाँ गैर–ईसाइयों को ईसाई बनाने के तथा जो लोग इस प्रकार धर्मान्तरण करने से मुकरते है, उन्हें जान से मारने के काम में जुटे चार पादरियों को पकड़वा कर महाराज ने अपने सामने बुलाया। "आप हमारा धर्म स्वीकार करोगे या नहीं?" उनसे ऐसा सवाल किया। उससे जवाब आया, "नहीं"। तब महाराज ने, "तो फिर आप गैर–ईसाई हिंदुओं को क्यों मार डालते हो? अब उसका पाप भुगतो।" ऐसा कहकर उन चारों पादरियों का शिरच्छेद करवाया। आस–पास का शत्रु–क्षेत्र ध्वस्त कर वहाँ की संपत्ति अपने वश में कर ली। उस पुर्तगाली वायसराय को वह भाषा तत्काल समझ में आ गयी। उसने अपना वह धर्मान्ध आदेश तुरंत बिना कोई आवाज के वापस ले लिया।

उसी समय समस्त गोवा को एक झटके में मुक्त करने की योजना भी महाराज ने सोच रखी थी। उसी प्रकार, पाँच सौ मराठा सैनिकों ने फर्जी पोशाक पहनकर गोवा के किले में प्रवेश भी किया था। उनके अंदर से किले का दरवाजा खोलते ही बाहर से शिवाजी की शेष सेना के धावा बोलकर किला हस्तगत करना तय भी हुआ था। परंतु, वायसराय ने बड़ी दक्षता से किले के सुरक्षा की व्यवस्था की थी। इसलिए अंतिम क्षण में वह महत्त्वाकांक्षी योजना छोड़नी पड़ी। वॉयसराय ने अंदर गये सब मराठों को बाहर खदेड़ दिया। इस तरह कभी–कभी शिवाजी महाराज को भी हार स्वीकारनी पड़ती थी। तथापि उसे आगामी विजय के सोपान में परिवर्तित करने का कौशल एवं दूरदृष्टि उन्हें थी।

स्वराज्य का एक और कट्टर शत्रु यानि जंजीरे का सिद्दी! पश्चिमी तट पर उसका जलदुर्ग 'जंजीरा' अजेय, अभेद्य–सा खड़ा था। वहाँ पर 570 तोपें थी। वैसे प्रचंड दुर्ग का दमन करने की महाराज ने ठानी। जंजीरे के आस–पास स्थित सात किले और दो प्रमुख शहर उन्होंने जीत लिए। सिद्दी ने अंग्रेजों के पास सहायता की याचना की, परंतु पिछले अनुभवों से सीखा पाठ अंग्रेज भूले नहीं थे; उनको धैर्य हुआ नहीं। जंजीरे की हार निश्चित होकर वह अब शिवाजी के शरण में आने ही वाला था, तभी सिद्दी को औरंगजेब से कुमुक और सहायता प्राप्त हुई। इस तरह महाराज को वहाँ से अपनी मोर्चाबंदी उठानी पड़ी।

इसके बाद औरंगजब ने हिंदुओं पर अमानुष क्रोध, अनन्वित अत्याचार, कपट, धर्मान्धता आदि का नंगा नाच आरंभ किया, ऐसी खबरें महाराज तक पहुँचने लगीं। मुगल बादशाह ने अपने साम्राज्य में हिंदुत्व का दमन करने के लिए खास फरमान जारी किये। हिंदू मठ–मंदिरों के विध्वंस का ही काम करने वाली टुकड़ियां फौज में अलग से तामील की गयी। हिंदुओं का जबरन धर्मान्तरण करने एक मुख्य काजी की नियुक्ति की गयी, समस्त हिंदू अस्तित्व के केंद्रबिंदु स्वरूपी काशी विश्वनाथ मंदिर गिराकर, उसी जगह पर मस्जिद बांधी गयी। मथुरा का मंदिर ध्वस्त कर, वहाँ की केशवदेव की मूर्ति आगरा मस्जिद के सीढ़ी का पत्थर बनायी गयी।

औरंगजेब की धर्मान्धता इतने निम्न स्तर तक गिर चुकी थी कि खुद उसके ही आप्त सेना अधिकारियों को भी वह असह्य बन गयी, उसके बारे में दरबार में भी बहस चलने लगी। मौके पर ही औरंगजेब, "शिवा को खत्म करने अब किसे भेजेंगे?" यह सवाल भी उठाता था। उस काम के लिए कोई भी शख्स आगे नहीं आ रहा था, तथापि एक बार महाबत खान ने बादशाह के सवाल का दो–टूक जवाब दे ही दिया, "शिवाजी को नेस्तनाबूद करने के लिए सरदार ही क्यों चाहिए? काजी का फतवा निकला तो भी काफी है।"

परंतु, औरंगजेब का दौर्जन्य, दुराचार नयी–नयी मंजिलें पार करता ही गया। हिंदुओं के सब पवित्र तीर्थ–क्षेत्रों, मठ–मंदिरों, देवी–देवताओं के एवं माँ–बहिनों का हाहाकार मचने लगा। काजी, मुल्ला, मौलवियों से हिंदुओं पर हो रहे अत्याचार एवं हिंसा का अंत ही नहीं था। हिंदु कितने भी दूर क्यों न हो, किसी भी राज्य में क्यों न हो, उनके पीड़ा का दर्द महाराज के हृदय में उठता था। परंतु उनके नजदीक ही रहनेवाले राजपूत, जाट, बुंदेला, सिख आदि को वह सुनाई नहीं देता था। कैसा दुर्भाग्य! हिंदुओं पर हो रहे इतने अन्याय–अत्याचार वे किस प्रकार सहते थे, यही बात शिवाजी महाराज नहीं समझ पाते थे।

हिंदुत्व को मिटा देना है, शिवाजी का खात्मा करना है, ऐसा सोचने वाले औरंगजेब के सीने की आग अधिक प्रज्वलित होती गयी। उसके देह की चिंगारी बार–बार भड़कती गयी। शिवाजी को आगरा आने के लिए न्योता देने के क्षण से उसके वापस प्रस्थान तक औरंगजेब ने कुल मिलाकर एक लाख होन्न अपने खजाने से खर्च किये थे। संभाजी को अब दी हुई मनसबदारी से वह पूरा खर्च औरंगजेब ने वसूल किया। संभाजी की सरदारी खारिज की। फिर भी उसका उन्माद ठंडा नहीं हुआ, उसका अगला कदम इससे भी भयानक था। मुअज्जम के पास नौकरी करने वाले स्वराज्य के सरसेनापति प्रतापराव गुर्जर तथा मुत्सद्दी निराजी रावजी को गिरफ्तार करने का गुप्त आदेश उसने मुअज्जम को भेज दिया। औरंगजेब ने उन दोनों को आगरा लाने का प्रबंध भी कर रखा था। वहाँ पर 'इस्लाम

का स्वीकार या मृत्युदंड' की कार्रवाई उनकी राह देख रही थी। लेकिन मुअज्जम अपने बाप के उन गुणों का हिमायती नहीं था। वह बड़ा सीधा सादा शख्स था। बाप का वजूद उसे पसंद भी नहीं था। दिल्ली से ऐसा एक फरमान जारी हो चुका है, यह उसे पहले ही पता लग चुका था। इसलिए वह आदेश आने से पहले ही उसने प्रतापराव एवं निराजी दोनों को अपने सूबे से तत्काल फरार होने की गुप्त चेतावनी दी। उसी रात वे दोनों अपनी सेना के साथ बेमालूम तरीके से गायब हो गये। बाप का यह फरमान आने के बाद, "मराठा सरदार आठ दिन पहले ही बिना कोई इजाजत या खबर भाग गये" – ऐसा उत्तर भेज दिया और इस प्रकार स्वराज्य एक भीषण अपाय से बच गया। प्रभु ने ही मुअज्जम को सुबुद्धि प्रदान की।

मुअज्जम का पत्र देख कर बादशाह दिङ्मूढ़ हुआ। "अपनी गुप्त सूचना पहले ही बाहर कैसे पहुँची? क्या ये बदमाश मराठा सर्वज्ञाता हैं?" उनके खिलाफ की गयी अपनी हर साजिश नाकाम होते देख कर औरंगजेब खफा हो गया; दाँत–होंठ चबाने के बजाय अब बचा ही क्या था, उसके पास?

इधर, प्रतापराव ने फरार होते समय अपने एक और सहकारी को भी उस संकट की सूचना पहुँचायी थी। वही रावजी सोमनाथ – संभाजी के जागीर का कारभारी! उस छोटे संकेत से परिस्थिति की गांभीर्यता उसने भाँप ली। समझौता भंग हुआ है। खुद औरंगजेब ने ही समर का पहला शंखनाद किया है। तुरंत अपनी आगामी कार्ययोजना का पूर्ण स्वरूप उसके सामने आ गया। तत्काल वह अपनी सेना लेकर राजगढ़ की ओर दौड़ पड़ा। महाराज को 'मुगलशाही का नजराना' देने के लिए रास्ते भर में मुगली मुल्कों को पूरी तरह से लूटकर अपार द्रव्य के साथ वह राजगढ़ पर आ उतरा।

..... ४ .....

औरंगजेब ने ही समझौता प्रथम तोड़ा था। शिवाजी भी वही चाहते थे। "दो वर्ष तक सेना का पेट पालने का काम तो हुआ ही था। अब

मुगली मुल्क में घुसने में कोई हर्ज नहीं।" ऐसा महाराज ने सोचा। उनका 'भवानी' खड्ग भी नये पराक्रम के लिए बड़ा आतुर था। परवशता में पड़ा कोंडाणा–पुरंदर आदि गढ़–किले महाराज के शुभागमन की राह देख रहे थे। अपनी मुक्ति के लिए वे महाराज की मौन प्रार्थना कर रहे थे। अब महाराज के अश्व को कहाँ की विश्रांति? राजगढ़ पर रणभेरियाँ गरजने लगी। वीरों के तलवारों की खनखनाहट सुनाई देने लगी। अश्वों के टापों से सह्याद्रि का सारा आसमान गूँजने लगा।

उसी समय मुअज्जम, दिलेर खान, जसवंतसिंह इनके बीच मनमुटाव–झगड़े आदि उछलकर सामने आये। दक्खन की मुगल शक्ति क्षीण हुई और महाराज मुगली मुल्कों में झंझावात की तरह घुस पड़े। सब से पहले, पुरंदर–संधि के तहत छोड़े हुए सब दुर्ग–किलों की मुक्तता होनी चाहिए थी।

उसमें भी पहला क्रम कोंडाणा का। जीजामाता के लिए वह किला याने मानो प्राण ही था। तब वह राजगढ़ पर थी। हर दिन आँखों में आने वाली कोंडाणा के ऊपर फहरती वह हरी पताका माता के हृदय में चुभन पैदा कर रही थी। असहनीय होकर, उन्होंने पुत्र से कहा, "यह दृश्य अब मुझ से देखा नहीं जाता!" राजगढ़ से केवल दो मील दूर कोंडाणा था। अतीव दुर्गम दुर्ग! वहाँ का किलेदार भी उस किले जैसा ही अप्रतिम। शूर राजपूत सरदार। नाम था – उदयभान राठौर। अत्यंत कार्यदक्ष! साथ में औरंगजेब का एकनिष्ठ चाकर भी। किले के बुर्जो पर आग उगलने वाली तोपें चौबीसों घंटे तैयार थीं। गढ़ की रक्षा के लिए डेढ़ हजार पराक्रमी राजपूत योद्धा खड़े थे। ऐसी अवस्था में क्या करना चाहिए, इसकी सही पहचान महाराज को थी। समर दीर्घसूत्री नहीं हो। योजना फट से पूरी होनी चाहिए। "एक मार, दो टुकड़े"! महाराज ने अपने प्रिय साथियों के सामने अपनी इच्छा बता दी। उसे पूरा करने उनका एक जीवलग झट से खड़ा हुआ। वह भी उसी किले की तरह था – अचल, स्थैर्य, सिंहसाहसी, शूर सूबेदार तानाजी मालुसरे! शिवाजी का बालमित्र था; अफजल खान कांड में अतुल्य पराक्रम का धनी था। तानाजी को महाराज ने कोंडाणा का

बीड़ा दिया। वस्त्रालंकार आदि देते हुए उसका गौरव कर उसे विदा किया।

तानाजी के हमले का दिन तय हुआ। साथ में था – उसका भाई सूर्याजी और चुनिंदा पांच सौ मावला योद्धा। आज भी लावणी, पोवाडा आदि मराठी लोकगीतों द्वारा तानाजी के स्फूर्तिप्रद नाम की जयध्वनि महाराष्ट्र के घर–घर में निनादित होती है। इन लोकगीतों में चित्रित गाथा के अनुसार उसके बेटे रायबा का विवाह उसी समय होना निश्चित हुआ था। फिर भी उस स्वराज्यनिष्ठ कर्त्तव्यप्रेमी के अंतःकरण में प्रथम स्थान था – शिवेच्छा का, स्वराज्य की पुकार का। "आधी लग्न कोंडाण्याचे, मग रायबाचे" यह कहावत महाराष्ट्र में मशहूर हैं; उसी निर्धार के अनुसार वह निकल पड़ा। मोर्चे की तिथि थी – माघ वद्य नवमी, ४ फरवरी १६७० ई. की रात्रि। उस दुर्ग के केवल दो ओर ही तटबंदी तथा दरवाजे थे। उसकी पूरी लंबाई पर उदयभान के राजपूतों का तगड़ा पहरा था। शेष सभी भागों में निसर्ग निर्मित उन्नत पहाड़ी दीवारें ही थीं। वहाँ से मुनष्य आदि का चढ़कर आना असंभव था। इसलिए वहाँ न मानव निर्मित तटबंदी थी, न पहरा। तानाजी के साहसी पराक्रम के लिए वही खुला स्वागत द्वार बना। 'यशवंती' नामक गोह (Iguana) की सहायता से वह खड़ा पहाड़ी चढ़ाव चढ़कर सब ऊपर गये, ऐसा रोमहर्षक वर्णन उन लोकगीतों में आता है। पहाड़ की वह खड़ी ऊँचाई मध्यरात्रि के घने अंधेरे में स्वराज्य के योद्धा चढ़ने लगे। सर्वप्रथम चढ़े दो साहसी वीरों ने अपने साथ लाया बड़ा रस्सा मजबूती से ऊपर बाँधकर नीचे छोड़ दिया। बचे हुए सब मावला वीर एक–एक कर ऊपर चढ़ गये। पाँच सौ मावला बिल्ली जैसे अनाहट कदम रखते हुए रातपिशाचों

यही स्वातंत्र्य का मार्ग है!

की तरह, हाथों में नंगी तलवारें उठाये निकल पडें।

मराठा अंदर घुस गये हैं, इसकी भनक किले पर गश्त लगा रहे कुछ राजपूत सैनिकों को लग ही गयी। तब तक मराठा तलवारों ने विद्युतवेग से गश्तवालों की आहुति लेना शुरू कर दिया था। "हर हर महादेव" इस रणगर्जना के साथ मालवों के पराक्रम का किले पर अचानक स्फोट हो गया। उस रणघोष के तड़िताघात से पूरा गढ़ का गढ़ ही आहत हो गया। उदयभान के सैनिक दिग्भ्रांत हुए। तानाजी तथा उसके साथियों पर तीन गुना दुश्मन टूट पड़े। जिधर देखे उधर मशालों की दौड़धूप, खड्गों की खनखनाहट, आपसी टकराहट और हताहतों की चिल्लाहट। उदयभान गहरी नींद से अचानक जग गया। खबर सुनते ही ज्वालामुखी जैसा भड़क उठा। तत्काल अपनी नंगी तलवार बिजली जैसी घुमाते–घुमाते वह धुमश्चक्री के ठिकाने की ओर दौड़ पड़ा। वहाँ तानाजी–सूर्याजी दोनों मिलकर राजपूत सेना को मार–काट कर ढेर कर रहे हैं, ऐसा दृश्य उसने देखा। अब अपना काम झट से निपटना चाहिए, दुश्मन के भ्रांति में रहते ही उसकी पूर्णाहुति लेनी चाहिए; अन्यथा बनता काम बिगड़ जायेगा – ऐसा उग्र निर्धार कर तानाजी अरि–पारिपत्य में मग्न था। उस घने अंधकार के रणक्रंदन की भीषणता केवल वर्णनातीत थी।

तानाजी का सामना कौन कर सकता था? लगातार उसकी चढ़ाई चल ही रही थी। उधर, उदयभान भी लड़ते–लड़ते आया और तानाजी से भिड़ गया। क्रोधोन्मत्त होकर वह तानाजी पर पहाड़ जैसा टूट पड़ा। अब दोनों वीराग्रणियों का सीधा आमना–सामना। तब तक चारों दिशाओं से घिरे बहुसंख्यक दुश्मनों से निरंतर लड़ते–लड़ते तानाजी थक गया था। इसके विपरीत अपने पूरे आवेश एवं ताजगी के साथ रणक्षेत्र में अभी–अभी उतर आया था, उदयभान! साथ ही हाथी जैसे दैहिक बल वाला दैत्य ही था वह, फिर भी तानाजी के शौर्यश्री में कोई कमी नहीं थी। बल्कि, अब मुझे सही ढंग का प्रतिस्पर्धी मिला, इसी का आनंद उसके चेहरे पर था। यदि उदयभान गिर गया, तो गुलामी का दैत्य ही गिरने जैसा होगा, मानो हरी पताका गेरुवे में गिरी हो। स्वधर्म–स्वराज्य के नाम की सौगंध खाकर

अपने उस ताजगी भरे दुश्मन से झपट गया, ताना। समूचा कोंडाणा गद्‌गदित हुआ। खड्ग भिड़ गये। कौन किससे कम था? पराक्रम के उन दोनों अग्निपुंजों की भिड़ंत में अनगिनत चिंगारियां झड़ने लगी। खड्गों की खनखनाहट; भयंकर आघात–प्रत्याघात! तभी उदयभान के दैत्य प्रहार से ताना की ढाल टूटकर गिर पड़ी। दूसरी ढाल तब कहाँ से आये? निश्शस्त्र शत्रु पर आघात नहीं करना चाहिए, इस धर्मयुद्ध के नीति का पालन मुगलशाही में पले उदयभान द्वारा होगा क्या? सामने वाले शत्रु की असहाय एवं असुरक्षित अवस्था ही स्वर्णसंधि ऐसा मानकर वह तुरंत तानाजी पर चढ़ गया। दो कदम पीछे हटकर ताना ने अपनी पगड़ी का रूमाल हाथ पर लपेट लिया। तथापि लोहे की ढाल को चकनाचूर करने वाले भीषण खड्गप्रहार का मुकाबला कपड़े का रूमाल कैसे करेगा? अपना अंत अब नजदीक है, यह बात तानाजी के ध्यान में आ गयी। पर महाराज को दिया वचन? तब, उसकी नस–नस में कोई अदम्य अंतःशक्ति का संचार हुआ। अपने प्राणों की परवाह किए बिना ही उसने दुश्मन पर छलाँग मारी। अपने देह की बची–खुची सब शक्ति के साथ उसने अपना अंतिम प्रहार किया। उदयभान पर वज्राघात ही हुआ। परन्तु, उसी समय उदयभान की लहू की प्यासी तलवार भी तानाजी पर हठात गिर पड़ी। प्रचंड पहाड़ों के महाशिखरों के समान दोनों की महाकायाएँ एकसाथ धराशायी हो गयीं।

तानाजी मारा गया! जिसने कभी भी हार का मुँह न देखा हो, ऐसा वह वीर धरा पर गिर पड़ा। अपने नायक की अकल्पित मृत्यु से मालवों का धीरज तथा मनोबल टूट गया। रणक्रंदन के चरमबिंदु के बीच में ही वे सब विजयश्री, शौर्यश्री तथा कीर्तिश्री की ओर पीठ दिखाकर भागने लगे। जहाँ से वे किला चढ़के आये थे, उसी जगह की ओर दौड़ने लगे। वहाँ उनका प्राण–रज्जु ऊपर चढ़ने में प्रयुक्त वह रस्सा लटक रहा था। वह देखते ही सूर्याजी भड़क उठा। तुरंत वह उधर दौड़ते गया। तलवार से उस रज्जु को काटकर गहरी खाई में फेंक दिया। उन भगोड़ों के सामने खड़े होकर आसपास के गिरी–कंदरों में प्रतिध्वनित हो, इस तरह से वह दहाड़ने

लगा, "डरपोक कहीं के, कहाँ निकलें? आपका सूबेदार वहाँ मरा पड़ा है, उसके पवित्र प्राणों का, देह का अपमान करते चोरों के समान भाग रहे हो? कौन–सा मुँह लेकर महाराज के सामने खड़े रहोगे? कायरों, स्वराज्य के कीर्ति को ही कालिख पोतकर तुम यहाँ से जाओगे क्या? उससे बेहतर होगा कि तुम यहीं पर लड़ो और मरो; अथवा शौर्य दिखाते हुए किला जीतकर ही वापस लौटो।"

सूर्याजी के उन चार वाक्यों ने सिंहगढ़ का इतिहास ही बदल डाला। मालवा वीरों के नस–नस में स्वाभिमान, स्वातंत्र्य का गर्म खून फिर से संचारित हुआ। वे सब रणांगण को लौटे। पहले से भी सौ गुना अधिक आवेश के साथ दुश्मनों पर टूट पड़े। उनमें से हर एक योद्धा साक्षात् तानाजी ही बना, मानो उस वीर हुतात्मा की अतृप्त आत्मा ही उनका रूप धारण कर किले पर अंतिम विजय प्राप्त करने की जिद्द से निकल पड़ी हो। उस आवेश के सामने दुश्मनों की फौज काँप उठी। देखते ही देखते शत्रु पक्ष के हजार से भी अधिक सैनिक मारे गये। और क्या आश्चर्य! गढ़ चढ़कर तानाजी के साथ आये हुए पाँच सौ मालवा सैनिकों में से मृत हुए केवल पचास लोग। कोंडाणा वश में आ गया। तथापि शिकार जीतने वाले सूर्याजी को एवं अन्य को आनंद अधिक हुआ था या विषाद, कैसे बतायें? उन सब को अब एक ही चिंता थी – "तुम्हारा सूबेदार, मेरा ताना कहाँ है?" ऐसा महाराज ने पूछा, तो क्या उत्तर दें?

राजगढ़ पर उस रात शिवाजी महाराज की नींद ही उड़ गयी थी। उनकी आखें तो छः मील दूर स्थित सिंहगढ़ पर ही स्थिर हुई थी। क्या तानाजी भी उनकी एक आँख जैसा ही नहीं था? तभी सिंहगढ़ पर एक छोटी ज्वाला ऊपर उठी। देखते–देखते वह एक भीषण ज्वाला–पुंज ही हुआ। गढ़ कब्जे में आ गया। उसके विजय संकेत के रूप में कोंडाणा पर घास के एक ढेर को ही लगाई आग थी वह। महाराज के मन की अनेक दिनों की इच्छा पूरी हुई थी। अपने बाल–मित्र तानाजी का अभियान उनके सीने में समा नहीं पाया। वाह, कैसा साहस! मित्र हो, तो ऐसा! ताना याने स्वराज्य का महाभाग्य। पीछे, दसों हजारों सेना–सरंजामों के

साथ जसवंतसिंह ने उसी सिंहगढ़ की मोर्चेबंदी की थी। महीनों तक राह देखकर किले के ऊपर से हुए हमलों में मार खाकर, पराभूत होकर, वह वापस गया था। उतना बलाढ्य किला! उसे केवल कुछ ही घंटों में और वह भी मात्र पाँच सौ मालवों के साथ मेरे ताना ने जीत लिया। महाराज ने उसे वहीं अंतःकरणालिंगन किया। अपना हृदय ही बिछाकर, वे उसकी प्रतीक्षा करने लगे। आगरा के बाद, स्वराज्य विस्तार करने में, एक नयी विजय–माला मे यह सुंदर–सा पुष्प पिरोने वाले अपने प्राणप्रिय मित्र के दर्शन के लिए, स्वागत के लिए।

परंतु, उतने में ही सिंहगढ़ से दूत आया। उसके साथ वार्ता भी आयी। तानाजी गया। अब कभी भी पास लौट ही न पाए, इतना दूर चला गया। शिवाजी के प्राण ही मुँह में आ गये और एक भाई को मृत्यु ने महाराज से अपने पास खींच लिया था। "एक गढ़ आया, परंतु एक और गढ़ गया।", महाराज ने कहा। सिंहगढ़ पर तानाजी के शौर्य–बलिदान के उस गाथा की परिसमाप्ति, महाराष्ट्र के घर–घर में आज भी "गढ़ आला, पण सिंह गेला" – इस भावोद्गार के साथ ही होती है।

इसी समय राजाराम का जन्म हुआ, तानाजी के अलगाव दुःख ही मानो शांत करने!

..... ५ .....

औरंगजेब के लिए तो हर नया दिन नयी–नयी खबरों का मौसम ही साबित हो रहा था। शिवाजी ने आज वहाँ हमला किया; वह किला कब्जे में लिया; कल उधर हमला किया; यह गढ़ वश में किया इत्यादि। पुरंदर, कल्याण, लोहगढ़ आदि एक–एक कर, एक से तीव्रतर वेग में दूसरा, स्वराज्य के शासन में आ गये। स्वयं महाराज ही तीस हजार की सेना लेकर विजय–यात्रा पर निकले थे। चार महीनों के अंदर ही सत्ताईस दुर्ग स्वराज्य के वश में लाये गये। उनका निरीक्षण करने और दक्ष शासन की व्यवस्था के लिए महाराज ने व्यवहार–निपुण निलोपंत सोनदेव की नियुक्ति की।

तथापि सोनदेव जैसे जन्मजात संघर्षप्रिय व्यक्ति को वह नया काम भाया नहीं। पराक्रम दिखाने का सुअवसर छोड़कर। चहारदीवारी में लेखा–जोखा करते बैठना उसे रास नहीं आया। क्षणमात्र वह अस्वस्थ हुआ। मुझे पहले जैसा बाहु–पराक्रम दिखाने का अवकाश ही आगे भी क्यों न दिया जाये? एक बार महाराज से उसने पूछा भी। दोनों ही काम स्वराज्य के लिए उतने ही महत्त्वपूर्ण हैं, ऐसा महाराज ने उसे विनम्रता से समझाया। उसके मन का उद्वेग झट से हट गया। आत्म–संतुष्ट होकर अपने हाथ का खड्ग बगल मे रखकर लेखनी पकड़ कर बैठ गया। ध्येय हासिल करने के लिए अपनी इच्छा–अनिच्छा छोड़कर, नेता का आदेश हर्ष के साथ सिरसा–वध मानना चाहिए। अनुशासन, संयम इसे ही कहते हैं। ऐसे संयमी, ध्येयनिष्ठ सेवक थे, इसीलिए उतनी भयावह परिस्थिति में भी स्वराज्य स्थापना साकार हो सकी।

दिलेर–मुअज्जम–जसवंत के बीच का मनमुटाव अब अत्यंत तीव्र हो गया। औरंगजेब ने दिलेर को वापस बुलवा कर बचे दोनों को एक दूसरे से दूर रखा। महाराज को भी यह व्यवस्था पूर्णरूपेण सही लगी।

औरंगजेब के दिमाग में शिवाजी का नामोनिशान मिटाने की सोच चल ही रही थी। उसके अनुसार उसने एक योजना बनायी। सह्याद्रि के गिरि–दुर्गो में, घने जंगलों में शिवाजी को परास्त करना मुश्किल ही नहीं, नामुनकिन भी था। इसीलिए उसे वहाँ से बाहर निकालने के लिए शहजादा मुअज्जम अपने वालिद औरंगजेब के खिलाफ कोई झगड़ा–फसाद खड़ाकर शिवाजी से मदद माँग ले। दोनों मिलकर दिल्ली के तख्तो–ताज पर कब्जा करने उत्तर में आ जाएं। तब समय की ताक में रहकर शिवाजी को या तो कैद करेंगे या खत्म। यही थी बादशाह की साजिश। औरगंजेब ने इसकी पूर्व–तैयारियाँ भी कर रखी थी। तथापि वह 'चूहा' जाल में फँसा नहीं। मुगल सियार के चक्कर में मराठा सिंह आया नहीं। मुअज्जम के बार–बार प्यार–भरा न्यौता देने के बाद भी शिवाजी ने अपनी सेना के साथ जाकर उससे हाथ मिलाना स्वीकार नहीं किया।

सन् १६७० ई. में महाराज का सूरत–प्रेम फिर एक बार उमड़ पड़ा। ठीक है, उनकी सवारी फिर से सूरत की ओर निकल पड़ी। वह भी दीपावली लक्ष्मी–पूजन के शुभ मुहुर्त पर ही! इस दूसरे हमले के समय, फ्रांसीसी लोगों ने वस्त्रालंकार तथा गोलाबारूद लाकर खुद ही महाराज को अर्पित किया तथापि अंग्रेज मात्र झट से झुके नहीं। वे तीन दिनों तक लड़ते रहे। आखिर जब उन्हें यह यकीन हुआ कि अब शिवाजी उन्हें पूरा नेस्तनाबूद करके ही दम लेगा; तब उन्होंने अपने दो दूतों के साथ वस्त्रालंकार, धनदौलत आदि नजराना शिवाजी को भिजवा दिया। और लड़ाई बंद की। इस घटना से स्पष्ट हुआ कि आगे चलकर हिंदुस्तान में राज्य संपादन करने में अंग्रेजों का पौरुष कामयाब होगा या फ्रांसीसी लोगों की दुर्बलता सफल होगी इसकी मानो वह पूर्वसूचना ही थी। सूरत अपनी जमा दौलत, संपत्ति, ऐश्वर्य आदि के साथ एक बार और महाराज पर प्रसन्न हुआ। पीछे औरंगजेब ने शिवाजी के आगरा भेंट के संदर्भ में खर्चे और मुआवजा का एक लाख रुपये संभाजी के जागीर से वसूल किया था, इसकी याद यहाँ होना स्वाभाविक है। महाराज उसका पूरा ब्याज–चक्रवृद्धि ब्याज समेत वसूल कर लौट आये। शिवाजी की इस दूसरी भेंट के बाद सूरत को उनका खौफ़ निरंतर चिपका ही रहा; सूरत बदसूरत बन गया। मुगल शानोशौकत और दौलत की एक आँख सदा के लिए सूख गयी। सूरत के स्थान पर धीरे–धीरे मुंबई सिर उठाने लगा। आज के मुबंई के महत्व तथा विकास का प्रारंभ इस तरह हुआ।

तदुपरांत, दिंडोरी में चले युद्ध में तो शिवाजी के सामने इखलास खान, दाउद खान जैसे नामांकित मुगली सरदारों की भारी हार हुई। उनकी फौज धूमिल हुई। उनके तीन हजार सैनिक खड़े–के–खड़े ही मराठा तलवारों की आहुति बन गये। महाराज की प्रचंड विजय हुई। बाद में अपार धन भी उनके हाथों लगा। महाराज ने फिर से जंजीरे पर चढ़ाई की, परंतु वह किला आज भी झुका नहीं। महाराज का पावन जन्मस्थान शिवनेरी भी उनके हाथ नहीं लगा।

..... ६ .....

इसी समय, बुंदेलखंड का स्वातंत्र्य भी छीना गया था। वहाँ का प्रमुख राजा चंपतराय औरंगजेब के साथ लड़ते–लड़ते मारा गया था। चंपतराय की मृत्यु के बाद उसकी पत्नी खड्ग से अपना सिर कटवा कर मर गयी। चंपतराय का पुत्र छत्रसाल एक तेजस्वी राजकुमार था; बुंदेलखंड की स्वाधीनता का सपना उसकी पलकों में फुदक रहा था। तथापि उसे किस प्रकार पूरा करना है, यह उस कच्ची उम्र वाले छत्रसाल को पता नहीं था। आस–पास का माहौल भी उसके विरोध में ही था। शेष सब हिंदु राजा परकीयों की गुलामी करने की होड़ में ही व्यस्त थे। अपनी बेटी–बहिनों को बादशाह को अर्पण करने में ही अभिमान मानते थे। यह सब देखकर छत्रसाल की आत्मा विद्रोह पर उतारू हो जाती थी। परंतु मार्ग पता न होने से वह छटपटा रहा था। उसी मनःस्थिति में वह मिर्जाराजा जयसिंह के आश्रय में आकर उसकी सेना में भर्ती हुआ। दिलेर खान के साथ वह पुरंदरगढ़ की मोर्चेबंदी में भी शामिल हुआ था। उसने वहाँ अतुल पराक्रम दिखाया, लेकिन उसकी ओर किसी ने आँख उठा कर भी नहीं देखा। तभी उसे परकियों की चाकरी क्या चीज होती है, इसका मजा चखने को मिला।

छुटपन से ही छत्रसाल के कानों में शिवाजी का नाम तथा कारनामों की बातें आती थी। उनका साहस, स्वातंत्र्य–समरों की स्फूर्तिगाथा सुन कर वह रोमांचित हो उठा था। इसी कारण, चाकरी करनी ही हो तो स्वधर्म--स्वराज्य के संरक्षक उस शिवाजी के चरणों का दास बनना पसंद करूंगा; विधर्मी, अत्याचारी औरंगजेब का गुलाम कतई नहीं बनूँगा – ऐसा उस नवयुवक ने अपने मन में ठान लिया था।

औरंगजेब ने दिलेर खान तथा बहादुर खान को फिर एक बार शिवाजी पर हमला करने भेज दिया। तब छत्रसाल भी उनके साथ था। दक्खन में आने के बाद, एक दिन उसने दिलेर खान के पास जाकर शिकार खेलने जाने की इजाजत माँगी। अनुमति मिलते ही, फौज की छावनी से अपनी पत्नी तथा साथियों के साथ निकल पड़ा। गिरि–कंदराओं

के अपरिचित राहों पर दिन–रात दौड़ते–हाँफते उसने भीमा, कृष्णा आदि नदियों को पार किया। अंत में, स्वराज्य की सीमा में महाराज के सेना–शिविरों में पहुँच गया। बुंदेलखंड का राजकुँवर छत्रसाल अपने परिवार के साथ अपनी ओर आ रहा है, यह समाचार गुप्तचरों द्वारा शिवाजी महाराज तक पहले ही पहुँच चुका था। महाराज ने उनके स्वागत की उत्कृष्ट व्यवस्था की थी। फिर भी उन्हें अचंभा; यह नवतरुण इस तरह क्यों दौड़कर आ रहा है।

अपने डेरे में छत्रसाल प्रवेश कर ही रहा था कि महाराज ने खड़े होकर प्रेम भरे स्वर में, "आइए, वीर योद्धा छत्रसालजी" ऐसा कहकर स्वागत किया। स्वतंत्र महाराष्ट्र ही मानो खड़ा होकर स्वाधीनता के उत्सुक बुंदेल का स्वागत कर रहा था। इतना मनोभावन, अपूर्व दृश्य था वह। राजपुरुष शिवाजी को देखने वह कितनी लालसा, कितनी परेशानियों–परिश्रम, कितनी पहाड़ों–नदियों को पार कर दौड़–धूप करके आया था। आख़िर अपनी प्राणों की आस सफल हुई, यह देखकर छत्रसाल का हृदय पुलकित हो उठा। महाराज ने उस वीर किशोर को परम वात्सल्य से अपने पास बुलाकर बैठा लिया। "बताइए, अब सब कुछ", ऐसा बड़ी आत्मीयता से पूछा। छत्रसाल ने अपने जीवन की पूरी रामकहानी बतायी। अंत में, महाराज से आश्रय की याचना की। स्वराज्य के एक सेवक के नाते अपना स्वीकार हो, इस व्यथा के साथ उसने प्रार्थना की।

छत्रसाल के एक–एक शब्दों में स्फुटित हो रही उसके अंतःकरण की वेदना, तिलमिलाहट, आकांक्षाएँ देखकर महाराज का हृदय भी उमड़ आया। उन्होंने अपनी भावपूर्ण ओजस्वी वाणी में कहा, "छत्रसाल, आप क्षात्रकुल के मुकुटमणि हैं। आप बुंदेलखंड वापस चले जाइए। उसे मुक्त करिए। तुर्क हाथी के समान होंगे, लेकिन आप सिंह हो। आप ही अपनी सेना खड़ी करिए, लड़िए, शत्रु को भगाइए। बुंदेल को स्वतंत्र बनाइए। चिन्ता मत करो, आप विजयी होंगे। हम दोनों के एक साथ रहकर लड़ने से बेहतर होगा कि अलग–अलग जगहों पर संघर्ष करें। रणनीति की दृष्टि से दो–दो मोर्चों पर औरंगजेब का दमछाक करना उचित तथा

आसान होगा। मेरे पास सेवक बनकर रहने से आपके सब पराक्रम का श्रेय भी मुझे ही मिलेगा। वैसा न हो। आप एक स्वतंत्र राजा के नाते झलकते रहें, यही मेरी इच्छा है। तुम्हारी विजय–दुंदुभी शीघ्र ही हमारे कानों में आ जाये!"

महाराज का एक–एक शब्द अग्निपुंज की भाँति छत्रसाल के रोम–रोम में स्फूर्ति–संचार करती गयी। उसने बुंदेल को स्वतंत्र करने का वीर–संकल्प लिया। तत्पश्चात् महाराज से विदाई लेकर वह सीधा बुंदेलखंड को वापस गया। आखिर छत्रसाल ने महाराज के आदेशानुसार अतुल पराक्रम से बुंदेलखंड को स्वतंत्र किया। "यमुना से नर्मदा तक, चंबल से टास तक फैला है उसके तेग का तेज" ऐसा भूषण कवि ने उसके बारे में अपने काव्य में वर्णन किया है। आगे छत्रसाल के वृद्ध होने पर, मोहम्मद बंगशाह ने बुंदेलखंड पर आक्रमण किया। तब छत्रसाल ने पहले बाजीराव पेशवा से सहायता की याचना की। बाजीराव ने शिवाजी की परंपरा को ही आगे बढ़ाते हुए दौड़ते जाकर उसकी मदद की। खुद के व्यक्तिगत बड़प्पन की किंचित् मात्र भी कल्पना रखने वाला कोई भी हो, छत्रसाल जैसा महापराक्रमी हिंदु राजा को अपने पास सरदार की हैसियत से रखे बिना नहीं रह पाता। तथापि, विशाल राष्ट्रीय दृष्टि होने के कारण ही शिवाजी महाराज ने छत्रसाल को वैसी स्वतंत्र प्रेरणा देकर भेज दिया। तब शिवाजी के पास था – केवल हथेली भर राज्य। परंतु, उनकी दृष्टि हिंदुस्थान के पूरे लंबाई–चौड़ाई पर दौड़ती थी।

..... ७ .....

किला जीतने का सिलसिला तो जारी ही था। लेकिन जंजीरा झुका नहीं। शिवाजी के सरदार उसे अपने अधीन करने के लिए गत पंद्रह सालों से भरसक प्रयत्न कर ही रहे थे। पिछले हमलों में उसके अड़ोस–पड़ोस का पूरा प्रदेश तथा सात किले शिवाजी के वश में आ गये थे। मुँह तक आया निवाला छीनने के समान जंजीरा उनके हाथों से फिसल गया था। अब उसे हासिल करने हेतु स्वयं महाराज ही निकले। राजगढ़ से छः मील दूर जाकर उन्होंने अपना पहला पड़ाव डाला। उसी रात में उधर ४० मील

की दूरी पर जंजीरे के सिद्दी कासिम ने अपने हाथों की चालाकी दिखा दी। उसी दिन समुद्र मार्ग से आकर स्वराज्य के दंडा–राजापुर किले पर धावा बोल कर अंदर घुस पड़ा। एकाएक हमला करने वाले उन दुश्मनी फौजों को देखकर होलिकोत्सव के मौज–मस्ती में मशगूल मराठा सैनिक थोड़े–से डर जरूर गये। परंतु तत्काल स्वयं को सम्हालते हुए उन्होंने भयंकर प्रतिकार करना शुरू किया। तभी क्या हुआ, यह समझने से पहले ही गोलाबारूद के कोठी को अचानक आग लग गयी। उसके प्रलयंकारी विस्फोट से समूचा गढ़ ही थर्रा उठा।

इधर ४० मील दूर पर, निद्राधीन हुए महाराज एकाएक जग गये। आस–पास के लोग, "क्या हुआ, क्या हुआ?" ऐसा महाराज को पूछने लगे। महाराज को एक अनाकलनीय ऐसी तिलमिलाहट होने लगी। उन्होंने कहा, "दंडा–राजापुर कोई संकट में फँसा है, निश्चय ही!" सब साथी चकित हुए। महाराज ने तुरंत एक साथी को राजापुर की ओर दौड़ाया। सुबह तक वह हाँफते वापस आया "दंडा–राजापुर हाथों से गया", यही समाचार था। कितनी अद्‌भुत थी महाराज की संवेदना–शक्ति! उनके हृदय की एक–एक धड़कन स्वराज्य के जीवन–नाड़ी के स्फुरण के साथ, सुख–दुःख के साथ समस्पंदी ही बन गयी थी। इस बार भी महाराज को हताश होकर वापस राजगढ़ लौटना पड़ा।

उसके पश्चात् सालेर का युद्ध। मराठों के अधीनस्थ सालेर को जीत लेने की जिद पकड़कर दिलेर खान तथा बहादुर खान ने पचास हजार की फौज के साथ घेराबंदी कर दी। सरसेनापति प्रतापराव गुर्जर और मोरोपंत पिंगले को महाराज से सूचना गयी कि मुगली सेना को पूर्णरूपेण ध्वस्त करें। मराठों का संख्याबल तब था, चालीस हजार। मुगलों की उस अपार सेना के साथ खुले मैदान में घनघोर युद्ध हुआ। मराठे विजयी हुए। नामीगिरामी दुश्मनी सरदारों का संहार हुआ। अगाध युद्ध–सामग्री, हाथी, घोड़े, ऊँट, धन–संपत्ति मराठों के हाथ लगी। तत्कालीन स्वराज्य–स्थापना के युद्धों के इतिहास में यह एक महत्वपूर्ण ऐसा नया पड़ाव था। सालेर युद्ध के बाद छुटपुट लड़ाइयों में ही नहीं बल्कि मैदानी युद्धों में भी मुगलों

को पानी पिला सकते हैं; ऐसा प्रगाढ़ आत्मविश्वास शिवाजी महाराज के सैनिकों मे जगा। गुस्से से पागल बना औरंगजेब ने पराभूत बहादुर खान को बड़ा तीखा पत्र लिखा, "हार गया हूँ, यह बताने के बजाए तू लड़ाई में मर क्यों न गया? अब भी क्यों न हो, शिवाजी को नेस्तनाबूद करो।" उसका जबाव भी बहादुर खान ने उसी मिजाज में दिया, "शिवाजी को तो आपकी राजधानी में ही बड़े तगड़े बंदोबस्त में रखा था ना? फिर भी, परिंदे की तरह वह उड़ ही गया ना? मेहरबानी करके इसकी याद से तो आपको यकीन होगा कि हमने कोई फर्ज-फरामोशी नहीं की है। एक बार मान भी लिया कि हमारे पास एक लाख घुडसवारों की फौज होती, तो भी इस पहाड़ों-वादियों में शिवाजी के फौज को हराना नामुमकिन है। इसलिए उसके साथ समझौता करना ही बेहतर होगा, ऐसा सोचकर हमने शिवाजी के पास एक मुत्सद्दी ब्राह्मण को भेजा था। उसके जवाब में शिवाजी ने काजी हैदरनाथ के यावनी दूत को हमारे पास भेज दिया!" यह पत्र देख कर औरंगजेब को क्या लगा होगा? अनुमान लगाइए।

शिवाजी के वृद्धिगत हो रहे पराक्रम को पहला मुजरा करने वाला मुसलमान शाह भागानगर का था। वहाँ का कुतुबशाह शिवाजी को चौथ भेजने लगा।

१६७२ ई. में बीजापुर के अली आदिलशाह की मौत हुई। रिवाज़ के अनुसार, गद्दी के लिये झगड़े शुरू हो गये। इस स्वर्णावकाश का लाभ उठाये बगैर महाराज कैसे रहेंगे? उनके विश्वासपात्र योद्धाओं ने विद्युत्वेग से अपने घोड़े दौड़ाये। नये-नये मुल्क जीतकर स्वराज्य में शामिल करना शुरू हुआ। उसमें अत्यंत महत्वपूर्ण याने पन्हालगढ़ का शामिलीकरण। पीछे कभी सिद्दी जौहर उस किले के चारों ओर अपनी तीस हजार फौज के साथ तीन महीनों तक घेराबंदी कर बैठा था, फिर भी उसे वह जीत नहीं पाया था। वैसे गढ़ को जीतने के उद्देश्य से शिवाजी के अखाड़े में तैयार हुआ कोंडाजी फर्जन्द नामक योद्धा केवल साठ सैनिकों के साथ निकल पड़ा। घने अंधकार में उस उत्तुंग दुर्ग पर हमला किया। सब लोग चीते जैसे चुपचाप गढ़ पर चढ़ गये। क्षणार्ध में किलेदार का खात्मा

किया। देखते ही देखते किला कब्जे में लेकर उसके उन्नत बुर्जों पर स्वराज्य का ध्वज फहरा दिया। कुछ ही घंटो में हासिल किया हुआ अद्भुत विजय! एक-एक का साहस दुर्दमनीय! यह सब शिवाजी के शिक्षा-संस्कारों का ही चमत्कार था। सैनिक साठ ही थे; परंतु पचहत्तर दिनों से तैयारी चली थी उस योजना को सफल बनाने की। जौहर के तत्कालीन तीस हजार सुसज्जित, बड़ी भारी फौज तथा उनका तीन महीनों का कालावधि कहाँ? और उसकी तुलना में, कोंडाजी के अब के साठ अधनंगे, मालवा छोरों का कुछ ही घंटो का हिसाब कहाँ? संख्या अथवा समयावधि का नहीं, बल्कि ध्येयनिष्ठा का जादू था वह!

पन्हाला हाथों से चला गया, यह खबर बीजापुर पहुँची। नये सुल्तान सिकंदर आदिलशाह की छाती ही फट गयी। फौरन उसने अपने शमशेर-बहादुर सरदार बहलोल खान के साथ बड़ी भारी फौज देकर शिवाजी का बंदोबस्त करने भेज दिया। खान स्वराज्य में कदम रख ही रहा था कि महाराज ने सरसेनापति प्रतापराव गुर्जर को आदेश दिया, "शत्रु को पता चलने के पहले ही अचानक धावा बोलकर उसे ध्वस्त कर दो।" उसके अनुसार प्रतापराव ने अपनी सेना का विभाजन किया और योजनाबद्ध रीति से व्यूह-रचना की। उमराणी तक चुपचाप सरकते हुए बहलोल खान पर वह गरुड़ की भाँति टूट पड़ा। इस तरह के आघात की कल्पना खान ने अपने सपने में भी नहीं की थी। मराठों की एक टुकड़ी ने उसके आगे एक ओर का रास्ता रोक रखा। दूसरी ने पीछे से उस पर हमला किया। दायें-बायें सब दिशाओं से खान की सेना पर वज्र-प्रहार प्रारंभ हुए। चहुँ ओर से मार, पर पार होने का मार्ग नहीं, उसके पूरी फौज को पेय जल की आपूर्ति करने वाले जलाशयों की राह पर भी प्रतापराव वेताल जैसा खड़ा हुआ। मराठा वीरों ने बीजापुर के प्रमुख सरदारों को चुन-चुन कर मार गिराना आरंभ किया। पीने के लिए बूंद भर पानी नहीं, कंगाल बना बहलोल खान असहाय अवस्था में प्रतापराव के पास गिड़गिड़ाने लगा। इसके बाद शिवाजी के साथ झगड़ा मोल नहीं लूँगा, ऐसी शपथ उसने खायी। खान अपने ऊपर अब हमला करने का दुस्साहस नहीं

करेगा, ऐसा विश्वास प्रतापराव को भी हुआ। विजय के औदार्य में खान की माँग मानकर जीवनदान देते हुए, प्रतापराव ने उसे वापस जाने की अनुमति भी दी।

"बहलोल खान का पूर्ण पराभव हुआ। तथापि उसे वैसे ही छोड़ दिया गया।" यह वार्ता सुनते ही शिवाजी महाराज भड़क उठे। सरसेनापति जैसे उच्चपदस्थ, जिम्मेदार व्यक्ति ने हाथ लगे शत्रु को छोड़ दिया याने क्या? स्वराज्य के संघर्ष में ऐसा आत्मघाती औदार्य दिखाने की अनुमति किसने उसे दी थी? झट से महाराज ने प्रतापराव को एक पत्र लिखा, "किससे पूछकर समझौता किया? खान को क्यों छोड़ा?" विजय के आनंद में चूर सरसेनापति पर अपने नेता की ये बातें वज्रपात करती गयी! उसका विजय–प्राप्ति का आनंद पल ही भर में झर्र से उतर गया। महाराज के लिए अपने प्राण ही न्यौछावर करने वाले उस जीवश्च–कंठश्च मित्र के हृदय का संकट शब्दों से परे था। अब इस जन्म में महाराज को अपना चेहरा वह दिखाये तो भी कैसे? वह बहुत छटपटाया! उस समय, "बहलोल खान को पूरा मट्टियामेट किए बगैर मुँह मत दिखाना", ऐसा शिवाजी का दूसरा पत्र भी उसे मिला, तब तो प्रतापराव की मनोवेदना सीमा लाँघकर परे गयी। फिर भी, वैसी मानसिक पीड़ा–उद्वेग में भी महाराज के प्रति उसकी निष्ठा किंचित भी डिगी नहीं। इसके विपरीत, उस निष्ठा ने एक अतिरेकी उग्र मार्ग का अवलंब किया।

बहलोल खान जीवनदान पाकर वापस आया ही था, परंतु अपने अपमान से गुस्सैल होकर उसने फिर से स्वराज्य पर हमला किया। आखिर उसने अपनी पैदाईशी हरामीपन दिखा ही दिया। उसके प्रति प्रतापराव ने दर्शाया औदार्य याने जहरीले साँप को दूध पिलाने जैसा था। महाराज की सोच अक्षरशः सच निकली। अब तो अपने अक्षम्य अपराध का तीव्र एहसास प्रतापराव के मन को बींधने लगा। उसने अपनी गलती का कठोर प्रायश्चित कर लेने का निर्धारण किया। विश्वासघाती बहलोल खान पर तो उसका रोम–रोम त्वेष से झुलस रहा था। तभी खान भारी फौज

लेकर नेसरी की ओर आ रहा है, ऐसी खबर मिली। खान का नाम सुनते ही प्रतापराव का आक्रोश और भी भीषण बना, उसका विवेक हवा हो गया। केवल छः वीर साथियों को लेकर, उसने खान पर चढ़ायी की। असंख्य शत्रु सैनिकों को धराशायी करते हुए, उसने स्वयं भी उसी वीर–भूमि में हौतात्म्य प्राप्त किया। दिन था १६७४ ई. की शिवरात्रि का! 'शिव' के महापूजा में स्वराज्य के सरसेनापति का जीवनपुष्प समर्पित हुआ!

सरसेनापति की मृत्यु। शिवाजी का दाहिना हाथ – प्रतापराव गुर्जर की मृत्यु। वार्ता सुनते ही महाराज को पराकाष्ठा की पीड़ा हुई। "विजय प्राप्त किये बिना चेहरा मत दिखाओ ऐसा लिखा था। मुँह दिखाने के लिए भी वह अब जीवित नहीं रहा ना! अब कभी उसका चेहरा दिख भी नहीं पायेगा! मेरे उस वाक्य से ही ऐसा हुआ है। मेरा दाहिना बाजू ही गिर गया।" इस प्रकार महाराज ने बहुत शोक किया। उसके साथ ही अब खान का निपात करने वाला कौन? यह चिंता भी उन्हें सताने लगी। तभी प्रतापराव गुर्जर का एक साथी सरदार आनंदराव ने महाराज को एक पत्र लिखा, 'सरसेनापति प्रतापराव गये। लेकिन चिंता की कोई बात नहीं, उनके स्थान पर मैं हूँ।" इस कदर निष्ठावान, कर्तव्यशाली अनुयायियों की अखंड श्रेणी का निर्माण करना ही शिवाजी महाराज के जीवन की सर्वश्रेष्ठ साधना थी।

छः वर्ष बीतने के बाद, प्रतापराव के प्रति अपनी आत्मीयता एवं अभिमान के प्रतीक के रूप में उसकी लड़की का विवाह अपने पुत्र राजाराम से किया। तत्कालीन रूप से उस क्षेत्र का सेनापति पद आनंदराव को प्रदान किया। उसने अपने पत्र द्वारा दिए अभिवचन के अनुसार, प्रतापराव की रिक्तता पूर्णरूपेण भर दी। बहलोल खान को पूरा नेस्तनाबूद कर उसके मुल्कों से लूटी हुई संपत्ति–सामग्री तीन हजार बैलों पर लादकर महाराज के चरणों में अर्पित की। महाराज ने प्रतापराव के स्थान पर हंबीरराव मोहिते को सरसेनापति नियुक्त किया। उसी दायित्व के योग्य, कुशाग्र बुद्धि वाला ऐसा पराक्रमी योद्धा था वह।

..... ८ .....

स्वराज्य स्थापना कार्य का पहला सोपान अब सफल हुआ था। अड़ोस–पड़ोस के सब दुश्मनों के गरूर का दमन कर अपने धर्म–संस्कृति के साथ सब हिंदु बिना हिचकिचाहट खुलेपन से विचर सकें, ऐसा राज्य निर्माण हुआ था। अफजल खान से लेकर बहलोल खान तक बीजापुर के अतिरथी–महारथी सब मटियामेट हुए थे। गिरि–कंदरा के छुटपुट युद्धों में ही नहीं, बल्कि सीधे मैदानी संघर्षों में भी दुश्मनी फौजों का खात्मा करने का प्रचंड सामर्थ्य स्वराज्य ने प्राप्त किया था। दिल्ली के शाइस्ता खान से लेकर दिलेर खान तक के नामी सिपहसालार भी हार मानकर हताश हुए थे। बलाढ्य मुगलशाही का अत्यंत क्रूर, कपटी, छल–छद्म में माहिर आलमगीर औरंगजेब जैसा शख्स भी निराशा से हाथ पर हाथ धरे बैठने की अवस्था तक आ पहुँचा था। पश्चिमी तट पर बद्धमूल हो रहे अंग्रेज, डच, पुर्तगाली आदि को भी इस देश के स्वातंत्र्य–प्रेरित प्रतिकार–शक्ति का प्रथम प्रहार सहना पड़ा था। उनके राजकीय षड्यंत्रों एवं धार्मिक आक्रमणों पर प्रबल प्रतिबंध आ गया। भागानगर का कुतुबशाह भी स्वराज्य को चौथ देने लगा।

शून्य से ही स्वराज्य की नवसृष्टि हुई थी। हिंदुराष्ट्र मृत्युंजयी है, यह फिर से एक बार सिद्ध हुआ था। वनवासी वानरों की सहायता से श्रीराम ने जिस तरह रावण को धराशायी किया था; गोकुल के ग्वाल–बालकों के बल पर श्रीकृष्ण ने जैसे गोवर्धन पर्वत उठा कर रक्षण किया था; बिल्कुल उसी प्रकार अनपढ़, अधनंगे मावले छोरों की टोलियों द्वारा शिवाजी महाराज ने देवी–देवताओं का, साधु–संतों का रक्षण किया था। राज्य, कोष, दुर्ग, सेना सब कुछ निर्माण हुआ था।

शिवाजी महाराज के असामान्य विभूतिमत्व के बारे में न केवल महाराष्ट्र की जनता, अपितु समस्त हिंदुस्थान के अनेकानेक हिंदु राजा–महाराजाओं से लेकर जनसामान्यों तक सभी के मन में पूज्य भाव अंकित हुआ था। शिवाजी महाराज सही अर्थ में तत्कालीन हिंदु हृदयों के एक मात्र आशा–ज्योति बन गये थे, समग्र हिंदुभूमि के स्वातंत्र्य–संघर्ष

दिव्य स्फूर्तिधाम ही बन चुके थे। बुंदेलखंड के स्वाधीनता की दीक्षा लेने वीर छत्रसाल स्वयं शिवाजी महाराज के पास आया था, यही उसका एक जीता–जागता साक्ष्य है।

महाराज के धवल कीर्ति से पुलकित होकर हिंदी के श्रेष्ठ कविराय भूषण ने दक्षिण में आकर अपने 'शिवराज–भूषण' नामक रचना द्वारा मानो काव्य–गंगावतरण ही किया। इस व्याख्यान–माला के प्रारंभ में उद्धृत चरण कविराय भूषण का ही है। दूसरे एक स्थान पर उसने, "चंदन में नागसाँप, इंद्र के गजेंद्र में मद–दोष, शेष में विष, धवल शंकर का कंठ नीला, कमल कीचड़ में, क्षीरसागर में भी कीचड़ है; चंद्र कलाओं से परिपूर्ण होते हुए भी उस में कलंक हैं। हे राजा शिवाजी, तेरे निष्कलंक जैसा निर्दोष क्या है?" ऐसा कहा है। उसी प्रकार तंजाऊर से बारह वर्षीय बहुभाषा विशारद जयराम कवि भी आकर्षित होकर शिवाजी के दरबार में आया था। उसने विविध भाषाओं में शिव–चरित्र पर काव्य रचना की है। महाराज का यशोगान किया है। उस युग–प्रवर्तक शिवा की महिमा ऋषि–मुनि, साधु–संत सब गाने लगे हैं। स्वयं शिवाजी के सद्गुरू रामदास जैसे विरक्त योगी के काव्य–प्रतिभा के भी वे स्फूर्ति–प्रदाता बन गये। "यशवंत, कीर्तिवंत, पुण्यवंत, नीतिवंत, विवेकवंत" ऐसा उन्होंने शिवाजी के प्रशंसा का गायन किया है। अब सामान्य जन तो महाराज को साक्षात् शिवजी का अवतार ही मानने लगे, इसमें क्या आश्चर्य ?

दुश्मनों का दमन हुआ था। साधुओं की रक्षा हुई थी। इससे अलग ईश्वरीय कार्य क्या होता है?

फिर भी कोई एक न्यूनता शिवाजी महाराज को, स्वराज्य को, मुत्सद्दियों को सता रहा था। दिल्ली, बीजापुर तथा अन्य राज्यों के बादशाह, सरदार आदि महाराज को केवल 'सूबेदार' ऐसा ही कहते थे। 'डकैत', 'बगावतखोर', 'पहाड़ी चूहा' आदि संबोधन तो सामान्य–सी बात थी। प्रजा को भी सही मायने में यह एक नवनिर्मित स्वंतत्र राज्य है, ऐसा लगता ही नहीं था। कारण, शिवाजी भला है; परंतु उसके बावजूद वह

केवल एक 'सरदार' या 'सूबेदार' ही है। इसलिए 'राजनिष्ठा' याने बीजापुर–निष्ठा' या 'दिल्ली–निष्ठा' और शिवाजी उसका पात्र नहीं। इसी कारण, स्वराज्य में रहने वाली प्रजा की राज्यनिष्ठा के लिए कोई एक सुभद्र अधिष्ठान नहीं था, वैसे राज्यप्रमुख के आदेश को, राजाज्ञा की मान्यता प्राप्त होना संभव ही नहीं था। दूसरे राज्यों के साथ किए समझौता–पत्रों पर स्वंतत्र राजा के नाते महाराज हस्ताक्षर भी नहीं कर सकते थे। शिवाजी द्वारा जीते गए भू–प्रदेश, किले आदि 'अधिकृत' रीति से किसी दूसरे राजा या बादशाह के ही हैं, लेकिन शिवाजी ने उनको बलात् हथिया लिया है, ऐसा ही उसका अर्थ लगाया जाता था। इसका सीधा मतलब था कि महाराज का समस्त संपादन 'अनधिकृत' था। उसकी 'अधिकृत' सेना भी इसी न्याय से किसी दूसरे परकीय राज्य की सेना बन जाती थी। इसी कारण, उनके द्वारा चलाये जाने वाले सभी स्वातंत्र्य–संग्रामों पर 'राजद्रोह' का ही ठप्पा लगाया जाता था। तत्कालीन रूढ़ि के अनुसार, लोग शिवाजी को 'राजा', 'महाराज' ऐसा संबोधित तो करते थे; मगर वह भी अन्य मराठा सरदारों के नाम के आगे आने वाले 'राजे' विरुद जैसा ही माना जाता था। उन गुलाम मराठा सरदारों की तुलना में शिवाजी की किसी भी प्रकार से भिन्न गणना नहीं की जाती थी। और वह 'राजा' विरुद धारण भी किस प्रकार से किया जाता था? केवल दिल्ली या बीजापुर के बादशाहों की मेहरबानी से!

लोगों में सामाजिक–धार्मिक विवाद उत्पन्न होने पर अधिकृत निर्णय देने लायक तथा सब के द्वारा उसका समान रूप से सम्मान होने लायक स्थान, मान एवं प्रतिष्ठा शिवाजी महाराज को प्राप्त नहीं थी। वर्णाश्रम व्यवस्था के संदर्भ में उठने वाली शिकायतों के बारे में उनके द्वारा दिये गये निर्णयों को अधिकृत धार्मिक मान्यता नहीं थी। समग्र हिंदुस्थान की व्यवस्था ही ऐसी थी। राजस्थान के महाराजपुरुष भी दिल्ली बादशाह के चरण सेवक ही बन गये थे। इंद्रप्रस्थ, देवगिरी, कन्नौज, विजयनगर के सुप्रसिद्ध राज–सिंहासन धूल–धूसरित हो चुके थे। वे सब अनेक छोटे–मोटे सूबों में बँट टूट–फूट गये थे। हिंदु स्वतंत्रता से राज्य करने की क्षमता

रखते हैं, इतना ही नहीं, उन्हें ही राज्य करना चाहिए आदि सब कल्पना से भी परे स्थित बातें हैं; ऐसी जनमान्यता का काल था वह। समस्त हिंदुओं का श्रद्धा–केंद्र बनने की योग्यता रखने वाला एवं समग्र स्वतंत्र राष्ट्रीय साम्राज्य का स्थिर ऐसा केंद्र होने की पात्रता रखने वाला सार्वभौम हिंदु राजसिंहासन तब तक एक भी नहीं था।

हिंदुस्थान के किसी भी कोने में क्यूं न हो, वहाँ की एक–एक अंगुल भूमि भी अपने ही साम्राज्य के अधीन होनी चाहिए, ऐसा दिल्ली के बादशाह का रुतबा था। समस्त देशवासियों के मन में भी वे सीधे दिल्ली से ही शासित हैं, ऐसी भावना बद्धमूल हुई थी। "दिल्लीश्वरो वा जगदीश्वरो वा" इस अंधविश्वास के कारण हिंदुओं की 'राजनिष्ठा' भी विधर्मी आक्रांताओं के लिए ही सुरक्षित थी। इस भूमि के पुत्रों के लिए निष्ठा का कोई एक सर्वमान्य ऐसा केंद्र बचा ही नहीं था। इसलिए दिल्ली की शाही संप्रभुता भंग करते हुए एक नये निष्ठा–केंद्र की स्थापना किये बगैर राष्ट्रीय स्वातंत्र्य–स्वराज्य की नींव मजबूत होना असंभव था। व्यक्त रूप में हो या अव्यक्त, समस्त राष्ट्र के मानस में अनुभावित होने वाली इस टीस का जवाब शिवाजी महाराज के अलावा और कौन दे सकता था। शत्रु–संहार में जिस प्रकार उनका पराक्रम अद्वितीय बन झूम रहा था; उसी तरह राष्ट्र के अंतर्मन को चिपके रोग पर चिकित्सा करने में भी उनकी विधायक प्रतिभा उतनी ही उज्वलता से झलक रही थी। स्वतंत्र, सार्वभौम, हिंदु राजसिंहासन स्थापन करने का निर्णय तो महाराज ने ले लिया।

शिवाजी याने किसी ऐरे–गैरे, विदेशी, विधर्मी बादशाह के कृपापोषित नहीं थे। वे थे स्वयंभू छत्रपति! इस सिंहासन की स्थापना अपने व्यक्तिगत प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए नहीं, बल्कि ध्येयपूर्ति के लिए ही थी। वैयक्तिक प्रतिष्ठा के लिए शिवाजी के जीवन में रत्ती भर भी अवकाश नहीं था। समूचा राज्य ही समर्थ रामदास की झोली में अर्पित करने वाले विरक्त राजयोगी थे वह! परंतु अनिवार्य राष्ट्रीय एवं ऐतिहासिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए ही एक नये श्रद्धापीठ की स्थापना का निर्णय उन्होंने किया।

..... ६ .....

शिवाजी महाराज का राज्याभिषेक! कैसी अमृतमयी कल्पना! यह सुनते ही हिंदुस्थान का हृदय ही आनंद से पुलकित हो उठा।

अब पहला सवाल था – राजधानी कौन–सी हो? सब प्रमुख मुत्सद्दियों ने मिलकर गहराई से विचार–विनिमय किया। गढ़ उत्तुंग होना चाहिए; उसका भाल विशाल होना चाहिए; वहाँ पर स्थापित होने वाले राज्यतंत्र के नजर को समस्त स्वराज्य के चोर–कदमों की छिपी आहट सुनाई दे, दासता की दुर्गंध को पहचान कर उसे जड़ से साफ करने की क्षमता होनी चाहिए। ठीक इसी तरह का एक दुर्ग था – किला–राजगढ़! अन्य सभी दुर्गों के केंद्र में था। चारों ओर घनारण्यों, पहाड़ों–वादियों से घिरा हुआ था। दुश्मनी फौज का वहाँ तक पहुँचना भी दुश्वार, ऐसा किला था वह। स्वराज्य के गर्भ में होते हुए भी एक ओर से समुद्र पर तथा बाकी सब दिशाओं से भूमि पर दृष्टि फेंक सकने वाली जगह पर अजिंक्य ऐसा खड़ा था, वह गढ़ – राजगढ़!

समस्त हिंदु जगत् को मान्य हो, इस प्रकार सांगोपांग, विधियुक्त राज्याभिषेक करने की पात्रता रखने वाला ज्येष्ठ पुरोहित कौन था? समस्त हिंदुओं के अग्रपूजा की अर्हता–प्राप्त, प्रत्यक्ष वेदोनारायण, प्रकांड पंडित गंगाभट्ट काशी से आ पहुँचे। उनके साथ एक हजार प्राज्ञ ब्राह्मण देश के विविध भागों से रायगढ़ पर आकर सम्मिलित हुए। अखिल भारत की दृष्टि से तथा अखिल हिंदु जगत की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाला गौरव–अभिमान प्रदायक समारोह था वह! आमंत्रित तथा अतिथियों की संख्या भी बीस हजार से अधिक थी।

राज्योत्सव की तैयारियाँ क्या सामान्य थीं? शत–शताब्दियों के हिंदु वीरों के त्याग–बलिदान एवं तपस्वियों के पुण्यार्जन के फलस्वरूप प्राप्त पुण्य–प्रसंग था वह। राजगढ़ के ऊपर वैभवशाली तैयारियाँ की गयी। परंतु उसी समय महाराज निकल पड़े स्वराज्य का निरीक्षण करने। इधर जब राज्यारोहण की धूमधाम चली हो, तब उधर कोई अनर्थ न हो; इस प्रकार शत्रु की हलचल पर विशेष नजर रखने की सूचना देकर आये

महाराज। अनेक दुर्गों की अँचानक भेंट करते हुए उनकी सुरक्षा तथा प्रशासन की दक्षता आदि की परीक्षा की। इसी प्रवास के दरम्यान दुश्मनों से एक किला भी उन्होंने जीत लिया। सुरक्षा प्रबंधों की दक्षता के बारे में उनका शंका समाधान हुआ।

शुभ मुहुर्त्त भी तय हुआ। शके १५६६ आनंदनाम संवत्सर ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी, सूर्योदय के तीन घटिका पहले शिवाजी महाराज सिंहासनारोहण करेंगे, ऐसा निश्चय हुआ। सब स्वकीय, परकीय, राजकीय धार्मिक प्रमुखों को भी आमंत्रण भेजा गया।

भारत के सप्त नदियों, सब सागरों, पवित्र तीर्थस्थानों के पुण्योदक के कलश भी आये। दूर–दूर से विद्वान, कलाशासक, राजदूत आदि का आगमन हुआ।

जीजाबाई आ पहुँचीं; राजगढ़ पर राजमाता का आगमन हुआ! उस महामाता के जीवन के इस स्वर्ण क्षण की होड़ ले सकने वाला जीवनसार्थक्य का क्षण पूरे जगत के इतिहास में कोई दूसरा है, क्या? बार–बार मरण–संकटों को ध्वस्त करते आया, अपना एकमात्र पुत्र आज सिंहासन चढ़ रहा है, छत्रपति बन रहा है। उस शुभ समारंभ के लिए असंख्य साधु–सत्पुरुष भी आये थे। "संतों का संरक्षक" आज छत्रपति होने जा रहा है। सब देवी–देवता आनंद से पधारे होंगे, अपने मठ–मंदिरों का उद्धारक सिंहासन पर आरोहित हो रहा है, यह देखने के लिए। उन सबके लिए कितने दिनों से चल रही प्रतीक्षा की परिसमाप्ति का क्षण था वह।

अब धार्मिक विधि प्रारंभ होनी ही थी कि महाराज मित्र–परिवार के साथ प्रतापगढ़ की ओर निकल पड़े। किसलिए? महाराज का सर्वस्व ही उधर था – माँ जगदंबा भवानी वहाँ थी! स्वर्ण के छत्र–चामर उसे अर्पित किए बगैर वह स्वयं कैसे धारण करें? वह मंगल कार्य पूर्ण करते हुए, महाराज राजगढ़ को लौट आये।

कितनी शताब्दियों के बाद उस हिंदु सिंहासन के प्रतिष्ठापनार्थ पधार कर, गंगाभट्ट ने प्रत्येक संहिताओं की रचना की थी। एक–एक कर संस्कार–विधियाँ प्रारंभ हुईं। यह सही था कि शिवाजी महाराज स्वयं

क्षत्रिय कुलोत्पन्न थे। शाहजी राजे भी 'सिसोदिया' कुल के ही वंशज थे, ऐसा तमिलनाडु के कवि पिंडै ने भी उल्लेख किया है। उनका कुलनाम 'भोंसले' भी सूर्यवंश का ही द्योतक है। इतना होते हुए भी मुसलमान प्रभुत्व के संसर्ग से उनके कुल में अनेक संस्कार लुप्त हो गये थे। लोकमान्यता की दृष्टि से उनका पुनर्जीवन करना आवश्यक था। महाराज का मौंजिबंधन भी नहीं हुआ था। दस दिन पहले, ज्येष्ठ शुद्ध चतुर्थी को 'उपनयन के वटु' को निवास स्थान से सभागृह तक बुलाकर लाया गया। तब 'वटु' की आयु केवल चवालिस ही थी, केवल दो पुत्र एवं छः पुत्रियों का पिता था 'वटु'। सब बच्चों को पिता का मौजिबंधन देखने का भाग्य प्राप्त हुआ! 'उपनयन' के पश्चात विवाह! उसके लिए अब महारानी सोयराबाई के साथ राज्योचित रीति से, शास्त्रोक्त पद्धति से विवाह! बालकों को उनके माता–पिता का विवाह देखने का अवसर प्रदान करने वाला एक और रंजक प्रसंग!

अब 'शास्त्रोक्त' रीति से महाराज का 'ब्रह्मचर्य' समाप्त हुआ; 'गृहस्थाश्रम' आरंभ हुआ। समूचा राजगढ़ स्वर्ण–नगरी जैसा झलकने लगा।

ज्येष्ठ शुद्ध त्रयोदशी, आनंदनाम संवत्सर – आनंद साम्राज्य का शुभारंभ। उस दिन छाया था, इस भूलोक के अन्य आनंदों के परे स्थित स्वाधीनता का आनंद। उस दिन स्वराज्य के एक–एक पेड़–पौधे को, किले के पत्थर–कंकर को, भी अपना ही राज्याभिषेक हो रहा है इतना आनंद हो रहा था। राजप्रासाद में गंगाभट्ट तथा कुलगुरु बालभट्ट द्वारा गंभीर स्वरों में वेद मंत्रों का घोष प्रारंभ हुआ। मुत्सद्दी, सेनाधिपति, देश–विदेश से आये राजदूत आदि सब पंक्तिबद्ध रीति से विराजमान हुए थे। परंतु ऐसे प्रसंगों पर जो लोग स्वाभाविक एवं अनिवार्य रूप से उपस्थित रहते ही थे, ऐसे कुछ वीर–धीर वहाँ नहीं थे। महाराज का जीवश्च–कंठश्च मित्र तानाजी नहीं था; बाजीप्रभु नहीं था; मुरारबाजी नहीं, प्रतापराव गुर्जर नहीं, बाजी पासलकर नहीं और भी अनेक जिवलग सखा

नहीं थे। अपने प्राणप्रिय नेता के राज्यारोहण का वैभव देखने उनमें से कोई भी नहीं था। उन सभी के त्याग–बलिदान एवं दिव्य आहुतियों की बलिवेदी पर ही यह सिंहासन उभर कर आ रहा था, तब उन सभी बलिदानी वीरों ने अपने प्राण त्यागे थे, इसीलिए तो अब इस सिंहासन में प्राण भर गये थे। इतिहास का नियम ही है कि कोयल निज रुधिर की धारा बहाए और तभी गुलाब खिल उठे।

मुहूर्त समीप आया। पवित्र नदियों का पुण्यपावन उदक भी आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था। महाराज, महारानी, युवराज संभाजी स्वर्णासन पर बैठ गये। पंचामृत स्नान, सागर–जलों से सिंचन, शुद्धोदक से स्नान, सप्त नदियों के जलों से अभिषेक; सब एक के बाद एक किये गये। आज उन नदियों का भी महद्भाग्य ही। "गंगे च यमुने चैव गोदावरी सरस्वति..... "मंत्रोच्चार भी हो गया। तथापि उनमें से एक भी नदी स्वराज्य में अब तक समाविष्ट नहीं थी। उन सब नदियों ने अपनी मुक्ति के लिए महाराज के कानों में प्रार्थना की होगी। महाराज ने भी अभिवचन दिया होगा, "चिंता न करो, मेरा जीवनोद्देश्य भी वही है।" तदनंतर सौभाग्यवती महिलाओं ने महाराज की आरती उतारी।

उधर, राजसभा में भी भरसक तैयारियाँ चली थीं। अमोघ रीति से सिंहासन का शृंगार भी चला था। महाराज ने वस्त्राभूषण, खड्ग, ढाल, धनुषबाण आदि शस्त्रों की पूजा की। उन्हें भक्तिपूर्वक भाव से धारण किया। राजा, रानी, युवराज इन तीनों ने कुलदेवता, गुरुवृंद, बड़े–बुजुर्ग तथा राजमाता को वंदन किया। उस माता का अपने पुत्र के बारे में देखा हुआ सपना आज साकार हुआ था। शिवा को शैशवावस्था में पालने में रखकर सुलाते हुए बतायी गयी कथाएँ, गायी हुई लोरियाँ आज सार्थक सिद्ध हुई थीं।

अष्ट–प्रधान, अंगरक्षक, आप्त–सचिव इनके साथ, साक्षात् मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचंद्र के समान खड्ग को दंडधारी बनाकर महाराज ने राजसभा में प्रवेश किया। उस दिन राजसभा में दमक रहे प्राचीन भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का सुंदर दर्शन पाकर प्रजा–समुदाय धन्य हुआ।

पूर्व दिशा में स्वराज्य–मंदिर के तोरण के रूप में तोरणगढ़ खड़ा था। तीस वर्ष पूर्व उस दुर्ग पर महाराज का बाँधा विजयतोरण आज महाराज के सिंहासनारोहण का स्वागत कर रहा था। उस पार था, भूमि को छूने वाला आकाश का छोर।

रायगढ़ पर विजयनगर का पुनरोदय!

महाराज रत्नजड़ित सिंहासन के सामने आये। दाहिना घुटना जमीन पर रखते हुए सिर नवाकर सिंहासन का वंदन किया। तदुपरांत पूर्वाभिमुख होकर खड़े हुए। मंगल वाद्य, तोपें आदि सिद्ध थी ही। हिंदवी स्वराज के परमोच्च सौभाग्य का क्षण! गंगाभट्ट तथा उनके सब सहयोगी ऋत्विजों द्वारा उच्च स्वरों में वेद–पाठ प्रारंभ हुआ। आनंद से पुलकित होकर सब सभासदों की हजारों आँखें तदेक दृष्टि से शिवाजी महाराज पर टिकी थी। सिंहासन को पदस्पर्श किये बिना ही महाराज उस पर विराजमान हुए। एकाएक हजारों भावभारित कंठों से "शिवाजी महाराज की जय" का गगन–भेदी उद्घोष गूँज उठा। विविध वाद्य तथा सम्मानसूचक तोपें प्रचंड आवाज में गरज पड़ीं। "हिंदुस्थान में हिंदु सिंहासन फिर एक बार उभर आया है। वह अजेय है, अमर है।" ऐसा ही मानो वे सब बाहरी विश्व को बता रहे थे। दिल्ली का दिमाग दिङ्मूढ़ हुआ, बीजापुर के कान बहरे हुए! छत्रपति के ऊपर स्वर्ण वृष्टि हुई। पुष्पलताओं की वर्षा हुई। मंगलघोष, गायन, मंत्र, नृत्य, काव्य आदि का महापूर ही आया। आनंद का सागर उमड़ कर पूरे आकाश पर ही छा गया। कोई भी वर्णन अपूर्ण था, वर्णनातीत था! ऐसा भव्य दिव्य दृश्य!

चार प्रचंड दुश्मनों के सीने पर पैर रखकर यह स्वतंत्र हिंदुराज्य मस्तक उठाकर खड़ा हुआ। इंद्रप्रस्थ, देवगिरि, वारंगल, कन्नौज, कर्णावती, विजयनगर आदि स्थानों पर कभी टूट पड़ा सिंहासन आज फिर से साकार हुआ।

समस्त महिलाओं के प्रतिनिधि स्वरूप में सुवासिनियों ने महाराज के समीप जाकर अपने शील–पावित्र्य के रक्षक को, अपने कंकण–कुंकुम–मंगलसूत्र के उस भाग्यविधाता को, मंगल तिलक किया, दीपों से भरी थाली से आरती उतारी। धर्मशास्त्र–सूत्र, श्रुति–स्मृति आदि मानो जीवंत होकर, साकार होकर अपने अधिकृत सम्मति के साथ शिवाजी महाराज को राजत्व प्रदान कर आशीर्वचन दे रहे थे। ज्ञानमेरु गंगाभट्ट ने महाराज के मस्तक पर रत्नजड़ित राजमुकुट रख दिया, राज–छत्र धरा, श्वेत चामर झुलाया। शिवाजी महाराज अब सिंहासनाधीश्वर छत्रपति बन गये हैं, ऐसी उच्च स्वर में घोषणा की। बाहुबल, बुद्धिबल, धनबल आदि सब स्वयं ही अवतरित होकर अपनी सेवा के आश्वासनों के रूप में मंत्री, प्रधान, सेनाप्रमुख आदि सबने मिलकर महाराज पर स्वर्ण–वृष्टि की। नाना राजदरबारों से आये राजदूत एवं राजप्रमुखों ने अमूल्य वस्त्रालंकार देकर आदर–गौरव व्यक्त किया। इन महनीयों में था, अंग्रेज वकील हेनरी आक्सिंडेन भी!

समारंभ के पश्चात् पहाड़ के समान भव्य हाथी पर बढ़िया ढंग से अलंकृत अंबारी में अपूर्व उत्साह, अनुशासन तथा वैभव के साथ महाराज की शोभायात्रा निकल पड़ी। स्वराज्य का सरसेनापति ही महावत था। अग्रस्थान पर ऊँचे आकाश में लहराता भगवा ध्वज! देवदुर्लभ श्रृंगार एवं स्वागत के साथ राजगढ़ के राजमार्गों से नगर प्रदक्षिणा कर शिवाजी छत्रपति लौट आये।

राज्याभिषेक समारंभ के लिए करोड़ों रुपये खर्च हुए। तत्कालीन स्वराज्य की आर्थिक स्थिति में वह खर्चा सही मायने में भारी ही रहा होगा। इतनी धनराशि में अनेकों गढ़–दुर्गों का निर्माण भी हो सकता था। परंतु कुछ गढ़–किलों से भी अधिक स्वराज्य तथा सिंहासन ही प्रजा का सच्चा वज्रकवच होता है, यह महाराज को भलीभाँति पता था। तब जनमानस में सिंहासन के बारे में उनके द्वारा निर्मित निष्ठा ने ही आगे चलकर औरंगजेब के आक्रमण से उद्भूत प्रलय सदृश्य परिस्थिति में भी राजाराम महाराज की रक्षा की। स्वराज्य की परंपरा अक्षुण्ण रखी।

महाराज के सिंहासन स्थापना का दूरदर्शी उद्देश्य सार्थक हुआ।

सिंहासनारोहण का संभ्रम समाप्त होने पर महाराज अपनी माता के पास फिर एक बार 'शिवा' बनकर बैठ गये और भावोत्कट ध्वनि में, "आप का आशीर्वाद ही आज फलद्रुप हुआ", ऐसा कहा। बहुत समय तक दोनों मिलकर आनंद से इसी प्रकार की बातें करते रहे। माँ के अनुरूप पुत्र, पुत्र के अनुरूप माता! इस भूलोक के सभी माता–पुत्रों के हृदय का सपना साकार रूप में प्रत्यक्ष दर्शाने वाला अपूर्व आदर्श माँ–पुत्र का युग्म!

हिंदुस्थान के इतिहास में, हिंदुत्व के जीवन में तब से एक नये शके का प्रारंभ हुआ। हिंदु सिंहासन का, हिंदु स्वातंत्र्य का नवोदय हुआ। नये शके को महाराज ने 'शिवशके' यह अपना व्यक्तिवाचक नाम नहीं रखा। इसके उलटे, उसे 'राज्यभिषेक शके' ऐसा अर्थपूर्ण संबोधन दिया। उस में भी महाराज की सर्वप्रतिष्ठा नहीं, वरन् एकांतिक ध्येयदृष्टि ही थी, यह सूर्यप्रकाश जैसा ही स्पष्ट था।

अब हिंदु युग, स्वातंत्र्य–स्वाभिमान का युग, स्वधर्म–स्वराज्य का युग आरंभ हुआ। "प्रतिपच्चंद्रलेखेव वर्धिष्णुविश्ववंदिता" ऐसा अपने छुटपन में ही शिवाजी द्वारा प्रचलित की हुई मुद्रा आज वास्तव में राजमुद्रा बन गयी, पूर्णार्थ सार्थक हो गयी। सकल हिंदु जगत पर नवयुग की राजमुद्रा अंकित हो – इस प्रकार नये शके का; नये सिक्के का चलन प्रारंभ हुआ।

समारंभ के लिए आये हुए सब व्यक्तियों का महाराज ने यथायोग्य सम्मान किया। उनको वस्त्र–आवरण प्रदान किए। आखिर में रह गया एक छोरा–मदारी मेहतर; आगरा में महाराज के पैर दबाने वाला वह चालाक मुसलमान लड़का। "बेटे, तुझे क्या चाहिए?" ऐसा बड़े प्यार से महाराज ने पूछा। वह जो कुछ माँगेगा, उसे देने को तैयार थे महाराज। मदारी ने बड़ी विनम्रता से कहा, "हर दिन आपका सिंहासन साफ कर, उसे सजाने का काम दीजिए!" महाराज बड़े जादूगर थे। उनके स्पर्श से हर चीज सोना बन जाती थी!

हिंदु राज्याभिषेक उत्सव के इस महोज्वल प्रसंग का वर्णन करने एक महायोगी – स्वयं श्री समर्थ रामदास अपने गुफा से बाहर आये। उस

प्रसंग की महिमा का मुक्त कंठ से गायन किया। प्रत्यक्ष आनंद–वन–भुवन का ही निर्माण हुआ, ऐसा समर्थ ने पूरे विश्व को ही उद्घोषित किया।

"जो स्वप्न में देखा, साकार हुआ। धर्मसंकट, पापी, देवद्वेषी दुष्टों का संहार हुआ। आनंद–वन–भुवन निर्माण हुआ।

"देश–धर्म का उद्धार हुआ। तीर्थक्षेत्र पावन हुए। स्नान–संध्या की अनुकूलता हुई। आनंद–वन–भुवन निर्माण हुआ।

"शुद्ध आध्यात्म तेज प्रकट हुआ। मठ–मंदिर ऊर्जित हुए। देव–देवता पूजित हुए। आनंद–वन–भुवन निर्माण हुआ।

"गीत, संगीत, वाद्य गूँज उठे। इच्छित सब साध्य हुआ। आनंद–वन–भुवन निर्माण हुआ।"

❖❖❖❖❖

दक्षिण दिग्विजय

– महाप्रस्थान

धार्मिक क्रांति का अग्रदूत

राज्यारोहण यथासांग संपन्न हुआ। यह सुनकर भाग्यनगर के कुतुबशाह को दिल से खुशी हुई। शिवाजी महाराज को वह अपना दोस्त ही मानने लगा था। लेकिन बीजापुर सुल्तान की अवस्था बड़ी कठिन हुई थी। उसका खौफ तथा अनबन और भी बढ़ गयी। फिर भी बाहरी तौर पर प्यार–खुशी का दिखावा करते हुए उसने शिवाजी महाराज को हाथी, घोड़ा, शिरपाव, खिलअत आदि नजराना भेज दिया। शिवाजी के तख्तनशीन की खबर सुनते ही औरंगजेब ने तो अपने मत्थे पर हाथ मारकर, "अब मेरा जिंदा रहना ही फजूल है! वह बागी शिवा मेरी आँखों के सामने ही मेरे हैसियत का बादशाह बन गया।" ऐसा कहते दाँत–होंठ चबाने लगा। उसने तीन दिन तक दरबार की तरफ अपना मुँह भी नहीं दिखाया। अंग्रेजों को तो धक्का तथा डर का झटका ही लगा। ईस्ट इंडिया कंपनी की ओर से हेनरी ऑक्सिंडेन ने राज्याभिषेक के उपलक्ष्य में महाराज को बहुमूल्य भेंट अर्पित की। तब उसने आपसी मुल्कों में वणिज्य–केंद्रों की स्थापना करने तथा निर्बाध रूप से व्यापार चलाने का समझौता शिवाजी महाराज के साथ किया। शिवाजी भी वही चाहते थे। उनकी हलचलों पर नजर रखके उनका नियंत्रण करना अनुकूल होगा, ऐसा एक उद्देश्य भी था।

सिंहासनारोहण का मंगल कार्य समाप्त हुए, अभी पंद्रह दिन भी नहीं हुए थे कि जीजामाता परलोक सिधार गयीं। उस महासती का जीवन पूरा हुआ था। प्रण पक्का हुआ था। उसकी आखिरी इच्छा भी सफल हुई थी। वैसे परिपूर्ण अपने अंतिम योगदान के रूप में स्वयं के निधि के एक करोड़ रुपयों की राशि उस महामाता ने अपने पुत्र के हाथों में दी और चल बसी। इतने सालों में उसे सगे–संबंधियों, बंधु–बांधवों से उपहार के रूप में प्राप्त निजी निधि थी वह! वैसे देखा जाये तो, स्वराज्य के लिए प्रथम अंशदान के रूप में उस माता ने अपने प्राणप्रिय पुत्र का ही समर्पण किया था।

चाहे राज्याभिषेक के आनंदकर समय में हो या तत्पश्चात् के मातृ–वियोग के दुखदायक समय में, महाराज को ढिलाई या असावधानी के लिए फुरसत ही कहाँ थी? बीजापुर में तो अब तत्काल शिवाजी की

ओर नजरें घुमाने का भी साहस नहीं बचा था। लेकिन मुगलों का संकट टला नहीं था। इसलिए पहले उनका समाचार लेना आवश्यक था।

बहादुर खान पेडगांव में मुगलों का सरदार था। उसके छावनी में एक बड़ी समृद्धि भरी चीज है, ऐसा शिवाजी के सरदार को पता लगा। तुरंत उस मराठा की जन्मजात चाणक्षता जागृत हुई। नौ हजार सेना के साथ वह सरदार पेडगांव की ओर निकल पड़ा। उसमें से सात हजार सैनिकों को गाँव के बगल में ही पहाड़–वादियों में छिपाकर रखा। मराठा सेना आ रही है, यह सुनते ही खान गुस्से से बौखला गया। फौरन उसने अपनी पूरी फौज को इकट्ठा कर प्रति चढ़ाई शुरू की। दुर्बल दिखायी देने वाली मराठा टुकड़ियाँ जरा रुकने लगी, थोड़ा पीछे हटने लगी। इस प्रकार शिवाजी के सरदारों ने बहादुर खान को उसके छावनी से पचास मील दूर तक खींच लाया। वहाँ आकस्मिक रीति से मराठा सैनिक वायुवेग से फरार होकर गायब हुए। मराठों के इस तंत्र से ऊबकर उन्हें गाली–गलौज करते हुए बहादुर खान अपनी फौज के साथ हाँफते–हाँफते छावनी की ओर लौट पड़ा।

उधर, खान के छावनी छोड़कर मराठों के पीछे भागते–भागते काफी दूर जाने के बाद, पहले से वहाँ जंगलों में छिपे बैठे सात हजार मराठे सैनिक पेडगांव की छावनी पर टूट पड़े। वहाँ के मुट्ठी भर पहरेदारों को काटकर खान की समूची धन–दौलत लूट ली। बाद में, शिविर को जला कर खाक कर दिया। खास दिल्ली के बादशाह को नजर करने के लिए खान के लाये हुए दो सौ उत्तम घोड़े तथा एक करोड़ रुपए इतना धन स्वराज्य के योद्धाओं को मिला। वह धन उन्हीं अश्वों पर लादकर मराठे फरार हुए। खान उन दो हजार मराठों के पीछे जाकर, हवा में मुक्के मारते हुए हाथ के दर्द के साथ यहाँ वापस लौट कर देखता है तो यह अति घोर दृश्य! अर्थात् स्वराज्यारोहण के लिए हुए व्यय का एक अंश मानो वसूल ही हुआ!

जंजीरे का सिद्दी भी झुका नहीं, इसलिए जंजीरे के बगल में ही महाराज ने पद्मदुर्ग का निर्माण किया। उस निर्माण के समय में घटित

एक प्रसंग शिवाजी के कठोर अनुशासन का साक्षी है। अपने किले के नजदीक ही शिवाजी पद्मदुर्ग खड़ा कर रहा है, यह बात जंजीरे का सिद्दी कैसे सहन करे? उसके उग्र विरोध का सामना करते–करते ही महाराज को पद्मदुर्ग का निर्माण करना था। इसी कारण, उसकी सुरक्षा एवं बांधकाम के लिए धन, धान्य, निर्माण–सामग्री के प्रबंध की जिम्मेदारी महाराज ने प्रभावली के सुबेदार जवाजी विनायक को सौंपी थी। परंतु उसने योजनानुसार सामग्री नहीं भेजी। इसकी खबर महाराज को पहुँचायी गयी। तब उन्होंने जवाजी को पत्र लिखा, कैसा था देखिये, "पद्मदुर्ग के लिए आवश्यक सहायता आपने नहीं भेजी, ऐसा पता चला। आप इतने नालायक हो, यह देखकर आश्चर्य हुआ। आपसे सहायता न पहुँचने पर हमारा सब नौका–बल सिद्दी की चपेट में आ जायेगा। क्या सिद्दी ने आप को खरीद लिया है? यदि ऐसा हो, तो आपको उसकी योग्य सजा अवश्य मिलेगी। आप ब्राह्मण हो इसका कोई लिहाज़ नहीं रखा जायेगा। आगे भी ऐसा ही हुआ, तो दुश्मनों के हस्तकों की अवस्था ही आपकी भी होगी। होशियार!"

महाराज का अनुशासन लोहे के समान तगड़ा था। इसीलिए स्वराज्य का कारोबार इतना कड़ा रह पाया।

..... २ .....

तदनंतर महाराज बीजापुर के एक बड़े जलदुर्ग फोंडा पर हमला करने निकल पड़े। वे उधर धावा बोलने निकले ही थे कि बहादुर खान भारी फौज के साथ उनके पीछे पड़ा, पुराने पराभव का बदला चुकाने। अब क्या करें? तत्काल महाराज ने उस पर समझौते के अपने अमोघ सम्मोहनास्त्र का प्रयोग किया। अपने वश के सात महत्वपूर्ण किले खान को तुरंत सौंपने की पेशकश की। अपने पुत्र संभाजी को बादशाह की चाकरी में छः हजार घुड़सवारों के सरदार के हैसियत से बहादुर खान के हाथों में ही रखने का एवं स्वयं केवल भीमा नदी के दक्षिण भाग का ही प्रमुख इस नाते रहने का भरोसा दिया। खुद बादशाह को भी हर हमेशा तकलीफ देते आये शिवाजी जैसा दुश्वार दुश्मन खुद ही समझौते के लिए

राजी हुआ है, यह देखकर बहादुर खान फूले नहीं समाया। उसे ठीक लगा कि फिलहाल शिवाजी के साथ लड़ाई–झगड़े का दूभर प्रसंग तो टल गया! साथ में इतना फायदेमंद समझौता। समझौते के प्रस्ताव को तो महाराज ने यथासंभव दीर्घकाल तक लटकाये ही रखा। उसके बाद भी, उस पत्र के दिल्ली जाकर बादशाह से मंजूर होकर वापस आने के लिए कम–से–कम तीन–चार महीनों का वक्त तो जरूरी था ही!

इसी समय बीजापुर का सेनापति बहलोल खान मीरज से हमला करने की तैयारी में था। परंतु मराठा योद्धाओं ने उसके आने के मार्ग पर बड़े–बड़े पेड़ काटकर डाले और पूरे मार्ग पर वे पहरा देते खड़े हुए। इससे बहलोल खान को मीरज में ही हाथ पर हाथ धरे बैठना पड़ा।

एक महीने के संघर्ष के बाद फोंडा हाथों में आया। तत्पश्चात् अंकोला, सिद्धेश्वर, कारवार आदि जीतकर महाराज सुखरूपता से रायगढ़ को लौट आये। राज्यारोहण के अनंतर शिवाजी महाराज की वह प्रथम जैत–यात्रा थी।

उधर समझौता–पत्र पहुँचने पर औरंगजेब को बड़ी खुशी हुई। खान की बहादुरी पहचान कर आलमगीर ने उसे बढ़ती दी। उसे हाथी का नजराना भी भेज दिया। बागी शिवाजी के बादशाह बनने के बचकाने ख्वाब को मसलकर फेंक देने वाला 'अपना बहादुर' ऐसा औरंगजेब के कहने पर खान का सीना फूल गया। बादशाह ने शिवाजी के नाम भी एक फरमान भेज कर, "शिवाजी के पिछले सब गुनाहों को मुआफ कर", समझौते को सम्मति दी। संधि की इतनी सारी बातें होकर, औरंगजेब को अहवाल पहुँच कर, उससे उत्तर आने तक आराम से चार महीने बीत गये। तब तक फोंडा जीत लिया गया था, महाराज के खड्ग को भी विराम मिला।

बादशाह से सम्मति–पत्र देखकर बहादुर खान की खुशी का पार नहीं रहा। खुद ही की पीठ कितनी बार थपथपा लेने पर भी उसे तसल्ली नहीं हुई। उसने फौरन शिवाजी को सूचना भेजकर कहा कि बादशाह से फरमान आया है, पाँच मील पैदल चलकर आओ, घुटने टेककर उसको

स्वीकार करो, सिर पर रखकर वापस जाओ और समझौते के मुताबिक वे सात किले तुरंत मेरे हवाले करो। यह बताने के लिए खान के सरदार रायगढ़ पर आ पहुँचे। शिवाजी छत्रपति ने उनको देखते ही बड़े तीखे शब्दों में पूछा, "डर के मारे मैं ऐसा समझौता करूँ, ऐसा कौन–सा तीर आपके बहादुर खान ने मारा है? यहाँ से तुरंत लौट जाओ! अन्यथा आपकी खैरियत नहीं!"

किसी दूसरे के लिए नामुमकिन, ऐसे शिवाजी का प्रचंड पराभव मैंने किया है, उसके 'छत्रपति' के ओहदे की इज्जत ही मिट्टी में मिला दी है – ऐसे ख्यालों में डूबे अपनी लंबी दाढ़ी पर हाथ फेर रहे बहादुर खान को उन सरदारों द्वारा शिवाजी का वह संदेश पहुँच गया। उसके आँखों के सामने एकाएक अंधेरा ही छा गया। सारी दुनिया ही कुम्हार के चक्के के माफिक घूम रही है, ऐसा उसे आभास हुआ। उधर औरंगजेब को भी पता चला, अपने सूबेदार का असली 'बहादुरी' का स्वरूप। "ये क्या तमाशा है? ये बेहूदा शिवा मुझे चाहे जब, चाहे जैसे, अपने उँगलियों पर नचा रहा है?" ऐसा कहते वह आग–बबूला हो गया। बहादुर खान के चेहरे का पानी उसने किस प्रकार उतारा होगा, यह अब बताने की जरूरत है क्या? खान को शिवाजी की ओर से यह दूसरा 'प्रसाद' था। पहली बार उसकी छावनी की लूट और अबकी बार उसके आबरू की भी लूट।

इसी समय महाराज को गंभीर रूप से बीमारी हुई। उनके मृत्यु की भी वार्ता दावानल जैसी फैल गयी। उनको स्वास्थ्य लाभ हो गया है, इसका विश्वास वे जब दिग्विजय के लिए फिर से निकल पड़े, तभी हो पाया।

शिवाजी को नेस्तनाबूद करना ही चाहिए। परंतु उसका कोई उपाय नहीं दिखायी दे रहा था। औरंगजेब का दिमाग रुक ही गया था। उसके सभी नामी–गिरामी सिपहसालार अपनी पूँछ कटवाकर लौट चुके थे। अब किसे भेजें? फिक्रमंद बादशाह के सामने एक महापराक्रमी शख्सियत ही आ गयी। तुल्यबल भी सही – मोहम्मद कुली खान! कौन था वह? पुराना, नेताजी पालकर! एक समय में प्रति–शिवाजी, स्वराज्य का सर सेनापति

रह चुका व्यक्ति! औरंगजेब को अब यकीन हो गया था कि वह कुली खान अब पर्याप्त मात्रा में मँजा हुआ है, इतना ही नहीं अपना पुराना हिंदुत्व, शिवाजी के प्रति निष्ठा आदि सब भूल चुका है। उसी भरोसे पर दिलेर खान के साथ उसे जोड़ के दक्खन शिवाजी के खिलाफ भेज दिया। किंतु, कुली खान के अंतर्मन में स्थित 'नेताजी' मरा नहीं था।

दो–एक बार मुगल छावनी से भाग निकलने की उसकी चेष्टा भी विफल हुई थी। अब उसे यह स्वर्ण अवसर मिल रहा था। उसे वह कैसे जाया करेगा? समय साधकर दिलेर खान की छावनी से खिसक कर वह रायगढ़ की ओर फरार हुआ। अपने विचित्र पठानी वेश, पठानी रूप में ही आकर महाराज के सामने अचानक हाजिर हुआ। उसका दिल धड़क रहा था, मन संदेहों से छटपटा रहा था; क्या महाराज मेरे जैसे राजद्रोही को, धर्मभ्रष्ट को स्वीकारेंगे?

छत्रपति शिवाजी ने देखा – नेताजी! अपने छुटपन का संगी, प्राणसखा, बहुत समय तक अपने साथ दुःख–सुख का भागीदार, अपने साथ ही बड़ा हुआ नेताजी! अपना दाहिना हाथ, स्वराज्य के सरसेनापति पद पर शोभायमान रहा महापराक्रमी! आज असहनीय ऐसे विदेशी–विधर्मी वेश–भूषा में आकर अपने सामने खड़ा है – पश्चाताप–दग्ध होकर! महाराज के लिए भी वह एक प्रकार से सत्त्व–परीक्षा का ही प्रसंग था। उनके समाजिक, धार्मिक प्रज्ञा को वह एक मार्मिक सवाल ही था। प्रचलित रूढ़ि, रीति–रिवाज सब नेताजी के पुनःस्वीकृति के तगड़े विरोधी थे। परंतु शिवाजी छत्रपति याने अद्वितीय लोकसंग्राहक, स्वराज्य के लिए हितकर ऐसा घास का एक तिनका ही क्यों न हो, उसका यथायोग्य उपयोग करने वाले! अब स्वयं चलकर आये नेताजी को क्या वे छोड़ देते? उसे विधियुक्त रीति से पुनः हिंदु बना लिया। अपने स्वराज्य–विस्तार के कार्य में वह एक क्रांतिकारी क्रम ही ठहरा। हिंदुओं को किसी भी प्रकार से एक बार मुसलमान बना दिया, वे सदा के लिए मुसलमान ही रह जाते हैं, ऐसा समझने वाले मुल्ला–मौलवियों का विश्वास उखाड़कर उसे चकनाचूर कर दिया। इससे औरंगजेब को एक के बाद एक ऐसे दोनों

गालों पर थप्पड़ पड़े; नेताजी के समान विख्यात सरदार शिवाजी के पक्ष में आ गया यह पहला और शिवाजी ने उसे फिर से हिंदु बना लिया यह दूसरा थप्पड़ था।

महाराज ने अब जंजीरे पर जोरदार हमला करने का निश्चय किया। उसके लिए प्रधान अमात्य मोरोपंत पिंगले स्वयं कटिबद्ध होकर खड़े हुए। पहले जैसा अब दूर से तोपें दाग कर उसे झुकाने का काम नहीं था। इसका उपयोग भी नहीं था, यह साफ था। इसलिए चुपचाप सागर तैरकर जाना, किले को सीढ़ी लगाकर चढ़ना और अंदर धावा बोलना। इसके पूर्व सिद्दी ने भी हमारे हाथों से दंडा–राजापुरी इसी तरीके से जीत लिया था। यह परम साहस का कार्य करने के लिए लायजी पाटील नामक एक सागरवीर आगे आया। वह तथा उसके साथी छोटी–छोटी नावों में बैठ कर मध्यरात्रि में निकल पड़े। किले के पहरेदारों की नजरें चुराकर, समुद्र पार करते हुए, निःशब्दता से किले के पाँयते तक पहुँच गये। किले के तट पर सीढ़ियाँ लगाकर आने वालों की प्रतीक्षा करने लगे। उसी समय अपने हजार सैनिकों के साथ वहाँ मोरोपंत का आना अपेक्षित था। लेकिन रात बीतती गयी तो भी आने वालों में से कोई भी आया नहीं। अंत में, हताश होकर लायजी पाटील को गए मार्ग से वापस लौटना पड़ा। योजना विफल रही। किसकी गलती हुई पता नहीं चला। परंतु हाथ में आया निवाला मुँह में नहीं पड़ पाया। स्वयं प्रधान पिंगले ने ही रायगढ़ आकर महाराज को निवेदन किया। लायजी पाटील के सिंहसाहस का साद्यंत वर्णन किया। बड़ी प्रांजलता से योजना के विफलता का सारा दोष अपने ऊपर ले लिया। महाराज स्वयं एक अभिजात साहसी वृत्ति के वीराग्रणी थे तथा वह गुण कहीं पर भी देखा तो वे उसके नितांत पक्षधर रहते थे। लायजी पाटील को 'पालकी' का ज्येष्ठ गौरव प्रदान किया। परंतु, उसने बड़ी नम्रता से इन्कार किया। उसकी शालीनता महाराज को और भी अधिक पसंद आयी। उसे इनाम में एक मौका देकर उसे ही "पालकी" संबोधन से गौरवान्वित किया। कर्तव्यनिष्ठा का – जय, पराजय कुछ भी हो, सम्मान होना ही चाहिए।

और कर्तव्यच्युति को? अपने पंतप्रधान की ओर मुड़कर, महाराज ने एक ही बात बतायी, "आपसे कर्तव्य का लोप हुआ। कार्य बिगड़ गया!"

इसी समय मुगल बादशाह काबुल–कंधार के मुहिम में मसरूफ था। इसी अवसर का लाभ उठाकर मुगली सीमाओं में स्थित और भी कुछ इलाकों को अपने अधीन कर लेने में महाराज ने क्षण का भी विलंब नहीं किया।

..... ३ .....

तब बीजापुर छोड़कर शिवाजी का कोई अन्य दुश्मन भी नहीं बचा था। इसलिए बीजापुर का बार–बार चढ़ाई करने की संभावना बनी रहती थी, शिवाजी को उसका एक स्थायी परिहार ढूंढ़ना ही था। फिर, महाराज को धन की आवश्यकता भी अति तीव्र थी।

कर्नाटक की यात्रा पर जाने से ये दोनों उद्देश्य पूरे होंगे, ऐसा महाराज को लगा। बीजापुर का कर्नाटक में भी प्रबल दुश्मन निर्माण होना चाहिए, तभी ऊपर से मराठा एवं नीचे से कर्नाटक के जिले – इस प्रकार दोनों ओर से बीजापुर को संपूर्ण ध्वस्त करना होगा, यही उनकी दूरदर्शी योजना थी। स्थान–स्थान पर भूमि में गाड़ कर रखा निधि–निक्षेप भी अपार था। परंतु वह सब ऐश्वर्य केवल बीजापुर के लिए सुरक्षित रखा गया था।

कर्नाटक के मुहिम से शिवाजी महाराज का अनेक दिनों का चला आया एक और दुखड़ा कम होगा, ऐसी उनको आशा थी। शाहजी के पश्चात् उनका बंधु व्यंकोजी भोंसले समूचे कर्नाटक का राजा बन गया। वह महापराक्रमी था। मदुरै के चोकनाथ नायक को हराकर तंजावूर जीत लिया था। पूरा राज्य ही उसके अधीन हो गया था। तंजावूर में सिंहासन पर आरोहण कर वहाँ का महाराजा बन बैठा था। फिर भी वह बीजापुर सुल्तान की मेहरबानी पर पला एक सरदार का सरदार ही रहा। बीजापुर की गुलामी को उखाड़कर फेंकने का साहस उसमें नहीं था। इसके पहले वह बीजापुर की ओर से शिवाजी के साथ युद्ध करने भी आया था। ऐसे

व्यंकोजी में स्वराज्य की ओर रुझान निर्मित करने का अवकाश शिवाजी को तब तक नहीं मिला था। इसीलिए महाराज ने बंधु व्यंकोजी को एक सुदीर्घ पत्र लिखा। उसका सार यह था – "आप तंजावूर का मोह छोड़कर, जिंजी के नासर खान का नामोनिशान मिटा दो और उसके सब भू–प्रदेशों पर अपना कब्जा करो। उधर शेर खान को ध्वस्त कर उसका भू–भाग भी अपने अधीन कर लो। इस काम में मदुरै के नायक की मैत्री हासिल करो। तंजावूर उसे ही देकर वेल्लूर का प्रख्यात किला एवं वहाँ पर स्थित विजयनगर का अंतिम राजपीठ अपने हाथों में लो। वहाँ से घाट चढ़ श्रीरंगपट्टण आकर मैसूर राजा के साथ सख्य बढ़ाओ, उनकी सहायता से बेंगलूर का महादुर्ग छुड़वा लो।" हिंदु राजाओं की रक्षा कर मुसलमानी सल्तनतों को उखाड़ कर फेंकने का शिवाजी का स्थायी राजनीति–सूत्र यहाँ पर भी प्रकट हुआ।

इसी के साथ शिवाजी के मन की एक और कल्पना भी साकार होनी थी। विजयनगर के हिंदु साम्राज्य को पुनर्जीवित करके ही रहेंगे, ऐसी श्रद्धा दक्षिण के समस्त हिंदुओं में बद्धमूल हो। इसी प्रकार हिंदु संस्कृति की पद्धतियों का ही शिवाजी ने अपने राज्याभिषेक के समय अनुसरण किया था। विजयनगर जैसी ही राज्य व्यवस्था, संस्कृत भाषा का प्रयोग उन्होंने जारी करवाया था। विजयनगर के अंतिम राजा के जैसे ही स्वर्ण होन्न उन्होंने अपने सिक्कों के रूप में ढाल दिये थे। अब वेल्लूर के श्रीरंगराय की राजधानी एवं सिंहासन यदि हाथ में आ गये तो दक्षिण के इस राज्य के सभी मांडलिक, जिनी, तंजावूर, मदुरै, मैसूर, बिदनूर आदि सब संस्थानिक सहजता से ही इस नये हिंदवी स्वराज्य के सामने स्वयं ही नतमस्तक होंगे ऐसा महाराज ने सोच लिया।

स्वराज्य संरक्षण की दृष्टि से एक और अमूल्य अंश इस महायोजना में अनुस्यूत था। आसपास बलाढ्य दुश्मनों से घिरे सह्याद्रि–आश्रित स्वराज्य को कभी भी अपाय होने की संभावना बनी ही थी। वैसा प्रसंग उभरने पर स्वराज्य के द्वितीय रक्षाव्यूह के रूप में खड़ा संघर्ष करने के लिए दूरदराज स्थित एक सुरक्षित स्थान की बड़ी आवश्यकता थी। दक्षिण

दिग्विजय के समय वह भी हासिल करना था तथा इन दोनों दूर–दूर के प्रदेशों को जोड़ने वाली पट्टी का निर्माण भी वापसी में करने की योजना शिवाजी महाराज ने बनायी थी। हिंदुस्थान के पूर्व एवं पश्चिम इन दोनों सागर तीरों के बीच के राज्यों में अपने दोनों पुत्रों को बिठाने की योजना उन्होंने की थी। न्यायमूर्ति रानाडे ने, "भावी संकटों की पूर्वसूचना दूरदर्शी राजकारणी पुरुषों को प्राप्त होना कोई अनहोनी या अनोखी बात नहीं है। शिवाजी को भी इसी प्रकार हुआ था। इसलिए उन्होंने सुदूर दक्षिण के कावेरी कंदरों में अपने स्वराज्य के भावी संरक्षण की व्यवस्था करवायी थी", ऐसा लिखा है। और आगे जो कुछ हुआ, वह बिलकुल वैसा ही था। बाद में औरंगजेब के हमलों से जब महाराष्ट्र की समस्त भूमि पादाक्रांत हुई थी, तब छत्रपति राजाराम ने जिंजी में आश्रय पाया था। उसके पहले केलदी की चन्नम्मा रानी ने उसकी रक्षा की थी, वह भी हिदुंत्व के अभिमान से ही याने शिवाजी महाराज के दक्षिण यात्रा के फलस्वरूप ही।

१६७६ ई. तक शिवाजी महाराज की दक्षिण यात्रा योजना के कार्यान्वियन में सहायक हो ऐसा संदर्भ चला आया। व्यंकोजी का आप्त सलाहकार रघुनाथपंत हणमंत उसे छोड़कर शिवाजी के पास चला आया। उसके साथ बहुत बातें हुईं। दक्षिण दिग्विजय की योजना को महाराज ने अंतिम रूप दिया।

भाग्यनगर (हैदराबाद) के बादशाह अबुल हसन कुतुबशाह के दरबार में प्रह्लाद पंत निराजी नामक शिवाजी का एक अति चाणाक्ष, मुत्सद्दी राजदूत था। तब कुतुबशाही का सब कारोबार वजीर मादण्ण देखता था। वह अत्यंत दक्ष, बहुभाषा तज्ञ ऐसा धर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। उसका बंधु अक्कण्ण भी वैसा ही था। बड़े भाई के पुत्र गोपण्ण को तो कर्नाटक स्वतंत्र हो, ऐसी ही महत्वाकांक्षा थी। उसके प्रभाव तथा बादशाह के निष्प्रभ व्यक्तित्व से प्रजा का जीवन सुख एवं सुरक्षा से युक्त था। हिंदु जीवन अबाधित था।

छत्रपति शिवाजी के दक्षिण यात्रा की योजना के बारे में प्रह्लाद पंत ने मादण्ण को बता दिया। उसे मादण्ण ने भी संतोष से सम्मति दी।

समझौते का एक प्रारूप तैयार हुआ। उसके अनुसार शिवाजी कुतुबशाह की सहायता से कर्नाटक पर चढ़ाई करेगा, हमले का सारा खर्चा कुतुबशाह करेगा तथा युद्ध में हाथ आने वाली सभी संपत्ति, खंडनी तथा पहले शाहजी राजे के कब्जे में स्थित मैसूर प्रांत का भाग शिवाजी के हिस्से जायेगा। बचा हुआ सब कुतुबशाह को!

यह शिवाजी महाराज के स्वराज्य–स्वधर्म सेवा कार्य को सहायक होगा तथा कुतुबशाह का फायदा भी, ऐसा मादण्ण को विश्वास था। तथापि इतना भारी राज कार्य सिद्ध करने हेतु स्वयं महाराज का ही कुतुबशाह से प्रत्यक्ष भेंट करना आवश्यक था और अपने सामर्थ्य–वैभव का प्रभाव उस पर अंकित कर उसमें इस योजना की सफलता के बारे में विश्वास जगाना भी जरूरी था। इसलिए छत्रपति पद के लिए शोभादायक हो, इतने प्रचंड सेना–सरंजामों के साथ निकलने का महाराज ने निश्चय किया। वैसे, खर्च के बारे में महाराज अत्यंत कठोर लेखा–जोखा वाले होते हुए भी जहाँ अपना वर्चस्व साबित होना चाहिए, ऐसी जगहों पर खुले हाथ से धन देने में भी वे कभी आगे–पीछे नहीं देखते थे। याद कीजिए, पीछे अफजल खान के मुलाकात के लिए तैयार किया गया मंडप देखकर खुद खान भी हक्का–बक्का रह गया था न।

इस दूरदृष्टि से स्वतः महाराज के स्वयं ही भाग्यनगर जाकर कुतुबशाह से भेंट करते हुए उपरि–निर्दिष्ट समझौता कर आगे कर्नाटक की ओर प्रयाण करने की योजना निश्चित की गयी।

शिवाजी के स्वयं आकर मुलाकात करने का प्रस्ताव सुनते ही कुतुबशाह का दिल धड़कने लगा! फटे पेट से बाहर आयी अंतड़ियाँ अंदर ढकेलता अफजल खान, तीन उंगलियाँ कटा हुआ शाइस्ता खान और प्रत्यक्ष पगलाया हुआ औरंगजेब, इन सबका चित्र उसकी आँखों के सामने खड़ा हुआ! अपने वजीर मादण्ण को बुलाकर उसने अपना खौफ बयान किया। "इन सबके जैसा मुझे भी कुछ अपाय हुआ तो? इसीलिए शिवाजी को जो कुछ चाहिए, वह सब दे दो, लेकिन मुलाकात की बात मत छेड़ो",

ऐसा कहा। परंतु प्रह्लाद पंत ने बादशाह को "ब्राह्मण की सौगंध" देकर उसके सुरक्षा का भरोसा दिलाया। तब कहीं जाकर कुतुबशाह ने मुलाकात के लिए अपनी रजामंदी जाहिर की।

१६७६ ई. के विजयादशमी के शुभ मुहूर्त पर रायगढ़ से दक्षिण–दिग्विजय के लिए शिवाजी छत्रपति निकल पड़े। उनके साथ निकले सेनाबल की संख्या थी पचास हजार। इस दौरान मुगलों द्वारा स्वराज्य की हानि न हो, इसलिए स्वयं निकलने से पहले ही बहादुर खान को भरपूर घूस देकर एक वर्ष का अनाक्रमण का करार कर महाराज निश्चिंतता से निकले थे। निकलते ही, वे तटवर्ती मुल्क जीतने होन्नवर की ओर जा रहे है, ऐसी अफवाह फैला दी। तथा स्वयं त्वरा से कोल्हापुर की ओर चल पड़े। वहाँ सेना के दो भाग बनाते हुए, एक को सरसेनापति हंबीर राव के हाथों में देकर धारवाड़ जिला द्वारा आगे भेज दिया। बीजापुर के बहलोल खान की नजर सहजता से ही उधर गयी। अब बहादुर खान तो अपने हाथ सेकते, पेडगांव में निराजी पंत के साथ गप्पें हाँकते बैठ गया। इधर शिवाजी तीव्र गति से बीजापुर की शत्रु सीमा पार कर कुतुबशाह की मित्रसीमा तक पहुँच गये। इस प्रचंड जैत–यात्रा में प्रधान अमात्य, सरसेनापति तथा अनेक प्रसिद्ध सरदार आदि महाराज के साथ थे। सिंहासनाधीश्वर चक्रवर्ती को शोभायमान करने वाली वैभवयुक्त विजय–यात्रा थी वह। मार्ग में कोई लूट नहीं, फसाद नही! शांत, गंभीर मार्गक्रमण! वह सुनकर कुतुबशाह खुश हुआ। शिवाजी छत्रपति का स्वागत करने पूरा भाग्यनगर सुसज्जित हुआ। वहाँ से चार गाँव आगे आकर खुद ही महाराज का स्वागत करूंगा, ऐसा कुतुबशाह ने कहलवा भेजा। उसके जवाब के रूप में शिवाजी महाराज ने सूचना भेज दी, "आप हमारे लिए बड़े भाई के समान हैं। आप मेरी अगुवाई न करें। मैं ही आप के यहाँ आऊंगा।" इसके अलावा, "भेंट के समय, शाह अपने छत्रचामरों के साथ आएँ, मैं भी उसी प्रकार आ रहा हूँ।" ऐसा समझाया भी। इसके द्वारा महाराज ने अब स्वयं एक सार्वभौम छत्रपति हैं, इस बात का कुतुबशाह को स्मरण भी कराया।

भाग्यनगर सल्तनत की ओर जाते समय ही कोप्पल के हिंदुओं से महाराज को आर्त बुलावा पहुँच गया। कृष्णा एवं तुंगभद्रा नदियों के बीच के भूप्रदेश में स्थित कोप्पल यह "दक्खन का दरवाजा" नाम से प्रसिद्ध था। वहाँ बीजापुर के दो भारी सरदार थे – हुसैन खान एवं रहीम खान नामक दो दैत्य पठान! वे दोनों अमानुष, क्रूर, अत्याचारी तथा मूर्तिमंत हिंदुद्वेषी। रायगढ़ में स्वराज्य स्थापना का शुभ समाचार के क्षण से ही वहाँ की जनता लगातार शिवाजी के नाम का जाप ही कर रही थी। अब तो महाराज ही कर्नाटक प्रांत के दौरे पर आ रहे हैं, ऐसी आनंददायी वार्ता फैल गयी। वहाँ के कातर लोगों की ओर से कुछ सज्जन महाराज से मिलने आ गये। चाहे किसी भी कोने से क्यों न हो, हिंदु आक्रंदन सुनायी दे, तो दुष्ट–दंडन तथा शिष्ट–रक्षण करने महाराज दौड़ पड़ते थे। अब तो कोप्पल के हतभागी हिंदु स्वयं ही आकर प्रार्थना कर रहे हैं, तब क्या करें? तत्काल, धारवाड़ जिला के मार्ग से निकल पड़े सरसेनापति हंबीरराव मोहिते को शिवाजी महाराज ने कोप्पल के हिंदुओं के पीड़ा परिहारार्थ जाने की सूचना दी। हंबीरराव के साथ सरदार सर्जेराव जेधे भी था। उसके अलावा सर्जेराव का पुत्र नागोजी जेधे, धनाजी जाधव प्रभृति तरुण भी थे।

हुसैन खान को पता चला कि शिवाजी का सरसेनापति फौज के साथ अपने से ही 'मुलाकात' के लिए आ रहा है। वह अपनी राक्षसाकार पठानों की प्रचंड फौज के साथ किले के नीचे उतर आया। परंतु मराठों के प्रलयंकारी रणावेश के सामने पठान गाजर–मूली जैसे ढेर हो गये। खुद हुसैन खान गिरफ्तार हुआ। लेकिन इस लड़ाई में युवा योद्धा नागोजी जेधे के भाल में खान का बाण घुस गया। पिता सर्जेराव ने अपने मरणोन्मुख पुत्र को गोद में सुलाकर उसके भाल का बाण खींच निकाला। पिता के गोद में ही नागोजी का प्राण पंछी उड़ गया। यह खबर गाँव में रहने वाली उसकी नवविवाहिता पत्नी गोदुबाई को पहुँची। उस वीर पत्नी ने एक बिंदु भी अश्रुपात नहीं किया, आनंद के साथ वह चिता पर चढ़ गई। वीरस्वर्ग में अपने पति से मिलने! अभी तारुण्य की देहलीज पर ही

उनदोनों के सब सुख–संतोष उसी चिता में जलकर राख हुए – कोप्पल के हजारों परिवारों के आँसू पोंछने के लिए! समाज के सुख–स्वातंत्र्यों का रहस्य भी वही है। कुछ लोगों का, कुछ संसारों का सुखी जीवन समाज हित के यज्ञ में भस्म होने पर ही बचे हुए अनेकों का जीवन स्वर्णमय होता है।

पुत्र की कुलवधू की आहुति देकर पिता सर्जेराव उसी क्षण वापस आये और महाराज की सेना के साथ फिर से जुड़ गये। ध्येयमार्ग कभी भी वैसा ही होता है। ध्येय के अलावा और किसी को या किसी सुख–दुख के आवेग को भी हृदय में स्थान नहीं। कोप्पल विजय के बाद हंबीरराव की विजयशाली सेना महाराज के साथ आकर मिल गयी।

छत्रपति शिवाजी महाराज की कीर्ति सुन पूरा भाग्यनगर उन्हें देखने आतुर हुआ था। नगर के बाहरी वलय में अक्कण्ण, मादण्ण के साथ दोनों ओर के राजदूतों ने महाराज की अगुआई की तथा उन्हें यथोचित गौरव प्रदान किया। तदनंतर नगर के प्रमुख मार्गों से महाराज की भव्य शोभायात्रा निकाली गयी। शिवाजी छत्रपति का जयघोष समूचे नगर में असंख्य कंठों से गगनभेदी आवाज में गूँजने लगा। भाग्यनगर की राजवीथियों में चले शिवाजी महाराज के शोभायात्रा का वैभव केवल वर्णनातीत था! उनके एवं मावला योद्धाओं की साहसाद्भुत गाथाएँ सुनकर कुतूहल–प्रेरित वह विशाल जनसमूह अब उनको अपनी आँखों से देखते रोमहर्षित हो रहा था। सब मार्गों में उन पर अपार पुष्पवृष्टि हो रही थी। महाराज भी दोनों हाथों से स्वर्ण–रौप्य की मुद्राओं का मानो सिंचन ही करते आगे बढ़ रहे थे। भाग्यनगर (हैदराबाद) के इतिहास में ही अविस्मरणीय आनंदोत्साह का प्रसंग था वह!

स्नेह से स्नेह बढ़ता है!

अंत में, छत्रपति शिवाजी महाराज ने कुतुबशाह के प्रासाद दादामहल में प्रवेश किया। वहाँ उनकी प्रतीक्षा में खड़ा कुतुबशाह उनका स्वागत

करने आगे बढ़ा। अतीव हार्दिकता से महाराज ने उसका आलिंगन किया। गला–मिलन, हँसी–खुशी तथा स्नेह–प्यार से संपन्न हुआ। कुतुबशाह ने अपने तख्त के बगल में ही महाराज के लिए अलग उच्च आसन की व्यवस्था की थी। कुतुबशाह के जनाने की औरतें परदे के पीछे से इस अद्भुतरम्य पुरुष को एकटक देख रही थीं। बादशाह महाराज के साथ खुले दिल से बातचीत कर रहा था। उनके अद्भुत साहस के अनेक बातों के बारे में पूछताछ की। बादशाह ने एक भी रणमैदान, शायद चित्र में छोड़कर प्रत्यक्ष कहीं नहीं देखा था। अब महाराज स्वयं ही अपने अनुभव बताने लगे, तो वह अत्यंत आश्चर्य से दिग्भ्रांत हुऐ बिना कैसे रहेगा? भेंट के अंत में महाराज को हाथी, घोड़ा, वस्त्रालंकार इत्यादि नजर कर बादशाह ने उनको अत्यंत स्नेह–आदर के साथ विदा किया। तदनंतर उसने अपनों के पास "शिवाजी राजा याने बड़ा ईमानदार शख्स! जरा भी फरेब नहीं! जैसा बोला वैसा चला!" ऐसा बड़े इत्मीनान के साथ बताया! प्रह्लाद पंत को, "आप भी बहुत ईमानदार हो! बातों जैसा ही बर्ताव किया!", ऐसी तारीफ कर उन्हें भी वस्त्रप्रावरण नजर किए। फरवरी, १६७७ ई. में घटित हिंदुस्थान के इतिहास का एक महत्त्वपूर्ण प्रसंग था वह!

समझौते की शर्तें सब तय हुई। उन तीन मुद्दों के साथ ही कुतुबशाह द्वारा पहले जैसे एक लाख होन्न वार्षिक खंडणी देने का क्रम आगे भी जारी रहा। इसी समय शिवाजी महाराज ने "दक्षिण के राज्य दाक्षिणात्यों के हाथों में" ऐसे एक नये तंत्र का जाल फेंककर बीजापुर दरबार के दक्खनी सरदारों को वहाँ के पठानी सरदारों के खिलाफ भिड़ा देने का प्रयत्न प्रारंभ किया। फिलहाल शिवाजी एवं कुतुबशाह – यही दो खास दाक्षिणात्य थे। महाराज की भेद नीति के प्रयोग का यह एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इसी अवधि में उन्होंने फिर एक बार कुतुबशाह से भेंट की। एक दिन भोजन के लिए मादण्ण के घर आने का स्नेहभरा न्यौता भी मिला। यह परम प्रतापी हिंदु राजा, हिंदु धर्मरक्षक अपने घर आ रहा है, इस बात का उसके सब घर वालों को बड़ा अभिमान एवं आनंद! स्वयं मादण्ण की माता ने महाराज को बड़े वात्सल्य से भोजन परोसा।

१६७७ ई. के मार्च में भाग्यनगर से महाराज दक्षिण के अभियान के लिए निकल पड़े। उनके साथ कुतुबशाह ने अपने सिपहसालार मिर्जा मोहम्मद अमीन को पाँच हजार फौज देकर भेज दिया।

जैतयात्रा के प्रारंभ में ही नीलगंगा के पावन प्रवाह का लाभ प्राप्त हुआ। महाराज ने नदी में स्नान किया। तीर पर ही द्वादश स्वयंभू ज्योतिर्लिंगों में से एक श्रीशैल मल्लिकार्जुन का मंदिर है। सम्राट कृष्णदेवराय द्वारा निर्मित अति भव्य देवालय! महाराज अंदर प्रवेश कर शिवजी के सामने सिर नवाकर खड़े हुए। मंदिर के चारों ओर का रमणीय परिसर तथा देवालय के पवित्र, प्रशांत सन्निधि ने उनके हृदय में दिव्य आनंदानुभव कराया। शिवचिंतन में वे पूरे तल्लीन हुए। सर्वेश्वर भगवंत के बारे में कृतज्ञता का भाव उनके मन में उमड़ आया। अपने सिर–कमल से ही शिव की आराधना करने की इच्छा उनमें उत्कट हुई। तभी उनके भक्ति–आवेग के परिणामस्वरूप उन्हें समाधि–स्थिति प्राप्त हुई। तब अपने अंतर्मन का आदेश सुनाई दिया, "ऐसा कर्म न करो! और भी अगाध कर्तव्य बाकी है!" समाधि अवस्था उतरने के बाद महाराज ने आत्माहुति की अपनी इच्छा मन से हटा दी। दस दिन तक वे श्रीशैल में ही ठहरे। अनेक धार्मिक कार्य संपन्न किए, श्री गणेश घाट का निर्माण किया। वहाँ पर एक धर्मशाला का निर्माण करने की व्यवस्था भी की। अगला पड़ाव तिरुपति! वहाँ पर बालाजी का दर्शन कर विपुल दान–धर्म किया।

तीर्थयात्रा समाप्त हुई! अब समर–यात्रा! पहला लक्ष्य जिंजी का किला! बड़ा दुर्गम दुर्ग! संघर्ष के जरिए उसे जीतना याने अपार समय की हानि और प्राणनाश भी निश्चित! इसीलिए वहाँ के किलेदार नसीर मोहम्मद को बहला–फुसला कर किला हथिया सकते हैं क्या? देखेंगे, ऐसा उन्होंने विचार किया। महाराज के एक सरदार ने सीधा उसके पास जाकर, "पचास हजार रुपये उत्पन्न की जागीर दे देंगे। किला छोड़ दो", ऐसा आमिष उसे दिखाया। उस डरपोक खान को शिवाजी के खिलाफ जंग जीतने का भरोसा ही नहीं था और यदि उसने जंग का ऐलान किया तो इधर किला भी जायेगा, उधर जागीर से भी हाथ धोना पड़ेगा। एकदम

से खान ने वह सलाह मान ली और किला छोड़ दिया। महाराज को अनावश्यक हिंसा कभी भी मान्य नहीं थी। सब लोग स्वयं ही सही मार्ग पर चलते रहें यही उनकी इच्छा रहती थी। लेकिन यदि वह नहीं हो पाया, तो शक्ति–प्रयोग के लिए सर्वदा सिद्ध ही थे। महाराज ने जिंजी किले पर चढ़ाई की और उसके बुर्ज पर भगवाध्वज फहराया। यही दक्षिण दिग्विजय का शुभारंभ रहा। विजयनगर पतन के बाद, धरा पर पड़ा भगवा ध्वज फिर से जिंजी में उत्तुंग आकाश में लहराने लगा। जिंजी के बाद, मार्ग में तिरुवण्णमलै तथा समोत्तीर पेरुमाल में मस्जिदों में रूपांतरित दो मंदिरों का पुनरुद्धार कर महाराज ने वहाँ पर शिवलिंग की प्रतिष्ठापना की।

समोत्तीर पेरुमाल के सहस्र खंबों वाले देवस्थान में कार्तिक–दीपोत्सव चलाने एवं गोपूर निर्माण की व्यवस्था कर महाराज आगे बढ़े। तत्पश्चात्, वेल्लूर किले का घेरा पड़ा। वह दीर्घकाल चलेगा, यह देखकर वहाँ अपनी एक टुकड़ी छोड़कर शिवाजी महाराज स्वयं तिरुवाड़ी (तिरुवय्यार – त्यागराज का जन्मस्थान) का मार्ग पकड़ा। वहां शेरखान लोदी पर हमला किया और उसे परास्त कर वडुवुर, देवपट्टं आदि २-३ किले जीत लिये। तिरुवाड़ी के एक ही लड़ाई में महाराज को पाँच हजार घोड़े प्राप्त हुए। वहाँ पर ही दक्षिण का सबसे अधिक तगड़ा विरोध पूरा समाप्त हुआ।

..... ४ .....

तदनंतर अपने बंधु व्यंकोजी राजे को मिलने के लिए शिवाजी महाराज तंजावूर गये। ऐसे पराक्रमी, धर्मरक्षक, महाराष्ट्र के प्रत्यक्ष छत्रपति अपने साक्षात् बड़े बंधु स्वयं अपने पास आ रहे हैं। यह देखते ही व्यंकोजी को चाहिए था कि वह खुद आगे आकर उनका सत्कार करते हुए स्वागत करे। परंतु उसने वैसा कुछ नहीं किया। इसके विपरीत, उसने ऐसा दुर्लक्ष व्यवहार किया मानो महाराज वहाँ आये ही नहीं।

दक्षिण दिग्विजय के लिए निकलने के पहले ही शिवाजी छत्रपति ने व्यंकोजी को एक भावपूर्ण पत्र लिखा था। उसमें उनके जीवनोद्देश्यों का स्पष्ट विवरण था। उसी महत्कार्य में सहभागी होने का आवाहन उन्होंने व्यंकोजी से किया था। परंतु दुर्दैव! बड़े भाई का सद्गुण छोटे भाई में नहीं

था। उसकी विकृत मनोनासिका को, स्वाधीनता के सुगंध से भी दासता की दुर्गन्ध ही अधिक आह्लादकर लगी! गाय के आंचल से चिपके हुए कृमि के लिए अमृत–तुल्य दुग्ध से भी उसका रक्त ही अधिक रुचिपूर्ण लगता है। नतद्रष्ट व्यंकोजी ने महाराज का वह पत्र यथोचित गंभीरता से लिया ही नहीं।

शिवाजी महाराज के लिए बड़ा पेचीदा प्रसंग खड़ा हुआ। अपने भाई पर ही हाथ उठाये तो भी कैसे? लेकिन वैसा ही छोड़ दिया तो स्वयं वापस लौटने के बाद, हाल ही में स्वतंत्र किए हुए भूप्रदेश तथा दुर्गों को बीजापुर के आधिपत्य में लौटाना पड़ता। अंत में, महाराज एक कठोर निर्णय पर पहुँचे। उनके जीवन भर में इस प्रकार के संदिग्ध धर्मसंकट कितने भी आये और गये थे। उन सभी प्रसंगों में उनकी ध्येय दृष्टि उनका एकमात्र मार्गदर्शी, ऐसा दीपस्तंभ था। हिंदवी स्वराज्य का हित ही उनके चिंतन–योजनाओं का निष्कर्ष था।

तंजावूर एवं कावेरी नदी के मध्य में स्थित तिरुमलवाडी में ठहरते हुए शिवाजी महाराज ने व्यंकोजी के कुछ आप्त सलाहकारों को अपने यहाँ बुलवाया। उनको समग्र विषय सही ढंग से समझाकर, अपने सूचनानुसार व्यंकोजी का मनपरिवर्तन करने भेज दिया। परंतु व्यंकोजी के मन का किल्मिष नहीं गया। प्रत्यक्ष में बातचीत कर, उसका परिवर्तन करने के हेतु उसे अपने भेंट के लिए आने का कहलावा महाराज ने भेज दिया। उसके अनुसार व्यंकोजी आया भी। तिरुमलवाड़ी में महाराज के साथ वह आठ दिन तक रहा भी। लेकिन उन्होंने जो कुछ कहा, उसमें उसने न 'हाँ' भरी, न 'ना' कहा। उसके मन में बदलाव नहीं आया। अंत में, महाराज ने, "पूज्य शाहजी महाराज के कर्नाटक में कमाया हुआ समूचे राज्य का उपभोग आज तक तुम्हीं करते आये हो। वास्तव में उनके देहावसान के तुरंत बाद उसमें मेरा हिस्सा मुझे देना चाहिए था। ठीक है, चिंता नहीं। अब भी क्यों न हो, न्याय से एवं बांधव्य से मसला हल करेंगे"। ऐसी अपनी आखिरी सलाह उसके सामने रखी। शिवाजी ने व्यंकोजी को लिखे प्रथम पत्र में पिता की जागीर का हिस्सा माँगने की अपनी इच्छा नहीं है, ऐसा

ही लिखा था। परंतु व्यंकोजी स्वराज्य के बुलावे के प्रति बहरा हो गया है, यह देखकर महाराज के सामने अन्य उपाय बचा ही नहीं। इसके बारे में भी व्यंकोजी से कोई प्रतिक्रिया नहीं आयी। उसके विपरीत, एक रात वह बिना बताये गुप्त रूप से शिवाजी के शिविर से खिसककर चोरों–जैसा भागकर तंजावूर के किले में जा बैठा! दूसरे दिन सुबह यह खबर सुनकर महाराज को बड़ा खेद हुआ। उन्होंने, "अभी बचपना नहीं गया", ऐसा कहा।

तदन्तर निरुपाय होकर, शिवाजी छत्रपति कोलरन नदी के उत्तर में स्थित व्यंकोजी का सब राज्य जीत लेने निकल पड़े। उसी समय उनको एक नया लाभ भी हुआ। उनका संताजी नामक व्यंकोजी से भी छोटा भाई उनसे मिल गया। उसे महाराज ने एकहजारी मनसबदार के नाते नियुक्त किया। कावेरीपट्टण, भद्राचलम, चिदंबरम आदि स्थान हस्तगत करते हुए तथा बेंगलूर, होसकोटे, कोलार, शिरा इत्यादि दुर्ग स्वतंत्र हिंदु राज्य में शामिल करते हुए महाराज ने अपना दिग्विजय वायुवेग से आगे बढ़ाया।

व्यंकोजी वहाँ पर भी चुप नहीं बैठा। उसने मदुरै एवं मैसूर राजाओं को शिवाजी के विरोध में खड़ा करने का प्रयत्न किया। बीजापुर से सहायता की याचना की। परंतु उससे कुछ भी हाथ नहीं लगा। आखिर उसने अपने बंधु संताजी पर ही हमला किया। उसमें उसकी सेना का बड़े अच्छे ढंग से समाचार लेते हुए संताजी ने उसे हराकर भेज दिया। यह खबर महाराज को भी प्राप्त हुई। तब भी उन्होंने उदार मन से व्यंकोजी को पत्र लिखा, "जो हुआ, सो हुआ। इतने पर तो दुर्योधन जैसा दुष्ट हठ न धरो। सुलह करो।" शक्ति का झटका लगते ही व्यंकोजी सीधे रास्ते पर आ गया। समझौते के लिए तैयार हुआ। रघुनाथ पंत ने सुलह करवायी। व्यंकोजी की पत्नी दीपाबाई बड़ी विवेकी एवं धर्मज्ञ महिला थी। उसने अपने पति को समझदारी सिखायी, दीपाबाई याने शिवाजी को अतीव आदर एवं अभिमान! उसके नाम पर बेंगलूर, होसकोटे, शिरा तथा जिंजी समीपस्थ सात लाख उत्पन्न का भू–प्रदेश महाराज ने व्यंकोजी के पास छोड़ दिया अर्थात् वह सब स्वराज्य प्रशासन के अधीन ही रहना था।

तब तक महाराज को दक्षिण में आये अठारह महीने हुए थे। औरंगजेब ने बीजापुर के साथ हाथ मिलाया है, ऐसा समाचार महाराज को मिला। रायगढ़ पर भी मुत्सद्दियों तथा प्रमुखों को भी महाराज लौट आएँ, ऐसा लग रहा था। महाराज ने भी अब शीघ्रातिशीघ्र वापस जाना ही अच्छा, ऐसा सोचकर अपना अश्व रायगढ़ की ओर दौड़ाया।

मार्ग में गदग प्रांत पहुँचने पर घटी एक घटना उल्लेखनीय है। वहाँ पर मराठा सेना–शिविर के समीप ही एक किला था। एक महिला वहाँ की रानी थी। नाम सावित्रीबाई, रूढ़–नाम – मल्लमा! बड़ी साहसी महिला थी! एक रात, महाराज के स्वामित्व के सामानों से लदे बैलों को ही उठाकर वह भाग गयी। अपने किले में जाकर उसने दरवाजा बंद किया। शिवाजी के सैनिकों ने उसका पीछा किया। वह एक छोटा माटी का किला था। परंतु अनेक महाप्रचंड गिरि–दुर्गों को भी पलक झपकने से पहले ही निगल लेने वाले उन जावली के योद्धाओं के सामने भी उस किले ने हार नहीं मानी। मराठों ने किले का घेरा तो डाल दिया, पर, चढ़ाई नहीं कर पाये। एक सप्ताह बीत गया, दो बीत गये, तीन हुए; एक महीना भी हुआ। महाराज तो उस महिला का अतुलनीय साहस देखकर चकित हुए। एक महीने के बाद किले के अंदर का गोलाबारूद समाप्त हुआ। तब किले से बाहर आकर, क्रुद्ध व्याघ्रिणी जैसी मल्लम्मा मराठों पर टूट पड़ी। रणमैदान में उसके पराक्रम ने मराठों को चौंका दिया। परन्तु वह छोटा सैन्य–दल कितना संघर्ष करेगा? आखिर पराभूत होकर वह मराठों की गिरफ़्त में आ गयी। मराठा सरदार सकुजी गायकवाड ने उसे बंदी बनाकर महाराज के पास भेज दिया। महाराज ने उसे छोड़ दिया। आदरपूर्वक उसका सम्मान किया। गायकवाड़ ने मल्लम्मा के साथ साधारण युद्ध–कैदी जैसा बर्ताव करने के कारण शिवाजी महाराज ने उसकी आँखें निकालने की घोर सजा फरमाई, ऐसी कुछ इतिहासकारों ने लिखा है। मल्लम्मा ने अपने छोटे पुत्र को शिवाजी महाराज के गोद में बिठाकर उसके सुरक्षा का भार उन्हीं पर सौंप दिया। धारवाड़ जिला के यादवाड में एक मंदिर है, जहाँ शिवाजी महाराज अपने अंक पर सोये बच्चे को दूध पिला रहे हैं तथा उनके सामने

मल्लम्मा खड़ी है; ऐसा एक शिल्प है। ऐसे ही और भी अनेक शिल्प कहीं–कहीं पर देखने को मिलते हैं।

..... ५ .....

दक्षिण दिग्विजय समाप्त कर १६७८ ई. के प्रारंभ में ही महाराज रायगढ़ पहुँच गये। गढ़ पर आते ही वेल्लूर के जीत की आनंदप्रद खबर भी वहाँ आ गयी। इधर, राजधानी में छत्रपति शिवाजी की अनुपस्थिति में भी उनके सहकारियों ने अनेक साहसपूर्ण कार्य करते हुए स्वराज्य को सुभद्र किया था।

१६७८ ई. के फरवरी में एक बड़ी महत्व की योजना तैयार हुई। तभी बीजापुर का वजीरे–आजम बहलोल खान 'अल्लाह को प्यारा' हो गया। उसकी जगह पर जमशेद खान नामजद किया गया। वह पूरा का पूरा नालायक तथा कमजोर दिल का शख्स था। बड़ी आसानी से लालच में आ जाता था। यह बात महाराज को पता थी। उन्होंने बीजापुर के तख्त और सुल्तान के साथ पूरी बीजापुर बादशाहत ही निगलने का एक अप्रतिम जाल बिछा दिया। उसके अनुसार, जमशेद खान को ६ लाख पगोड़ा धन लेकर बादशाह के साथ समूचा बीजापुर महाराज को सौंपने हेतु एक गुप्त करार के लिए राजी बनाया। परंतु तब तक यह बात किसी गुमनाम रीति से सिद्दी मसूद के कानों पर आ पहुँची। अपने ससुर सिद्दी जौहर की मौत के बाद वह अपनी फौज के साथ राजधानी से दूर ही रहता आया था। लेकिन बीजापुर तख्त के प्रति उसका ईमान थोड़ा भी कम नहीं हुआ था। उस तख्त के बचाव की जिम्मेदारी अब अपने कंधों पर ही है, ऐसा उसे लगा। इस कारण उसका ईमान और भी निखर उठा। कोई भी कीमत चुका कर बीजापुर के तख्त को बचा के ही रहूँगा, ऐसी कसम उसने खायी। उसके लिए पहले बीजापुर के किले में जाना जरूरी था। लेकिन जमशेद खान अपने को सीधा अंदर नहीं आने देगा, यह भी उसे अच्छी तरह से मालूम था। उसके लिए उसने बड़ी होशियारी से एक तरकीब निकाली। एक दिन एकाएक सिद्दी मसूद बहुत बीमार है, ऐसी खबर सब ओर फैली। कुछ ही दिनों में वह अल्लाह के घर सिधार गया,

यह खबर भी फैल गयी। उसकी मौत की वजह से लावारिस बनी उसकी फौज ने जमशेद खान को आसरा देने की गुजारिश की। खान ने भी उनकी माँग मानकर, उन्हें बीजापुर किले के अंदर आने की इजाजत दी। उनके साथ "अल्लाह को प्यारा हुआ" सिद्दी मसूद भी भेष बदल कर अंदर आया। आते ही, मसूद ने अपने फौजियों के बलबूते बगावत खड़ी कर के जमशेद खान को गिरफ्तार किया। उसके बाद, बादशाह को और पूरे बीजापुर शहर को भी अपने कब्जे में कर लिया। आदिलशाही के लिए रक्षाकवच ठहरने वाली थी यह घटना; महाराज की वह योजना पूर्ण रूपेण विफल हुई। बीजापुर के मार्ग पर निकल पड़े महाराज को अपनी सेना के साथ पन्हाला की ओर खाली हाथ लौटना पड़ा।

स्वयं के साधरणतः पौने दो वर्ष तक राज्य से बाहर रहने पर भी स्वराज्य का कारोबार सुचारु रूप से चला था, यह देखकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए। अब अपने पश्चात् भी राज्य का प्रशासन आगे भी सदा के लिए इसी रीति से जारी रहे, ऐसी कोई स्थायी व्यवस्था करनी चाहिए, इसके चिंतन में वे जुट गये। उसके लिए प्रारंभ से ही युवराज संभाजी के प्रशिक्षण की व्यवस्था कर दी। उसे उत्तम प्रकार से संस्कृत शिक्षा दिलाते हुए, युद्ध-कौशल में भी निष्णात हो, ऐसा प्रबंध किया। राजप्रासाद का चाल-चलन, दरबारी-शिष्टाचार, राज्य-प्रशासन तथा मुत्सद्दीगिरी में संभाजी अच्छी तरह से पारंगत हो, इस उद्देश्य से सब प्रमुख प्रसंगों में उसे भी अपने साथ ले जाते थे। महाराज ने जयसिंह के साथ बातचीत करते समय संभाजी को भी अपने साथ रखा था। वे आगरा गये थे तब भी उसे अपने साथ ही ले गये थे। बाद में शहजादा मुअज्जम के पास पंचहजारी मनसब पर भी उसे भेज दिया था।

संभाजी ने युद्धकला में भी प्राविण्य प्राप्त किया। वह तो जन्मजात ही महापराक्रमी था। बड़ा रूपवान! उसे देखते ही सैनिकों में विशेष प्रेम एवं अभिमान उमड़ आता था। इतना होने पर भी, उसका स्वभाव अच्छा नहीं था। उसमें सुधार के लिए आवश्यक ध्यान देने योग्य फुरसत महाराज को कहाँ थी? राजपुत्र की माता सईबाई का पहले ही देहांत हो चुका था

इस प्रकार कोई कर्ता-धर्ता समीप उपलब्ध न होने के कारण संभाजी "मन पूतं समाचरेत्" इस रीति से ही बड़ा हुआ। उसमें अहंभाव एवं हठधर्मिता ही विकसित हुई। युवावस्था में आते ही अमात्य मंडली के साथ उसकी चकमक शुरू हुई । स्वतंत्र रूप से ही उसने अपना शासन चलाना आरंभ किया। वह देखकर दक्षिण जाने से पहले स्वयं महाराज ने संभाजी का शृंगारपुर में रहने की सूचना देकर सेना के समेत उसे वहाँ भेज दिया था। इससे अपने बड़प्पन को चोट पहुँची है, ऐसा उसे लगा। उसके इस आंतरिक असमाधान तथा अविवेक का दुर्लाभ पाने के लिए दिलेर खान ने एक गोपनीय जाल बिछाया। संभाजी के साथ उसकी दोस्ती बढ़ गयी।

महाराज को दक्षिण से लौट आते ही पुनः संभाजी द्वारा अमात्यों के कर्तव्य--कार्यों में हस्तक्षेप करने का समाचार मिला। इस प्रकार की उच्छृंखल वृत्ति बढ़ गयी तो आगे राजा होने के बाद उसे स्वराज्य के दायित्व का वहन दुस्साध्य होगा, ऐसा महाराज को लगा। इसलिए उस पर सही संस्कार हो इस दृष्टि से समर्थ रामदास के पवित्र सहवास में रहने के लिए उसे सज्जनगढ़ भेज दिया। समर्थ याने अनुशासन की साक्षात् प्रतिमूर्ति! वहाँ जाने के बाद, संभाजी ने उसे महाराज द्वारा दी गयी सजा ही माना। अपना घोर अपमान किया गया है, ऐसा उसे लगा। शिवाजी महाराज के प्रश्रय से कहीं दूर स्वतंत्र राज्याधिकार चलाने की हठधर्मिता उसमें बलवती होती गयी। बस, एक दिन किसी को भी बताए बिना ही वह सज्जनगढ़ से भाग गया – सीधा दिलेर खान की छावनी में!

यह हृदय विदारक वार्ता रायगढ़ पहुँची। शिवाजी का पुत्र, स्वराज्य का युवराज औरंगजेब को कुर्निसात करने भाग गया! कितनी घोर दुर्दशा! महाराज के प्रति यह विधि की कैसी विडंबना! कितनी असह्य यातना! उन्होंने तत्काल अपने पुत्र को पकड़ लाने सेना को दौड़ाया। तथापि तब तक संभाजी दिलेर की पनाह में पहुँच चुका था। हिंदवी स्वराज्य का, हिंदु स्वाभिमान का घोर अपमान हुआ था। हिंदुस्थान का जानी दुश्मन औरंगजेब को, शिवाजी के कट्टर वैरी दिलेर खान को मिली खुशी का क्या बखान करें? स्वराज्य के उदय से लेकर अब तक, शिवाजी का साथ दे रहे मराठा

सरदार तो दूर छोटे–मोटे मावला लड़कों ने भी परकियों के सामने कभी अपना सिर नहीं नवाया था और अब प्रत्यक्ष युवराज ही वह काम करने निकला था! बलात्कार से नहीं, संघर्ष करते हुए कैदी के नाते भी नहीं, अपितु स्वयं ही अपने धर्म–वैरियों को कुर्निसात करने की तैयारी से! अपने अन्नदाता, खड्ग–प्रदाता पिता के विरोध में ही तलवार उठाने स्वयं ही निकल पड़ा था। स्वराज्य की संपूर्ण धरती एक बार कंपित हो उठी। और वास्तव में भी, रायगढ़ का परिसर भूकंप से थर्रा गया। जनमन की भावनाओं के साथ जन्मभूमि भी समरस हुई।

फिर भी, महाराज का मस्तिष्क सह्याद्रि के समान ही अडिग था। युवराज के राजद्रोह का विपरीत परिणाम स्वराज्य पर तिलमात्र भी न हो, इस दृष्टि से उन्होंने खड़ी जागरूकता बरती। संभाजी के विद्रोह से एक भी सैनिक की निष्ठा में कोई बाधा नहीं आयी। क्या आश्चर्य! यही था – ध्येयनिष्ठा का चमत्कार!

संभाजी के अपने पक्ष में आने से दिलेर खान को शिवाजी के खिलाफ एक बड़ा अस्त्र ही प्राप्त हुआ। युवराज का दुरुपयोग करते हुए उसने स्वराज्य में सेंध लगाने की धूर्त साजिश की। तब भूपालगढ़ में काफी धनदौलत तथा साधन–सामग्री का भंडार था। स्वराज्य का एकनिष्ठ सेवक तथा चाकण किले के संघर्ष का अप्रतिम वीराग्रणी फिरंगोजी नरसाला उसका किलेदार था। दिलेर और संभाजी ने मिलकर उस किले पर हमला किया। किले के पाँयते पर ही खड़े होकर संभाजी ने फिरंगोजी को आदेश दिया, "दरवाजा खोलकर गढ़ मेरे हवाले करो। नहीं तो तुम्हारा सर कलम किया जाएगा!" प्रत्यक्ष युवराज, स्वराज्य का भावी महाराज दरवाजे पर खड़ा होकर आदेश दे रहा है; फिरंगोजी धर्मसंकट में फँस गया। उसकी बुद्धि ही स्तंभित हुई। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हुआ। अंत में, वह भूपालगढ़ संभाजी को सौंप कर शिवाजी के पास चला गया। अपना युवराज आया है, यह देखकर किले के सात सौ मराठा योद्धा संभाजी की शरण गये। लेकिन उसने और दिलेर ने मिल कर उन सब के हाथ काट डाले। बची हुई प्रजा को कैदी बनाया गया। स्वराज्य के निष्ठावंत सैनिकों

को स्वराज्य के युवराज का प्यारभरा पुरस्कार! स्वयं जाकर, फिरंगोजी ने महाराज को भूपालगढ़ का पूरा प्रकरण निवेदन किया। अपने हाथ से कोई गलती हुई होगी, ऐसी उसने सपने में भी सोचा नहीं था। परंतु उसकी बातें सुन महाराज संतप्त हुए। उन्होंने फिरंगोजी की खड़ी खबर ली, "स्वराज्य रक्षण के कार्य में मोह–ममता आदि की बाधा पैदा न होने दो! हम उसे नहीं सहेंगे!" तत्काल इसी प्रकार की तीखी आज्ञा सब किलेदारों को भी भेजी गयी। सब को स्वराज्य–निष्ठा का एक नया पाठ मिल गया।

आगे चलकर, संभाजी और दिलेर खान दोनों ने मिलकर बीजापुर पर चढ़ाई की। वह देखकर सिद्दी मसूद का जंघाबल ही टूट गया। शिवाजी महाराज से प्रार्थना किये बगैर दूसरा चारा ही नहीं बचा था। महाराज ने भी उसे अभयदान दिया। अपनी दस हजार सेना के साथ स्वयं महाराज उसकी मदद करने दौड़ पड़े। बीजापुर किले के अंदर आहार की रसद पहुँचायी। दक्षिण के सत्ताधीशों का एक संयुक्त मोर्चा बनाने की महाराज की बहुत दिनों की योजना थी। उसके लिए स्वयं ही बीजापुर आकर बादशाह से मुलाकात करना चाहता हूँ, ऐसी वजीर मसूद को उन्होंने सूचना भेजी थी। बादशाह से शिवाजी की भेंट? सिद्दी मसूद की जान काँप उठी। तब उसे कुछ भी कहना कठिन हुआ। एक ओर अपने प्राण–रक्षक बनकर आये हुए व्यक्ति की विनती भी तिरस्कृत करना इष्ट नहीं था, तो दूसरी ओर, ऐसे शख्स को उसके सैन्य के साथ बीजापुर आमंत्रित करने का धैर्य भी नहीं था। दिलेर खान के बदले शिवाजी ने ही बीजापुर पर कब्जा किया तो क्या? आखिर उसने बड़ी चतुराई से जवाब भेजा। मुलाकात के लिए आप जरूर आइए, मगर सिर्फ पाँच सौ फौज के साथ ही आइए, ऐसी विनती की। परंतु इतनी कम सेना के साथ बादशाह से मुलाकात करने किले के अंदर जाना महाराज के लिए खतरे से खाली नहीं था। कुछ भी हो, आखिर सिद्दी मसूद और दिलेर दोनों ही पठान! अपनी आपसी दुश्मनी भूलकर शिवाजी के प्राण को हानि पहुँचाना उनके लिए असंभव नहीं था। इसीलिए महाराज ने तात्कालिक रूप में उस योजना को स्थगित रखा। बाद में दिलेर खान के फौज के लिए बाहर से

आ रही रसद, हथियार आदि की आपूर्ति को आधे मार्ग में ही लूटना प्रारंभ किया। घेरा डाले दिलेर खान की फौज पर भी चपल चाल के मराठा अश्वारोही दल के आघात सपासप गिरने लगे। मराठों के उस आघात की पीड़ा से परेशान होकर आखिर दिलेर खान घेरा उठाकर वापस लौट गया।

खुद को जान बख्श देने वाले शिवाजी के बारे में बीजापुर बादशाह का दिल सही मायने में कृतज्ञता से भर आया। उसने महाराज को अपार बहुमूल्य नजराना भेज दिया। बाद में, दोनों का एक महत्त्वपूर्ण समझौता भी हुआ। उसके अनुसार महाराज के दक्षिण दिग्विजय में जीते हुए (अर्थात् बीजापुर के ही) भूप्रदेशों के वे ही मालिक होंगे, ऐसी मंजूरी बादशाह ने लिखित रूप में दे दी।

संभाजी को आगे रखकर दिलेर खान का भूपालगढ़ में प्रयोग में लाया हुआ भेदतंत्र अगले हमलों में नहीं चल सका। स्वराज्य के एक–एक सरदार भी अब भली–भाँति जागरूक हो चुके थे। दिलेर खान बार–बार मुँह की खाने लगा। उस परेशानी से पागल होकर दिलेर ने जहाँ–तहाँ हिंदुओं की भीषण हत्या, हिंसाचार, नगरों की लूट, आगजनी आरंभ कीं। हिंदु कैदियों की गुलामों जैसी बिक्री करने लगा। हिंदुओं पर ढाए जा रहे अत्याचारों को तुरंत रोका जाए, ऐसा संभाजी ने बड़े क्रोध से खान को कहकर देखा। खान का जवाब, "मुझे कहनेवाले तुम कौन हो? यहाँ सिर्फ मेरी ही हुकुमत चलेगी, तेरी नहीं।"

इन बातों से संभाजी की आँखों में अंजन पड़ गया। उसे प्रज्ञा प्राप्त हुई। "पूछने वाले तुम कौन?" इस बात के सवाल ने उसके हृदय को चीर दिया। मन में भीषण झंझावात उमड़ पड़ा। "ओह, मैं कौन?", ऐसा उसने स्वयं को ही पूछा। "समस्त स्वराज्य का भावी छत्रपति!" अंतःकरण से जवाब आया। परंतु अब? विधर्मी, अत्याचारी दिलेर खान का एक मामूली गुलाम! अपने पूज्य पिताजी के स्वतः का अर्ध्य देकर निर्मित किए स्वराज्य के सर्वनाश के लिए खड़े औरंगजेब के हाथों की एक बेजान कठपुतली!

उधर, औरंगजेब ने संभाजी के लिए एक साजिश तैयार की। नेताजी की तरह ही संभाजी को भी धर्मांतरित करने की योजना! संभाजी को गिरफ्तार कर फौरन दिल्ली को रवाना करने की गुप्त सूचना उसने दिलेर खान को भेज दी। लेकिन किसी प्रकार उसकी भनक संभाजी को लगी। शिवाजी महाराज के गुप्तचर तो छाँव की तरह संभाजी के पीछे ही लगे थे। अपने युवराज को स्वराज्य में लाने का चुपचाप साहस करने में वे निरंतर जुटे ही थे। औरंगजेब के छुपे फरमान की खबर उन्होंने ही संभाजी तक पहुँचायी होगी। दिलेर की छावनी में संभाजी का ससुर महादजी निंबालकर भी था। उसने संभाजी को खूब डाँटा और तत्काल भाग जाने की सलाह दी। अंत में संभाजी को खिसक जाने का एक मौका मिल गया। एक रात अथणी से ऐनापूर आने के मार्ग में ही वह अपने पत्नी को भी पुरुष वेश पहनाकर दिलेर खान की छावनी से भाग निकला। वायुवेग से बीजापुर जाकर वहाँ आश्रय पा लिया। संभाजी ने अपने को धोखा दिया है, यह समझते ही दिलेर खान गुस्से से पागल हुआ। संभाजी को वापस पाने के लिए उसने मसूद खान के साथ बातचीत शुरू की। महाराज के जासूसों ने इस बारे में भी युवराज को चेतावनी दी तथा स्वराज्य में लौटने की व्यवस्था भी की। उसके अनुसार, बीजापुर से भी फरार होकर संभाजी पन्हालगढ़ जा पहुँचा। तुरंत महाराज को समाचार गया। उन्हें प्राप्त आनंद की तो क्या कहें पुत्र–दर्शन करने रायगढ़ से स्वयं ही दौड़ते पन्हालगढ़ आ गये। क्षीण हो रही अपनी देहस्थिति, स्वराज्य की बाल्यावस्था, शत्रुओं की साजिश इन सब बातों में संभाजी को समझा–बुझा कर अंत में वात्सल्य से, "मुझे छोड़ कर कहीं मत जा, पुत्र! औरंगजेब तेरी हत्या करने वाला था। दैववशात्, तुम बच गये। तुझे राज्य दूँगा। तुम मेरे ज्येष्ठ पुत्र हो! कावेरी से तुगंभद्रा तक कर्नाटक का राज्य तुझे दे रहा हूँ, तुगंभद्रा से गोदावरी तक इधर का भाग राजाराम को दूँगा; दोनों राजकाज चलाओ! मैं अब ईश चिंतन करते शेष आयु सार्थक करना चाहता हूँ।" ऐसा कहा। अपना राज्य इस प्रकार दोनों में बाँट देने की

सोच में निरत शिवाजी महाराज का दूरदर्शित्व का विवरण इसके पूर्व ही आया है। उच्छृंखल वृत्ति के संभाजी को राजधानी में न रखते हुए सुदूर कर्नाटक में रखना, ऐसा उन्होंने स्वराज्य के हित की दृष्टि से ही सोचा था।

महाराज की बातों पर सिर अवनत रखते हुए ही संभाजी ने उत्तर दिया, "आप की चरण सेवा के अलावा मुझे कुछ नहीं चाहिए!" उसे अब स्वराज्य एवं परराज्य का अंतर अच्छी तरह समझ में आने लगा था। भविष्य में उसने इस सूत्र को कभी नहीं भुलाया। फिलहाल तो उसके कारण स्वराज्य को चिपका कलंक एवं अंतर्कलह की विपत्ति दूर हुई। शिवाजी महाराज के पुण्यप्रताप से वह आखिरी हार अब जीत में परिवर्तित हुई।

प्रायः उसी समय औरंगजेब के हिंदुद्वेष को नये पर फूटे। पहले ही वह हिंदुओं पर विविध तरह के दुराचार अबाध रूप से चला ही रहा था। अब तो उसमें शिवाजी की खिलाफत करने का धैर्य बिल्कुल बचा नहीं था। पर अब अन्य गरीब हिंदुओं पर उसका भीषण विषवमन प्रारंभ हुआ। प्रथमतः अपने साम्राज्य के सब हिंदुओं पर उसने जजिया–कर लादा। यह सुनकर शिवाजी महाराज समूचे हिंदुस्थान के हिंदुओं को पीड़ित करने वाली इस नरकयातनाओं एवं अपमानों के कारण बहुत ही व्यथित हुए। उन्होंने औरगंजेब को एक पत्र लिखा, "भगवान की दृष्टि में सब एक समान हैं, मस्जिद–मंदिर दोनों एक ही हैं। प्रजा में भेदभाव बरतना पाप है। पुराने काल में ऐसे पापमार्ग पर चलने वाले सब नष्ट हुए हैं। इस बुढ़ापे में ऐसा करना आप को शोभा नहीं देता। हिंदुओं को पीड़ा देना ही आपका धर्म है यह सत्य नहीं है। सर्वप्रथम राणा राजसिंह से जजिया वसूल करो! बाद में मैं हूँ ही! जनसामान्य को पीड़ा पहुँचाने में क्या पुरुषार्थ है?"

शिवाजी के इस मर्मभेदी प्रश्न का उत्तर देने के लिए आवश्यक बुद्धिबल, बाहुबल, ये दोनों भी औरंगजेब में अब नहीं बचे थे।

..... ६ .....

इसके पश्चात् भी महाराज की तलवार ने विश्राम नहीं किया। जालना इत्यादि मुगली किले तथा भू–प्रदेश जीतते हुए वहाँ विजय संपादन करना जारी ही था। उस समय उनका एक अति महत्त्वपूर्ण कार्य याने खादेरी जलदुर्ग का निर्माण। मुंबई बंदरगाह के दक्षिण द्वार पर ही खड़ा द्वीप खांदेरी। जंजीरे के उत्तर में था। वैसे स्थान पर शिवाजी को दुर्ग निर्माण का अवसर देना याने जंजीरे के सिद्दी को तथा मुंबई के अंग्रेजों का अपने गर्दन पर मराठा छुरी सदैव रख लेने के समान था! उन दोनों के आपसी दोस्ती के बीच दुर्लंघ्य बाधा ही थी।

इस पृष्ठभूमि पर उन दोनों के खड़े विरोध का सामना करना ही पड़ेगा, ऐसा शिवाजी महाराज ने भाँप लिया था। तथापि विरोध या आपत्तियों से डरने का स्वभाव शिवाजी का नहीं था। निरंतर उन दोनों का तगड़ा विरोध सहते ही महाराज ने इस जलदुर्ग का निर्माण पूर्ण किया। १६७९ ई. में खांदेरी पर चले अंग्रेज तथा जंजीरे के सिद्दी इन दोनों के संयुक्त हमले को परास्त कर महाराज ने अप्रतिम जीत हासिल की।

महाराज का देह अब बहुत ही थक चुका था। बाल्य काल में आरंभ कर पूरे जीवन भर अनथक दौड़धूप, संघर्ष और पलभर का भी विश्राम नहीं। दिन–ब–दिन उन्हें अब मेरे हिस्से का कर्तव्य पूर्ण हुआ है, ऐसा लगता गया। अंतिम बार सज्जनगढ़ जाकर उन्होंने समर्थ रामदास का दर्शन किया। कुछ दिन वहाँ के प्रशांत वायुमंडल में रहकर मन की शांति पाकर वापस आ गये। रायगढ़ लौटने के बाद, समर्थ को धर्म–स्थापना की आपकी आज्ञा का पालन किया है, ऐसा अंतिम पत्र लिखा।

तदनंतर, बचे–खुचे कौटुंबिक कर्त्तव्य यथासंभव पूरे किए। तथापि उनके उन अंतिम दिनों में उन्हें गृहकलह के मनस्ताप ने दहका दिया। एक ओर संभाजी का उद्धट दुर्वर्तन, तो दूसरी ओर द्वितीय पुत्र राजाराम को राज्यभिषेक कराने के लिए लालायित रानी सोयराबाई – इन दो कैंचियों में फँसकर महाराज पूरे टूट चुके थे।

१६८० ई. आया। पुराने पत्ते गिर चुके। नयी पल्लवी उभरकर वसंत का उदय हुआ। तभी सह्याद्रि के समूचे वन–काननों ने वृद्धाप्य का पुराना वसन फेंककर, असंख्य रूपों में, असंख्य रंगों में नया देह धारण किया। दूरस्थ हिमगिरी के हिमाश्म को स्वर्णिम सूर्यकरों ने स्पर्श किया, वह जल बनकर सागर की ओर बहने लगा तथा वाष्प बनकर ऊँचे आकाश में चढ़ गया।

तब महाराज की आयु पचास वर्ष! कुछ बीमारी हुई। आरंभ में उसकी गंभीरता किसी के ध्यान में आयी ही नहीं। स्वयं महाराज ने भी उसकी इतनी गणना नहीं की। दुस्साध्य परिश्रम से उनका शरीर जर्जरित हुआ था। देह की अपूरणीय हानि हुई थी। अब विश्राम, पूर्ण विश्राम की आवश्यकता थी। आठ–दस दिनों के बाद, 'अब अपने घर' जाने की घटिका समीप आयी है, ऐसा उन्हें लगा! तब तक अनेक जीवश्च–कंठश्च मित्र आगे जा चुके थे। हनुमान जयंती की चैत्री पूर्णमासी का दिन! महाराज ने अपने सब साथियों को पास बुलाया। शांत स्वर में, "हम अब कैलाशपति शिवजी के दर्शन करने जाएँगें" ऐसा कहा। यह अनपेक्षित बात सुनकर उन सब के हृदयों पर वज्राघात ही हुआ। निचोड़ कर सब के अंतर्मन बाहर आए। सीना चीर गया, आँखों में आँसू उमड़कर बहने लगे। महाराज ने उसी शांत स्वर में कहा, "दुःख करने का कारण नहीं। यह मृत्युलोक है। एक न एक दिन सब को यह गठरी फेंककर जाना ही होता है। अब स्वल्प समय के लिए आप सब बाहर जाकर बैठिये। मैं ईश–स्मरण करता हूँ।" सब की विदाई ली।

कितना अपूर्व संतुलन! स्थितप्रज्ञ योगी की मनःस्थिति!

तदनंतर महाराज ने गंगोदक से स्नान किया। भस्म, रुद्राक्ष, तुलसीमाला धारण की। दर्भासन पर बैठे। श्रीदेवी स्मरण, भगवद्गीता

तथा सहस्त्रनाम का पठण ब्राह्मणों द्वारा प्रारंभ हुआ। उसी योगावस्था में ही वह महादिव्य तेज शरीर बंधनों का त्याग कर, अनंत तेजस् में विलीन हुआ! राष्ट्रजीवन के रूप में अमर हुआ!

– वृक्ष के रूप में बीज अमर हुआ।

– सिंधु के रूप में बिंदु अमर हुआ।।

❖❖❖❖❖

राष्ट्रीय युगावतार

– मानवता का अमर अलंकार

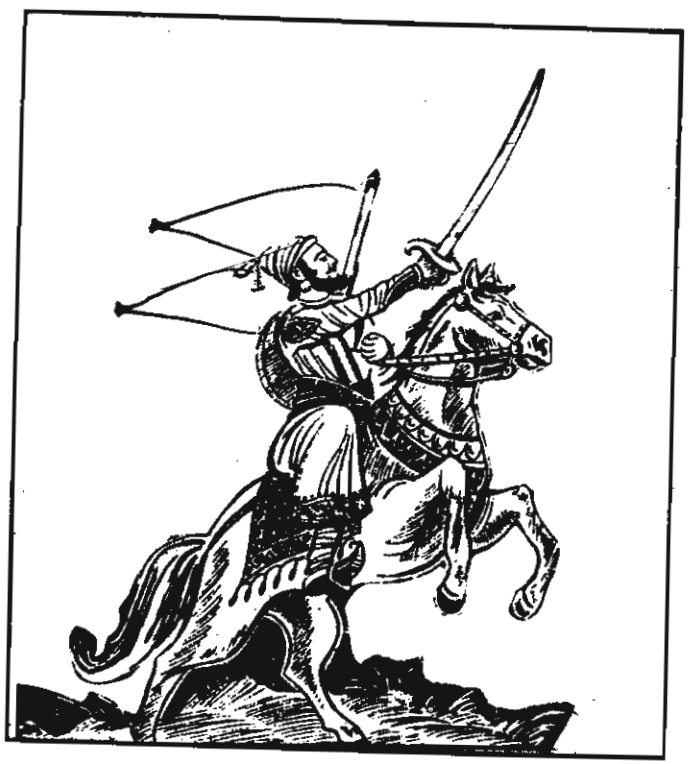

हिंदु धर्मप्रतिष्ठाय सिद्धखड्गाः सदा वयम्।

प्रसिद्ध इतिहासकार श्री जदुनाथ सरकार ने छत्रपति शिवाजी महाराज के जीवन कार्य का वर्णन इस प्रकार किया है, "जहाँगीर ने प्रयाग के अक्षय वट वृक्ष को जड़ों से काट डाला था। उसकी जड़ों पर उबलता सीसा उँड़ेला था। अविनाशी ऐसे उस वृक्ष को मैंने पूरा नष्ट किया है, ऐसा बड़े गरूर से ऐलान किया था। परंतु आगे क्या हुआ? एक वर्ष के अंदर ही जलकर खाक हुए उन्हीं जड़ों से वह वट वृक्ष फिर से अंकुरित हुआ। ऊपर से अपने को आवृत्त किए हुए सीसे के दुर्भेद्य कवचों को चीरते हुए बढ़ते गया। उस सीसे के कवचों–जैसी ही दासता की श्रृंखलाएँ, अत्याचार आदि हिंदुत्व के वटवृक्ष को सैंकड़ों वर्षो तक ध्वस्त कर सेंध कर बैठे थे। वही वटवृक्ष परकियों के दमनाभार में फँसने के बाद भी मरने के बजाय, फिर नये सिरे से अंकुरित होते हुए, दासता के सीस–कवचों को दूर फेंककर बढ़ते–बढ़ते गगनचुंबी बनकर खड़ा हो सका, यही बात शिवाजी ने अपने जीवन से साबित कर दिखायी है।"

इस वाक्य का गर्भितार्थ पूर्ण रूपेण समझने के लिए तत्कालीन वायुमंडल की भयावह पृष्ठभूमि में श्री शिवाजी महाराज की असाधारण प्रतिभा–पौरुष किस प्रकार झलकी होगी यह आँखों के सामने लाना पड़ेगा।

..... १ .....

खिस्त शके सातवीं–आठवीं शताब्दी से भारत पर सिंधु प्रांत द्वारा टिड्डियों की झुंडों की तरह आए मुसलमानों के हमले प्रारंभ हुए। मध्य एशिया, ईरान, अफगानिस्तान आदि से बार–बार हमले होते ही गये। वहाँ से आगे छः शताब्दियों के कालावधि में भारत ने निरंतर स्वातंत्र्य–संघर्ष चलाया है। १००१ ई. में गजनी महमूद ने भारत पर आक्रमण किया। सोमनाथ का मंदिर एक बार नहीं, अनेक बार ध्वस्त हुआ। तदनंतर आये हमलावारों में प्रमुख था – मोहम्मद गोरी। ११९३ ई. में उसके द्वारा दिल्ली सिंहासनाधीश्वर पृथ्वीराज चौहान का पराभव हुआ। इंद्रप्रस्थ का हिंदु सिंहासन चकनाचूर हो गया। वहाँ से आगे हमारा सहस्रों वर्षों का स्वतंत्र, समृद्ध, सुसंस्कृत राष्ट्रजीवन टूट–फूट कर धराशायी होने लगा।

स्वदेश–स्वधर्म के रक्षार्थ अनेक शूरवीर राजपूत राजाओं ने संघर्ष तो किया लेकिन दिल्ली के पतन के बाद सौ सालों में ही समस्त हिंदुस्थान यवनमय बन गया। मठ–मंदिरों का विध्वंस, महिलाओं का मानभंग, बलात्कारों से धर्मान्तरण, सामुहिक हत्याएँ आदि का भीषण तांडव चल रहा था।

दिल्ली पतन के पश्चात् पूरे सौ वर्ष के बाद १२९३ ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने विंध्याद्रि को पारकर दक्षिण में कदम रखा। अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने फिर एक बार हमला कर देवगिरि को धूमिल किया। अनंतर पहला घोर आक्रमण मोहम्मद तुगलक ने किया। उस दावानल में झुलस कर सुदूर दक्षिण में मदुरै, रामेश्वरम् आदि भी नष्ट–भ्रष्ट हुए। तो उत्तर जैसे ही दक्षिण भी पूर्णरूपेण पादाक्रांत हो चुका, ऐसा कहने लायक दुष्ट घटिका थी। परंतु उस समय, स्वामी विद्यारण्य के तपोबल से एवं हुक्क–बुक्क के खड्ग–प्रताप से विजयनगर का हिंदु विजयध्वज १३३६ ई. में फहराने लगा। १५५० ई. के समय उस हिंदु साम्राज्य का भाग्यभास्कर वैभव शिखर चढ़ते–चढ़ते नभोमध्य में आया। परंतु शीघ्र ही वह दिनमणी १५६४ ई. में राक्षसतंगडी में पश्चिमांबुधि में अस्तगत हो गया। उसके पश्चात्! सर्वत्र अंधकार ही अंधकार!

धीरे–धीरे आक्रमणकारियों के अत्याचार, बलात्कार अधिकाधिक भीषण होते गए। उस सर्वभक्षक आक्रमण के सामने इस भूमि के केवल हाथ ही नहीं, मन भी हारते गये। बाहुबल के हार से भी अधिक भयावह मनोबल का इस प्रकार धँस जाना अधिक भयावह था। बड़े–बड़े हिंदु सरदारों ने, महारथियों ने, मुत्सद्दियों ने, इतना ही नहीं उत्तमोत्तम कवियों ने भी शत्रु का पादसेवन करने में अपने सकल सद्गुण समर्पित किये। राजा टोडरमल जैसा धुरंधर राजकारणी, राजा मानसिंह जैसा दुर्दमनीय सेनापति, तानसेन जैसा गंधर्वतुल्य गायक, जगन्नाथ पंडित जैसा महाकवि आदि दिग्गज भी दिल्लीपति अकबर बादशाह के कुर्निसात करने में ही अपने जीवन का परम साफल्य देखने के दुर्दिन भी आए।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य भाग में तो विदेशी आक्रमणकारियों का विक्रम–वैभव चरम सीमा तक पहुँचा था। औरंगजेब जैसा महाकपटी,

अत्याचारी, हिंदु–द्वेषी बादशाह दिल्लीपति हुआ। मिर्जाराजा जयसिंह, जसवंतसिंह राठौर जैसे विख्यात राजपूत राजा, मुत्सद्दी औरंगजेब के पैर दबाने लगे। परकीय दासता के लिए औरों से भी अधिक सुभद्र ऐसी नींव वे ही बन गये। दक्षिण में बीजापुर आदिलशाही का वैभव एवं सामर्थ्य का मध्यान्ह काल भी वही था। भाग्यनगर के कुतुबशाही की शक्ति ने भी अपना सिर उठाया। उसी समय पश्चिमी तीर पर पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी, अंग्रेजों आदि यूरोपीय साम्राज्यशाहियों के थाने भी उभरने लगे। उनमें पुर्तगाली आक्रांताओं का ही अधिक प्राबल्य था। पूरे कोंकण–पट्टी में मुसलमानों के स्थान पर वे ही बद्धमूल होते गये। हमारे राष्ट्र को निगलने एक नयी श्वेतपत्ती खड़ी हुई।

जहाँ देखें वहाँ निराशा, आत्मक्लैब्य। बड़े–बड़े शूरवीरों के सीने में भी स्वातंत्र्य–प्राप्ति, स्वराज्य–स्थापना की कल्पना ही स्पर्श न कर पाये इतनी हताशा, हतवीर्य अवस्था छायी थी। शिवाजी के पिता शूर शाहजी राजा ने भी दिल्ली, बीजापुर और भाग्यनगर – तीनों बादशाहों के हाथों में रहते ही अपना असामान्य पराक्रम किया था। वह समूचे दक्षिण भारत में एक ही नामांकित हिंदु सरदार था। एक बार तो अनेक वर्षो तक निरंतर संघर्ष चलाते हुए भागानगर के शैशव अवस्था के बादशाह को दिल्ली के प्रचंड आक्रमण से बचाया भी था। परंतु, अंत में उसने उस मुसलमान बालक को ही तख्त पर बिठाया।

स्वयं ही, एक स्वतंत्र हिंदु राजा बनकर उस सिंहासन पर चढ़ने का साहस मात्र उससे बन नहीं पाया। कभी स्वतंत्र, स्वाभिमान–संपन्न होकर झलक उठे राज्यों के बड़े–बड़े अतिरथी वंशजों के मस्तिष्कों में भी 'दिल्लीश्वरों वा जगदीश्वरों वा' इस प्रकार दिल्ली बादशाह की 'जी हुजूरी' करने की मनोभूमिका बद्धमूल हुई थी। तब जनसामान्य की तो क्या कहें?

अर्थात् स्वराज्य की बाती बुझ गयी थी! स्वातंत्र्य की प्राचीन ज्योति शांत हुई थी! धर्म अंतिम सांस ले रहा था! "या भूमंडलाचे ठायी, धर्मरक्षी ऐसा नाही" – इस भूमंडल पर धर्मरक्षक कोई भी नहीं रहा, ऐसे समर्थ

रामदास के ही उद्‌गार हैं। समूचे भारत भर में तीर्थाटन के पश्चात उस योगी ने हताश होकर दो बार आत्महत्या का प्रयत्न भी किया था। परिस्थिति की भीषणता उतनी विस्फोटक स्थिति तक पहुँची थी। पहले के रोम, ग्रीस आदि अगाध वैभवशाली साम्राज्य भी उन वैभव–शिखरों से धँस कर संपूर्ण निर्नाम हुए थे। उसी प्रकार हिंदु समुदाय की भी गति होगी ऐसी भीति छा गयी थी। अफगानिस्तान, बलूचिस्तान की पंक्ति में हिंदुस्थान को भी आना चाहिए, ऐसा घूत्कार अपशकुनी उल्लू करने लगे थे। हिमालय से रामेश्वरम् तक, सिंधु से ब्रह्मपुत्र तक घने दास्यांधकार का साम्राज्य फैल गया था।

तब तक पश्चिम तटीय सह्याद्रि के पहाड़ों के गर्भ से एक नवजात बालक का उदय हुआ। बाल्यावस्था में ही विदेशी बादशाह को उस लड़के ने मुजरा करना नामंजूर किया। आते–आते उसने बीजापुर – तख्त को जड़ से ही हिलाया। भाग्यनगर के कुतुबशाह को झुका दिया; जिसके स्मरण मात्र से जयसिंह–जैसे रणधुरंधर सरदार का शरीर भी कंपायमान होता था, वैसे दिल्ली बादशाह के दिल में भी उस सह्याद्रि के बालक ने कंपकंपी पैदा की! उसका 'औरंग' यानि सिंहासन हिल गया और 'जेब' यानि शोभा भी पूरी मटियामेट हो गयी। ईरान का युवा बादशाह शाह अब्बास द्वितीय ने तो औरंगजेब को पत्र लिखकर हँसी उड़ायी, "तुम खुद को आलमगीर याने विश्व–सम्राट कहलाते हो। लेकिन एक छोटे सरदार के बेटे को जीतना तेरे लिए मुमकिन नहीं हुआ। अब मैं ही हिंदुस्थान आकर, बादशाह का फर्ज किस प्रकार निभाना चाहिए, यह तुझे सिखाऊँगा।" इस तरह से 'सरदार के बागी बेटे' की कीर्ति हिंदुस्थान के बाहर भी पहुँच चुकी थी। धीरे–धीरे उस बालक ने पश्चिम तटीय क्षेत्रों में अभी–अभी आकर बसे सफेद आक्रमणकारियों के ऊपर भी दिग्बंधन लाद दिये। दमन एवं दुराचार के शिकार हुए हिंदु कहीं पर भी हो, उनकी आर्त पुकार कानों पर पड़ते ही उनका रक्षण करने दौड़ने लगा। संपूर्ण हिंदु जगत का उद्धारक बना। उसका खड्‌ग स्वराज्य तथा स्वधर्म का तारक एवं दुष्ट दुश्मनों का मारक बना!

और भी कुछ साल बीत गये। उस बालक का काल समाप्त हुआ। उसके वंशजों ने उसका कार्य आगे भी जारी रखा। शिथिल बने बीजापुर सल्तनत को जड़ों से उखाड़ कर फेंक दिया। निजामशाही का अस्तित्व नाम मात्र रहा। दिल्ली के विश्वसम्राट बादशाह को उसके साम्राज्य की राजधानी दिल्ली में ही निवृत्त कराते हुऐ उसे एक कोने में बिठाया। सह्याद्रि से निकले बौने टट्‌टू सिंधु प्रदेश पार कर आगे दौड़ पड़े। उस बालक के वंशज अटक, काबुल, कंधार तक जाकर हिंदुस्थान का विजयध्वज गाड़कर आ गये।

१६३० ई. के बाद याने उस बालक के जन्म के पश्चात् हिंदु केसरिया ध्वज ऊपर चढ़ते ही गया। मुसलमान आक्रमणकारियों का हरा झंडा नीचे धँसता ही गया। अंत में वह जमीन पर गिरके पूर्णतः धूलीपट हो गया। वहाँ पर अंधकार का साम्राज्य नष्ट हुआ। नया सवेरा हुआ। सह्याद्रि के शिखरों पर उद्‌भूत विद्युत के उस अद्‌भुत उन्मेष का चमत्कार था वह! निराश होकर, निस्सहायक बनकर मृत्युमुख में पड़े इस देश ने एकाएक तंद्रा तोड़कर, मृत्यु का कंठ चीरकर, मृत्यु को ही मृत्यु की खाई में ढकेलते हुए, स्वयं मृत्युंजय हूँ, यह साबित किया! प्रयाग के वटवृक्ष के समान ही अक्षय हूँ, यह प्रमाणित किया!

जदुनाथ सरकार के कहने का अर्थ यही है।

ऐसा अकल्पनीय चमत्कार कैसा हुआ? सह्याद्रि के उस शिशु के लोकोत्तर यश का रहस्य क्या था? उस दिव्य शक्ति का स्रोत कहाँ से फूट पड़ा?

उस बालक के अंतःकरण में स्फुरित उज्जवल राष्ट्रीय ध्येय में ही उस सामर्थ्य का मूल छिपा था। छुटपन से ही परकियों–परधर्मियों के सामने सिर नहीं झुकाऊँगा, ऐसा उसने कहा। बारह–तेरह की आयु में ही अपने गुरु दादाजी कोंडदेव को साथ लेकर रोहिडेश्वर के सामने खड़े होकर, "हिंदवी स्वराज्य" की स्थापना की वीर सौगंध खायी। अपने बाल–सखा दादाजी नरसप्रभु को "हिंदवी स्वराज्य स्थापना यह ईश्वरीय कार्य है। उसकी सिद्धि भगवत्संकल्प में ही है," ऐसा ध्येयमंत्र लिख कर

भेज दिया। आगे भी अपने जीवनभर में उसी संजीवनी मंत्र को अपने तथा अपने साथियों के हृदयों में अंकित करते चल पड़ा। इतना ही नहीं, अपने विरोध में औरंगजेब का गुलाम बन कर आए मिर्जाराजा जयसिंह को भी उसी ध्येय का आवाहन किया, इसी संजीवनी मंत्र के आधार पर ही उसके द्वारा निर्मित राज्य बार–बार टूटने पर भी 'कच' की तरह उसमें बार–बार प्राण फूँककर खड़ा होता गया।

वह महान मंत्र राष्ट्रव्यापी हो इसलिए बुंदेलखंड का युवराज छत्रसाल उस राष्ट्रपुरुष के चरणों तक दौड़ कर आया। स्वातंत्र्य की दीक्षा पाकर बुंदेलखंड में स्वतंत्र राज्य स्थापित किया। उसके सत्स्पर्श से इधर कन्नड़िगों में भी स्वातंत्र्य की चाह जागृत हुई। कुतुबशाही का सूत्रधार मादण्ण के मन में भी बीजापुर की आदिलशाही का अंत करने के लिए सहायता देने का निर्धार बिंबित हुआ। विजयनगर को पुनरुज्जीवित करने का सपना उसे पड़ने लगा। उस राष्ट्रपुरुष के देहावसान के पच्चीस वर्षों के बाद भी पंजाब का एक जख्मी सिंह, वीरपंथी सिखों का दशम गुरु श्री गोविंदसिंह सहायता पाने सह्याद्रि के पास, उस राष्ट्रमंत्र उद्‌गाता के कर्मभूमि को, आया था। परकीय अत्याचारियों के दास्य–दुराचारों से पीड़ित जनसामान्य भी उसके पास प्रार्थना करने लगे। गोवा से, कोप्पल से उस अनाथ रक्षक की ओर नियोग भी आये। उन्होंने उससे परिशमन भी पाया।

श्री शिव छत्रपति का कार्य सही अर्थ में ध्येयनिष्ठा से अभिमंत्रित था। उसका परीक्षण करने आये प्रसंगों की कोई कमी नहीं, अनेक बार किसी कार्यवशात् अथवा अनिवार्य रूप से उनको स्वराज्य से बहुत दूर रहना पड़ा था। पन्हाला, आगरा में महीनों तक उन्हें प्राणसंकटों से भरे दिगबंधनों में रहना पड़ा। तत्पश्चात्, दक्षिण दिग्विजय के लिए निकलने पर दो वर्षों के दीर्घकाल तक वे स्वराज्य से दूर रहे, ऐसे किसी भी समय में स्वराज्य के शासन में गड़बड़ी या शैथिल्य निर्माण नहीं हुआ। स्वराज्य के हरेक प्रजा के हृदय में उन्होंने अपनी स्वतः की व्यक्ति निष्ठा के बदले स्वराज्य–स्वधर्म की अमर ध्येयनिष्ठा अंकित की थी। इसलिए वैसे विषम प्रसंगों में भी राज्य का कारोबार कड़ाई तथा सुचारू रूप से चला था।

शिवाजी महाराज द्वारा संपादित यह अपूर्व ध्येयोदय के मानसिक शांति का सब से अहम साक्षी याने उनका गनिमी–कावा याने गुरिल्ला युद्धतंत्र! स्वराज्य की सेना का छोटी–छोटी टुकड़ियों में समस्त भूप्रदेशों पर विद्युत्वेग से संचार करती प्रचंड दुश्मनी फौजों की फजीहत उड़ाना गिरि–पहाड़ों से लेकर गाँव–देहातों तक के जनसामान्यों से प्रत्यक्ष हो या परोक्ष हो, सब प्रकार की सहायता–सहकार के बिना असंभव था। जन–मन की आत्मीयता ही गनिमी–कावा युद्धतंत्र का मूलाधार थी। हम केवल एक व्यक्ति का राज्य स्थापित करने के लिए ही संघर्ष कर रहे हैं, ऐसा लगने पर जनमन में इतनी जाज्वल्य निष्ठा का सृजन होना कभी भी संभव नहीं है। उसके लिए एक ध्येयमंत्र की ही आवश्यकता है।

छत्रपति शिवाजी द्वारा प्रदत्त इस मंत्र की सब से अधिक घोर सत्वपरीक्षा का काल भी बहुत जल्दी ही आ गया। इस मंत्रद्रष्टा का अंत होते ही हिंदवी स्वराज्य की नौका को डुबोने प्रलय ही आ गया। इस छोटे ध्येयदीप को मिटाने चार लाख सुसज्जित समर–संभार के साथ खुद बादशाह औरंगजेब ही झंझा के समान दक्षिण में उतर आया। तथापि उसका मार्ग सुगम नहीं बना। संभाजी ने नौ वर्षों के दीर्घ काल तक उसके साथ प्राणप्रण से भीषण संघर्ष चलाया। वह आखिर औरंगजेब के कपटजाल में फँस गया। बादशाह ने उसे धर्मभ्रष्ट करने का दुस्साहस कर देखा! उसकी आँखें निकाली! जिह्वा काट डाली! फिर भी संभाजी स्वराज्य एवं स्वधर्म के साथ द्रोह करने के लिए तैयार नहीं हुआ। अंत में, औरंगजेब ने संभाजी की गर्दन काट डाली, सिर उड़ा दिया। उस मंत्र के उद्‌गाता का वह पुत्र उस अंतिम अग्निपरीक्षा में भी उत्तीर्ण हुआ। अपने रुधिर का ही तेल उंडेल कर उसने अपने पिता के ध्येयनिष्ठा का दीप प्रज्वलित रखा। तत्पश्चात् राज्य के रानी, युवराज शाहू आदि सबको औरंगजेब ने कैदी बनाया। एक–एक कर गढ़किले औरंगजेब के अधीन होते गये। लूटपाट तथा आगजनी द्वारा स्वराज्य फिर से दुश्मनों के शिकंजे में आ गया। एक भी नामलेवा नायक स्वराज्य में बचा नहीं था! सेनाधिपति नहीं था, दुर्ग नहीं था, राजधानी नहीं, सिंहासन कुछ भी बचा नहीं था। इस

प्रकार पच्चीस वर्षो तक औरंगजेब ने महाराष्ट्र के भूप्रदेशों को श्मशान में परिवर्तित करने का प्रयत्न किया। परंतु, उस एक–चौथाई शताब्दी के शतप्रयत्नों के बावजूद, स्वराज्य का श्मशान नहीं बन सका। बदले में, औरंगजेब को ही कब्रिस्तान जाना पड़ा! भग्नहृदयी होकर, १७०७ ई. में उसे अहमदनगर के कब्र में ही कयामत तक सोना पड़ा। उस छोटी ज्वाला को सहजता से बुझा दूँगा, ऐसा सोचकर औरंगजेब अपने साम्राज्य–सामर्थ्य का पूरा जोर लगाकर, "उफ", "ओफ" ऐसी फूँक मारते गया! उस फूँक की वेग से वह छोटी ज्वाला बुझने के बजाय और भी अधिक तेजी से भड़क उठी, महाज्वाला बनकर औरंगजेब की दाढ़ी को लगी और अंत में उसने उसके प्राणों की ही पूर्णाहुति ले ली।

सह्याद्रि के उस मंत्रदाता द्वारा स्पर्शित एक–एक शिखर ने उस अग्नि प्रलय में ज्वालामुखी बनकर मुँह खोल दिया। घर–घर स्वराज्य मंदिर बन गया। उस ध्येय मंत्र का अमृतसिंचन पाने वाला हर हृदय भी एक–एक स्वराज्य–सिंहासन बन गया। धनाजी जाधव, संताजी घोरपड़े जैसे छोटे–छोटे सरदारों के रूप में स्वयं महाराज ही फिर से अवतरित हुए। दुश्मनों की छावनी के अंदर घुसकर बादशाही डेरे के स्वर्ण–कलश ही उन्होंने काट लाये। उस समय औरंगजेब अपने डेरे में नहीं था, इसलिए वह बच गया। अन्यथा शूर मावला कलश के बदले उसका सिर ही कलम कर लाते। विगत काल में अलाउद्दीन खिलजी, मलिक काफूर के दिल्ली से चढ़ाई कर आते ही, हाँ–हाँ कहने के पूर्व ही सब कुछ जमीनदोस्त बनता आ रहा यह दक्षिण हिंदुस्थान, आज, तब से कई गुना अधिक भयंकर ऐसी दुश्मनी फौज को मटियामेट करने वाली वीरभूमि बन चुका था।

तदनंतर आये उस मंत्रद्रष्टा के अनुयायी भी उस मंत्र की महिमा के सत्यसाक्षी बन गये। केवल महाराष्ट्र के मुक्ति के लिए तत्पर न बनकर देश के समस्त पुण्य नदियों, तीर्थक्षेत्रों के मुक्ति के लिए अपने घोड़े उत्तर की ओर दौड़ाये। कारण उस मंत्रोच्चारक के राज्याभिषेक के समय पर

पधारे गंगा से लेकर कावेरी तक की सब नदियों ने उसे अपने मुक्ति का कंकण बांध दिया था। उससे अपने उद्धार का संकल्प करवाया था। उस मंत्रद्रष्टा के पुत्रों, प्रपुत्रों ने उसकी वह सौगंध पूरी की! उसके वंशजों ने इंद्रप्रस्थ से राज्य चलाया। एक प्रांत का नहीं, समस्त हिंदुस्थान का! वे राष्ट्रव्यापी स्वातंत्र्य–मंत्र के उद्‌गाता बन चुके थे। इससे अधिक ज्वलंत साक्षी अन्य कौन–सी हो सकती है।

११९३ ई. में इंद्रप्रस्थ में पृथ्वीराज के पतन के बाद किसी भी हिंदु राजा के हृदय में फिर दिल्ली पर कब्जा करने की कल्पना भी नहीं आयी। राजस्थान में अनेक प्रचंड पराक्रमी राजा हो गये! यह सही है कि उन्होंने कितनी बार बादशाह को नरम बनाया था। परंतु सीधा दिल्ली सिंहासन के लिए ही अपना हाथ नहीं लगाया था। मुसलमानों में ही दिल्ली तख्त के लिए कोई न कोई झगड़ा, हत्या आदि सब चलता था। परंतु उसका लाभ उठाकर स्वयं ही दिल्ली राजसिंहासन पर चढ़ने का प्रयत्न समस्त समर्थ राजपूतानी राजाओं में किसी एक ने भी नहीं किया। राष्ट्रव्यापी स्वतंत्र साम्राज्य स्थापना की प्रेरक कल्पना उनमें से किसी के मन में स्फुरित ही नहीं हुई।

शिवाजी महाराज ने उस महान कार्य का बीजारोपण किया। अपने आगरा भेंट में उस कार्य को हासिल कर सकता हूँ क्या, इसका प्रयत्न भी उसने करके देखा। परंतु, तब वह अप्रतिम साहस सफल नहीं हुआ। उनका वह सपना उनके वंशजों ने पूर्ण किया। शिवाजी महाराज की कल्पना के 'स्वराज्य' में स्थित 'स्व' अक्षर 'शिवाजी' इस व्यक्तिवाचक रूप में नहीं था। अपितु, "स्वराष्ट्र" ऐसा ध्येयवाचक था। स्वयं राजाभिषिक्त होकर स्थापित राज्य का स्वरूप ही इसका सर्वाधिक सुंदर साक्षी है। राज्य के प्रशासन यंत्र से लेकर, राज्यभाषा, राजसभा की रीतिनीतियों तक हरेक बात में प्राचीन राष्ट्रीय आदर्शों को प्रतिबिंबित किया।

राष्ट्र का हृदय स्फूर्ति–साहस से पुलकित करने वाला स्वराज्य–स्वधर्म के स्वतंत्र हिंदुराष्ट्र का मंत्र ही छत्रपति शिवाजी महाराज के सफलता का अमर बीजमंत्र हुआ!

..... २ .....

इस राष्ट्रीय ध्येयमंत्र के सिद्धि के पूर्ति हेतु छत्रपति शिवाजी महाराज द्वारा समाज संघटित करने के लिए निर्मित तंत्र भी उतना ही अद्‌भुत था, अपूर्व था। सामान्य सरदार का पुत्र होते हुए भी उन्होंने असामान्य कार्य साकार किया। जीवित काल में आँखों के सामने कोई आदर्श न होते हुए भी, अपनी अलौकिक प्रतिभा, कर्तृत्व, साहस आदि के आधार पर उन्होंने स्वयं ही उन आदर्शो का सृजन किया। उनकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा वहाँ पर भी प्रफुल्लित हुई।

राष्ट्र–संघटन का महत्कार्य करने निकले महाव्यक्ति द्वारा प्रयोग में लायी जाने वाली प्रथम योजना होती है – उस समाज के प्रत्येक घटक को भी उसी राष्ट्रीय प्रेरणा से अभिमंत्रित करना! चाहे वह किसान हो, कार्मिक हो, सैनिक हो, बोधक हो; अपने स्थित स्थान पर स्वयं–स्वीकृत काम में निस्सीम निष्ठा एवं परिश्रमों से उस महत्कार्य में सहभागी हो सके ऐसा करना। हिंदु समाज में तो यह कार्य अतीव आवश्यक ठहरा, ऐसा वह काल था। सैंकड़ों प्रकार के भेद, स्वार्थ, कलहों से सामाजिक प्रज्ञाशून्य बना काल था वह! उसी समय समूचे समाज का ग्रास करने अपना जबड़ा खोल कर खड़े भयंकर शत्रु! वैसी स्थिति में दीन–दलित सहित सब जाति–वर्ग–वृत्ति के लोगों को शिवाजी महाराज ने एक राष्ट्रीयत्व के परिधि में संगठित किया। स्वराज्य–स्वधर्म के रक्षणार्थ ब्राह्मणों से लेकर भंगियों तक में सबके अन्दर कंधे–से–कंधा मिला कर खड़े रहने जैसी मानसिक क्रांति समग्र समाज में उन्होंने लायी।

स्वराज्य स्थापना के उस महाप्रेरणा–प्रवाह के सामने अनेक पुरानी सामाजिक बाधाएँ अपने आप ही दूर होने लगी। शिवाजी आगरा से फरार होकर आते समय, मथुरा के कृष्णजी त्रिमल नामक ब्राह्मण के यहाँ बाल संभाजी को गुप्त रूप से छोड़कर आये ही थे। तत्पश्चात् अनुकूल समय देखकर बाल युवराज को रायगढ़ पर सुरक्षित लाकर छोड़ने की प्राण संकटों से भरी जिम्मेदारी भी उस दूर प्रांत के ब्राह्मण ने स्वीकार की थी।

उसने संभाजी का उपनयन कर उसे ब्राह्मण बालक के नाते परिवर्तित किया। उतना भर नहीं, उन दोनों के पिता–पुत्र जैसे नाटक करते दक्षिण की ओर निकलने पर एक मुसलमान ओहदेदार की शक्की नजर उन पर पड़ी। "यह लड़का संभाजी नहीं, तेरा बेटा ही है, इसका क्या सबूत है? यदि यह तुम्हारा ही बेटा है, तो तुम दोनों एक ही थाली में खाना खाकर दिखाओ।" उसके इस चुनौती पर कृष्णजी त्रिमल ने पल भर का भी विलंब न करते हुए बड़े आनंद से संभाजी को साथ मे लेकर एक ही थाली में भोजन किया। वह देखकर उस मुसलमान ओहदेदार का वहम दूर हुआ। स्वराज्य के युवराज के प्राणों की रक्षा हुई। दुश्मनों को भी इतना भरोसा कि ब्राह्मण कभी भी किसी भी परिस्थिति में अपने से 'नीच जाति' वाले के साथ भोजन नहीं करेगा, चाहे तो अपने युवराज को भी दुश्मनों के हाथों सौंप देगा। लेकिन वह अपने 'धर्म' के बंधनों को नहीं तोड़ेगा। तब सही अर्थ में जातिबंधन इतने दुर्भेद्य थे। परंतु शिवाजी महाराज द्वारा प्रश्वसित ज्येष्ठ ध्येयमंत्र के आघातों से उन बलिष्ठ दीवारों की नींव भी ढहने लगी।

उनके साथ दादाजी कोंडदेव, निलोजी सोनदेव, मोरोपंत पिंगले, गोपीनाथ पंत जैसे ब्राह्मण मुत्सद्दी लोगों की तरह ही तानाजी मालुसरे, बाजीप्रभु, मुरारबाजी, नेताजी, सूर्याजी, प्रतापराव गुर्जर इत्यादि एक से बढ़कर एक रणव्याघ्र सरदार, पुरंदरगढ़ का अप्रतिम शूरवीर 'अस्पृश्य' आदि इकट्ठा हुए। कुतुबशाही, आदिलशाही के कारोबार में दक्ष तथा गुणाढ्य हिंदु महाराज के ध्येयनिष्ठा की जादू से आकर्षित होकर ही आये थे।

ऐसी अपूर्व मानसिक क्रांति शिवाजी महाराज ने कैसे लायी थी? उनके कार्य का यशःप्रद तंत्र कौन–सा था? उनका व्यक्तिगत संपर्क! सब के साथ समान रीति से घुल–मिलकर, असंख्य व्यक्तियों को एकसूत्र में जोड़ने वाला हार्दिक बांधत्व! बाल्यावस्था से ही वही उनका अत्यंत प्रिय ऐसा छंद रहा था। गिरी–गव्हरों में सब तरह के लड़कों को लेकर घूमना–फिरना, एक होकर खेलना–कूदना, मिलकर खाना–पीना और एक होकर ही स्वराज्य का सपना देखना! लोक–संघटन का प्रथम तंत्र भी

वही है! नाना प्रकार की सामाजिक विषमता तथा विघटनों का विष घुला देने वाला हृदय का राजद्रावण भी वही है।

यहाँ के राष्ट्रीय समाज को चिपका एक और दोष हमारे धर्म से बिछुड़े हुए लोगों के बारे में आत्मघाती दृष्टिकोण! प्रलोभन से हो या प्राणभय से एक बार मुसलमान बनने पर उसे हिंदु के नाते अपने धर्म में वापस लाने के लिए कोई धर्माचार्य तैयार नहीं थे। इसके कारण एक बार मुसलमान बन जाने पर वह हिंदु समाज से सदा के लिए दूर ही रह जाता था। इतना ही नहीं, हिंदु समाज का ही नाश करने खड़े दुश्मनों के साथ मिल भी जाता था। राजकीय दौर्जन्य एवं दासता से भी भयानक ऐसा दूरगामी अत्याचार तथा दास्य वही था। आज के सर्वनाश का मार्ग भी वही था। लगातार राष्ट्रीय संख्याबल धँस रहा था, दुश्मनों का संख्याबल बढ़ रहा था, इससे अधिक अपायकारी स्थिति राष्ट्र के लिए अन्य कोई हो सकती है क्या? अनेक शतमानों के पश्चात् प्रथम बार इन संकटों को पहचानकर उसका परिहार करने वाले केवल शिवाजी छत्रपति ही थे। उन्होंने धर्मान्तरितों का शुद्धिकरण करते हुए उनको स्वीकार करने का क्रम चलाकर अद्‌भुत, अकल्पित मानसिक क्रांति का सूत्रपात किया। बीजापुर बादशाह द्वारा धर्मान्तरित बालाजी निंबालकर तथा औरंगजेब द्वारा धर्मान्तरित कराए हुए नेताजी पालकर का शुद्धिकरण करते हुए हिंदु धर्म में परावर्तित किया। दूसरे लोग पीछे हटेंगे, इसलिए उनके साथ अपने ही परिवार वालों के रक्त–संबंध बढ़ा कर शिवाजी महाराज ने समाज को एक नयी धर्म–दृष्टि प्रदान की।

धारणात् धर्म इत्याहुः धर्मो धारयति प्रजाः।

समाज की धारणा ही धर्म का लक्ष्य है। समाज के अंतिम छोर के व्यक्ति को भी जनजीवन में एक गौरव का स्थान–मान तथा उसके विकासार्थ सब तरह का अवकाश उपलब्ध करा देना ही धर्म का उद्देश्य है। नरकासुर वध के बाद छुटकारा पाए हुए सोलह सहस्र स्त्रियों को समाज में सम्मान के साथ मिला लेने की दृष्टि से उन सब को धर्मपत्नियों का उच्च स्थान देने वाले श्रीकृष्ण के लोकसंग्रह का आदर्श ही शिवाजी की

इस कृति में भी प्रतिबिंबित होता है।

तब तक इसका प्रतिकार कैसे करें? यही न समझने के कारण हताश, हतप्रभ हुए हिंदु समाज पर अव्याहत रूप में चल रहे इस्लामिक मतीय आक्रमण को प्रथम बार यथार्थ उत्तर देने वाले शिवाजी छत्रपति एक सूक्ष्म धर्मज्ञ राजा ठहरे।

केवल यही एक मात्र नहीं, 'धर्म' के नाम पर हिंदु समाज की सुरक्षा तथा सामर्थ्य को संकट उत्पन्न करने वाले सब बंधनों का उन्होंने उन्मूलन किया। उदाहरणार्थ, समुद्र प्रयाण के लिए जो 'धार्मिक विरोध' की अंध श्रद्धा थी; उसे उन्होंने उखाड़कर फेंक दिया। उन्होंने स्वयं समुद्र प्रयाण कर, सागर–तट से अंदर जाकर जलदुर्गों का निर्माण किया। समरनौकाओं मे बैठकर संचार करते हुए सागर पराक्रम की उज्जवल परंपरा का निर्माण किया।

मुसलमान बादशाहों द्वारा तब प्रचलित की गयी एक और अनिष्ट पद्धति याने 'जागीर' देने की थी, जो स्वराज्य–निष्ठा को आतंकित कर रही थी। सरदारों के पराक्रमों की सराहना करके उन्हें विशाल जागीर दी जाने लगी। वे स्वतः की सेना टुकड़ियों का निर्माण कर संबंधित सूबों के जागीरदार बनने लगे। उन पर केवल एक ही बंधन था। वह याने बादशाह की आज्ञानुसार सूबों का कारोबार चलाना तथा बादशाह की आवश्यकतानुसार उसकी मदद करने अपनी टुकड़ियां ले जाना। अर्थात उनके अधीनस्थ सैनिक एवं प्रजा के लिए, वे सूबेदार ही निष्ठा का प्रथम केंद्र थे। शिवाजी महाराज के कब्जे में वैसे अनेक जागीरदार, देशमुख, देशपांडे, सरदार थे। इस परिस्थिति में शिवाजी पर हो या स्वराज्य पर हो, जनसामान्य की निष्ठा का बद्धमूल होना सर्वथा असंभव था। एक 'राज्य' के अंदर अनेक राज्यों की अवस्था स्वराज्य के लिए कभी भी विपत्तिजनक बन सकती थी। उसी प्रकार प्रजा, सैनिक आदि के स्वराज्य–स्थापना की ध्येयनिष्ठा से प्रेरित होने पर उनमें साकार होने वाला निस्सीम त्याग, साहस, कर्तव्य आदि केवल 'जागीरदारी' के निष्ठा से प्रकट होना असाध्य था। परंतु जागीरदारी पद्धति को निरस्त करना कोई सुलभ–साध्य काम नहीं था।

अनेक लोगों द्वारा विरोध होना स्वाभाविक था। उनमें भी इतिहासकार श्री त्र्यंबशंकर शेजवलकर के अनुसार, मराठों के दो प्रमुख स्वभाव वैशिष्ट्य याने भूमि के प्रति आत्यंतिक आसक्ति तथा संग्रह मनोवृत्ति! जागीरदारी की पद्धति याने इन दोनों का परिपोष करने वाली पद्धति और उसको रद्द करना याने इन दोनों मराठा स्वभाव वैशिष्ट्यों पर कुठाराघात। परंतु महाराज ने कठोर निर्णय ले ही लिया तथा उसे सफल बनाया। जागीर रद्द कर जमीन गरीब किसानों में बाँट दी। इससे जनसामान्य में स्वराज्य के बारे में आत्मीयता बढ़ गयी। साथ ही, स्वराज्य की सुरक्षा को अपायकारी ऐसी जागीरदारी का भी निर्मूलन हुआ। जमीन अपनी स्वतः की बनकर हाथों में आते ही, किसानों के प्रयत्न तथा परिश्रमों को अधिक प्रेरणा मिली और उत्पादन बढ़ गया। यहाँ पर भी उनके व्यक्तिगत आदर्शों ने ही सरकार के कानूनों को मान्यता प्राप्त करा दी। इसकी साक्षी के लिए अपने समधी शिर्के के जागीर माँगने पर दिया उत्तर ही काफी है।

शत्रु–मित्र संबंध के बारे में देश की जनता को उनके द्वारा अपेक्षित व्यवहार धर्म अत्यंत सरल भाषा में समझा देने में आर्य चाणक्य के बाद छत्रपति शिवाजी ही अग्रगण्य थे। जनसंघटन के लिए अनिवार्य ऐसी वह एक और बहु मुख्य जनमन–क्रांति थी। "तुर्कों के साथ हाथ मिलाना अधर्म है। स्वराज्य सेवा ही ईश्वरीय कार्य है, धर्मकार्य है," ऐसा बताकर, छत्रपति शिवाजी ने धर्मनिष्ठा को राष्ट्रनिष्ठा का पोषक बनाया। राष्ट्रघातक ऐसी आत्मकेंद्रित एवं वैयक्तिक धर्मकल्पनाएं सुधारने वाले धर्मक्रांति के अग्रदूत बने। स्व–बंधु व्यंकोजी को तथा सामना करने के उद्देश्य से आए जयसिंह को उनके लिखे पत्र इस दृष्टि से लोकोत्तर है।

'स्वामीनिष्ठा' याने अन्नदाता की, नमक खिलानेवाले की, चाहे वह दुश्मन ही क्यों न हो चरणसेवा करते पड़े रहना, ऐसा भ्रम तब बड़े व्यापक प्रमाण में छा गया था। ऐसी 'स्वामीनिष्ठा' की भ्रांति को दूरकर, 'स्वामीनिष्ठा' याने स्वदेश–स्वधर्म के लिए जीवन अर्पित करने वाले स्वामी के, नेता के प्रति दर्शायी जाने वाली ध्येयनिष्ठा ही है। ऐसा शिवाजी महाराज ने बड़े अनूठे ढंग से समझाया।

स्वाभिमान याने व्यक्तिगत अभिमान, ऐसी विचित्र कल्पना भी उस समय दृढ़मूल हुई थी। बातों–बातों में ही हथियार निकाल कर झगड़ा करना, यही उसका लक्षण बन गया। इस कारण हम स्वाभिमानी हैं, ऐसा कह राजपूतों द्वारा चलाए गए अनिष्ट अंतःकलह तो सर्वविदित है। आमेर वंशीय राजा मानसिंह ने अपनी बहन को परधर्मी अकबर के जनाने में भोगदासी बनाकर भेज दिया। जीवन भर उसने उस परकीय बादशाह के लिए अपने ही लोगों के रुधिरों के नहर बहाये। अकबर की दी हुई जूठी रोटी को अपने जीवन का सर्वोच्च सम्मान मानकर भरे दरबार में वह खायी! इन सारी बातों में, किसी में भी उसे अपने स्वाभिमान को धक्का पहुँचाने वाली बात दिखायी नहीं दी। तथापि राणा प्रताप अपने साथ भोजन के लिए नहीं बैठा, इससे उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँची। इस कारण प्रतापसिंह का विनाश करने की प्रतिज्ञा लेकर भारी फौज के साथ वह उतर आया। उस स्वातंत्र्य–सिंह प्रताप की जंगली श्वापदों जैसा शिकार करने, गिरि–पहाड़ों में पीछा करने निकल पड़ा। 'स्वाभिमान' याने ऐसी राष्ट्रघातक व्यक्ति–प्रतिष्ठा नहीं, अपितु राष्ट्रपोषक अभिमान ऐसा महाराज ने सिखाया।

राष्ट्रधर्म तथा व्यक्तिगत सद्गुणों का, उनके बीच के संबंधों का उन्होंने पगपग पर आचरण करके दिखाया। प्रामाणिकता, वचनपालन, क्षमा, दया, प्रीति, स्नेह, सहकार्य आदि का अन्वयन केवल स्वजनों के साथ व्यवहार करते समय ही करना चाहिए, शत्रु के साथ नहीं। शत्रु के प्रति अनुसरणीय नीति ही अलग है – 'शठं प्रति शाठ्यं'। महाभारत के शांतिपर्व में कहा है, "संक्षेपों नीतिशास्त्राणामविश्वासः परो मतः।" –शत्रु के साथ व्यवहार करते समय कुछ भी विश्वासार्ह मानकर नहीं चलना चाहिए। यही सब शास्त्रों का सार है।

अपने दुश्मनों का यकीन कर समाज के सर्वनाश की आपत्ति ओढ़ लेने के अनगिनत उदाहरण हिंदु इतिहास में मौजूद हैं। तथापि एक की गलती देखकर दूसरे ने पाठ नहीं सीखा। पृथ्वीराज से लेकर रामराज तक सब की कथा वही थी। मोहम्मद गोरी के 'सत्यवचन' पर पृथ्वीराज के

विश्वास करने से इंद्रप्रस्थ का स्वातंत्र्य डूब गया। बीजापुर, आदिलशाह को अपना परम आप्त सलाहकार समझकर उसका विश्वास करने वाले रामराज के अंधविश्वास से विजयनगर का साम्राज्य ध्वस्त हुआ। परंतु शिवाजी महाराज कभी भी ऐसे अंधविश्वास के शिकार नहीं हुए। इसी कारण किसी अनर्थ के लिए जगह नहीं थी।

तब तक हिंदुस्थान में अनेक प्रामाणिक नीति–नियमों से आबद्ध ऐसी धर्मयुद्ध की रूढ़ि प्रचलित थी। हमारा सामना करने वाले भी अपने जैसी ही नीति–नियमों से निष्ठा रखते हैं, इस मूल कल्पना के आधार पर ही वह पद्धति खड़ी थी। परंतु जिनको इसकी गंधवार्ता भी नहीं थी ऐसे परकीय आक्रमणकारियों के सामने एकांगी 'धर्मयुद्ध' से हमें मिला – केवल पराभव एवं सर्वनाश का कटुफल। केरल के हिंदु राज्य का भी पुर्तगालियों की आहुति होने का यह एक मुख्य कारण था। स्वदेश–स्वधर्म के विनाश का कारण ठहरे वैसे 'धर्मयुद्ध' को विदाई देकर शिवाजी महाराज ने दुश्मनों के अनुसार अपनी समर–नीति अपनायी। उसमें एक नये तंत्र का ही अवलंब किया। "आघात ही सुरक्षा का सर्वोत्तम उपाय" ऐसे यशस्वी राजतंत्र तथा सैनिक–नीति को पहचानने वालों में वे अग्रगण्य थे।

छत्रपति की सफलता का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण उनके द्वारा लायी हुई क्षात्रधर्म के संकल्पना की महत्क्रांति थी! तब समस्त भारत में, विशेषकर राजपूतानें में प्रचलित 'वीर–स्वर्ग' 'हौतात्म्य' आदि आदर्शों को हटाकर उन्होंने विजयोपासना की सार्थक नीति का प्रचलन किया। समय–संदर्भो के अनुसार साम, दाम, दंड, भेद इन चारों नीति का अवलंब करते हुए वे यशवंत हुए। प्राचीन काल में श्रीराम, श्रीकृष्ण इनके द्वारा अनुसरित नीति भी वही थी, अधर्म का नाश, धर्म की विजय स्थापित करना, यही परम लक्ष्य! उसके लिए पोषक नीति ही धर्म–सम्मत नीति! शिवाजी महाराज ने एक बार प्रयोग में लाए तंत्र का प्रयोग फिर से नहीं किया। अफज़ल खान वध, पन्हाला–प्रयाण, शाइस्ता खान की बेइज्जती, आगरा भेंट, दक्षिण दिग्विजय आदि एक–एक कार्याचरण की अपनी ही एक अनूठी ऐसी अप्रतिम शैली थी। पीछे कब हटना, आगे कब बढ़ना, शत्रु

को मोहित करने हेतु कब बीन बजाना, झट से उसकी गर्दन कब पकड़ना, कब वामन रूप धारण करना, त्रिविक्रम जैसे कब विराट होकर त्रिलोक को अपने पैरों तले दबाना, कब प्रस्तर–प्रदर जैसे निश्चेष्ट पड़े रहना और कब शीला–स्तंभ चीरकर नरसिंह रूप धारण करते हुए वैरी हृदय फाड़ना इन हर एक संदर्भ पर, विजयी वीरों के लिए शिवराय स्वयं ही नये स्फूर्तिप्रद आदर्श बन गये।

तब हिंदुओं के पास घोड़े रहना बड़ी विरला बात थी। तुर्किस्तान, अरबस्तान, ईरान आदि से उन्हें लाया जाता था। वे होते थे, यहाँ के बादशाह के लिए ही! इस कारण शिवाजी महाराज ने दुश्मनों के घोड़ों से ही अपनी कमी की पूर्ति की! प्रत्यक्ष युद्धकला की बात भी वैसी ही थी। अपने अनुकूल स्थान व समय का चयन कर वहाँ पर शत्रु को हर संभव उपाय से खींच लाते हुए संघर्ष करने का अद्‌भुत रणकौशल उन्होंने हस्तगत किया था। हरेक बार समर–संचालन का सूत्र वे अपने हाथों में ही रखते थे। युद्ध के साधनों के बारे में भी वैसा ही था। अन्यों से अपने लिए जो कुछ उपयुक्त था, वह सब निस्संकोच पूर्वक परंतु विवेक के साथ अपने साधन–संभार में समा लेते थे। बंदरगाहों का निर्माण, जलदुर्गों का तथा नौकाओं का निर्माण, नौका–चालन आदि बातों में उन्होंने पुर्तगालियों के वैशिष्ट्यों का अवलंब किया। उनका जीवन सांगाती रहा 'भवानी' खड्ग भी पुर्तगालियों द्वारा ही प्राप्त ऐसा आयुध था। युद्ध–नीति याने विजय–प्राप्ति का राजमार्ग, यह उन्होंने अक्षरशः साबित कर दिखाया। युद्ध से गड़बड़ी, अव्यवस्था आदि निर्माण होना यह एक तात्कालिक बात है। अनिवार्य परिस्थिति आने पर युद्ध करना ही चाहिए और वह भी कल की सुरक्षा तथा सुव्यवस्था के लिए ही, इसकी स्पष्ट कल्पना उन्हें थी।

छत्रपति शिवाजी का अपने सरदारों को, सैनिकों को आदेश भेजने की रीति में भी तत्कालीन मुसलमान पद्धति में दिखायी न देने वाला वैशिष्ट्य था। महाराज की आज्ञाओं में आत्मीयता का स्वर परस्पर वैयक्तिक संपर्क की शैली रहती थी। यह अदृश्य संबंध ही शिवराज्य की शिवशक्ति थी।

कुछ पुराने विकृत आचरणों से इस राष्ट्रजीवन में अगाध प्रमाद घट चुके थे। उन विकृतियों को मिटाकर शिवाजी महाराज ने नियमनिष्ठा यथार्थ रूप में स्थापित की। 'गो–ब्राह्मण प्रतिपालक' यह विरुद धारण कर इन आदर्शों में बाधा बनने वाले ब्राह्मणों को भी खत्म किया। अफजल खान प्रकरण में कृष्णाजीपंत भास्कर शिवाजी की "भवानी" को आहुति हुआ, इसका यहाँ स्मरण होगा।

विजय–प्राप्ति के लिए अनुकूल ऐसी नूतन युद्ध–कला उनके द्वारा सृजित हुई। छोटी–छोटी टोलियाँ बड़ी फौज को भी नरम कर सके, ऐसे अपने स्वतंत्र समर–तंत्र 'गनिमी कावा' (गुरिल्ला युद्ध) का उन्होंने अवलंब किया। शत्रु पर अचानक हमला कर, उसके संभलने तक फरार हो जाने का तंत्र था वह! सैनिकों का वेश, सिद्धता आदि सब उसके अनुरूप उन्होंने परिवर्तित किया। खड्ग के साथ–साथ दूर से ही दुश्मनों पर प्रहार कर सके, इस प्रकार से शूल का प्रयोग भी उन्होंने जारी किया। इससे अपने लंबे तलवारों से प्राप्त मुसलमानों की श्रेष्ठता समाप्त हो गयी। शिवाजी महाराज का दुर्गों की रचना में दिखाया कौशल भी अति अद्‌भुत था, अजेय था। वह देखकर अचंभित हुए अंग्रेज इतिहासकारों ने उसके लिए अपनी साक्षी लिख रखी है। जिंजी किले की अजिंक्य निर्माण शैली देखकर आश्चर्य के उद्‌गार निकाले हैं। शिवाजी छत्रपति का भौगोलिक ज्ञान भी अद्वितीय था। सह्याद्री के बाह्य लक्षण हो या उसके अंतर्मन का स्पंदन हो, वह उनके अनुभूति से अलग नहीं था। दुर्गों का निर्माण करने के लिए उनके चुने स्थान, मुहिमों के लिए उनके चुने हुए मार्ग, सेना टुकड़ियों के संचालन की उनकी रीति आदि सब उनके उस परिपक्व ज्ञान का परिचय करा देता है।

हिंदुस्थान के राजाओं में साधारणतः अर्ध–सहस्र वर्षों के बाद शिवाजी ने ही प्रथम बार नौकाबल का निर्माण किया। अत्यल्प अवधि में ही अंग्रेज, पुर्तगाली, जंजीरे का सिद्दी आदि तत्कालीन सब विख्यात समुद्री शक्तियों को प्रबल आघात पहुँचाया। इस प्रकार मध्य–युगीन हिंदुस्थान के स्वातंत्र्य को समुद्र का रक्षाकवच निर्माण करने वाले वे एक अग्रमान्य साहसी थे।

..... ३ .....

शत्रु–संहार के कार्य में शिवाजी के त्रिशूल जैसे उनका 'भवानी' खड्ग झलकता था, उसी प्रकार आदर्श धर्मराज्य की स्थापना में भी उनकी सृजनात्मक प्रतिभा प्रकाशमान होकर खिल उठी थी। महाभयंकर रिपु–संहारक, श्रेष्ठ सुधारक तथा विधायक कार्यकर्ता बनकर उन्होंने राष्ट्र–संरक्षण एवं संवर्धन का दैवी कार्य संपन्न किया। सभी उन्नत मानवीय जीवनादर्शों को प्रतिष्ठापित करने की परंपरा उन्होंने प्रारंभ की। राज्याभिषेक के पश्चात् प्राचीन भारतीय अष्ट–प्रधान पद्धति उन्होंने जारी की। तब मुसलमानी कारोबारी के प्रभाव से सब क्षेत्रों में प्रचलित म्लेच्छ शब्दों एवं रूढ़ियों का उच्चाटन करने हेतु नया "राजव्यवहार कोश" पंडितों द्वारा तैयार करवाया। अपनी राजमुद्रा भी संस्कृत में ही उत्कीर्ण की।

इस प्रकार सब दृष्टि से आदर्श हिंदु राज्य स्थापित हुआ। उसमें मुसलमान तथा ईसाई भी थे। स्वराज्यनिष्ठ होने पर उन्हें भी पुरस्कार मिलते थे। शत्रु स्त्रियों के बारे में भी उनका मान–सम्मान, पूज्यभाव लोकविख्यात है। एक सरदार के कल्याण के सूबेदार की सौंदर्यवती बहु को गिरफ्तार कर उसे अपने सामने पेश करने पर, "मेरी माँ भी आप जैसी सुंदर होती, तो मैं भी सुंदर बनता", ऐसा कहकर उसे अपनी पुत्री के समान ही सम्मान कर वस्त्रालंकार देकर वापस भेज दिया। यह कथा क्या नहीं सुनी है? समस्त स्त्रीत्व को ही 'माता' के रूप में प्रतिष्ठापित करने की यह कथा सुनकर इस भूमि के कितने बच्चों का हृदय अभिमान से पुलकित नहीं हुआ होगा? कुरान, मस्जिद, मुसलमान स्त्रियों आदि के बारे में शिवाजी महाराज के गौरवभाव की देशी मुसलमान इतिहासकारों ने भी खुले दिल से सराहना की है।

जनसामान्य के सुख के बारे में शिवाजी महाराज को विशेष चिंता रहती थी – सेना का आक्रमण करते समय देहातों में खड़ी फसल को हाथ नहीं लगाना, बाजारों में अन्यों जैसा ही पैसे देकर सामान खरीदना। किसी ने आज्ञा का उल्लंघन किया तो उसे कठोर सजा भुगतनी पड़ती थी।

सैनिकों जैसा ही श्रीमंतों द्वारा हो अथवा सरकारी अधिकारियों द्वारा हो, प्रजा को कोई उपद्रव न हो इसकी विशेष चिंता महाराज करते थे। उसी प्रकार दुर्ग एवं नौकाओं का निर्माण, धान्य एवं गोलाबारूदों का भंडारण, सैन्य का खर्चा आदि किसी को भी धन की कमी न आये ऐसी पूर्ण पूर्व–सावधानी बरतते थे। इस कारण किसी भी संदर्भ में सैनिकों के असंतोष को अवकाश ही नहीं मिलता था। सैन्य का योगक्षेम देखने की उत्तम व्यवस्था थी।

स्वराज्य का गुप्तचर विभाग भी अत्यंत दक्षता से परिपूर्ण था। रायगढ़ से निकले गुप्तचर अति अभेद्य रहस्य का भी पता कर, शोध लगाकर खोज निकालने में तत्पर और माहिर थे। देश–विदेश के प्रमुख समाचार बिना किसी गलती के राजधानी को रवाना करते थे। गलत खबर लाने वालों को मृत्युदंड दिया जाता था। महाराज के बसरूर की मुहिम पर जाते समय, इस बात की निदर्शक ऐसी एक घटना घटी। वहाँ जाकर लौटे गुप्तचरों द्वारा दी हुई खबर के अनुसार उतना धन वहाँ नहीं मिला। तब उसकी पूछताछ कर उसे मृत्युदंड दिया गया।

शिवाजी महाराज की न्याय–निष्ठुरता, गुणग्राहकता, अनुशासनिक कठोरता आदि से ही स्वराज्य के बारे में जनसामान्य की निष्ठा हजार गुना बढ़ गयी। जाति, स्थान–मान आदि कोई भी शासन में बाधा नहीं बन पाते थे। व्यक्तियों के चयन तथा उनके गुण–परीक्षण में तो छत्रपति शिवाजी बड़े ही निष्णात थे। देखते ही किसकी अर्हता कितनी है, कौन किस काम के योग्य है; इसका निर्धारण वे बड़ी अचूकता से करते थे। उसी के अनुसार उनको जिम्मेदारियाँ सौंप देते थे। गुणों के अनुरूप पुरस्कार भी देते थे।

ऐसे सकल सद्‌गुण, यश, कीर्ति के अत्युच्च शिखर पर पहुँचने के बाद भी शिवाजी महाराज की एक महायोगी – जैसी ही अत्यंत निस्पृह, निर्लिप्त वृत्ति रही। स्वयं का ही कमाया हुआ समूचा राज्य समर्थ रामदास जी के झोली में डालकर फकीर जैसे निकल जाने को तैयार; ऐसी अद्‌भुत,

विरक्त, निर्मोही वृत्ति! फिर रामदास जी ने, "राज्य शिवाजी नव्हे, राज्य धर्माचे आहे" (राज्य शिवाजी का नहीं, राज्य धर्म का है।) ऐसा कहकर, शिवाजी को एक धर्मदर्शी विश्वस्थ के नाते राज्य का निरीक्षण–संचालन करो, ऐसा आदेश देते समय भी उतनी ही निस्पृहता से उसे शिरसावंद्य मानने वाले वे एक स्थितप्रज्ञ राजर्षि ही थे।

शिवाजी महाराज संसार में रहते हुए भी, संसार का कोई भी व्यामोह ध्येयकार्य में बाधक बनने न देने वाले अचल हिमाचल जैसे खड़े राजयोगी थे। अति श्रेष्ठ देशभक्त, संयमी, धर्मशील पुरुष थे। मातृभक्त, पितृभक्त, गुरुभक्त थे! इस प्रकार के महान तेजोराशि को देखकर लोगों ने उन्हें 'यदा यदाहि धर्मस्य' इस भगवान के अभिवचन के अनुसार धर्मरक्षा करने अवतरित हुए ईश्वरीय अवतार ही मान लिया तो उसमें क्या आश्चर्य? कवि परमानंद ने संस्कृत में शिवाजी का जीवन चरित्र लिखकर, अपने उस महाकाव्य का 'शिवभारत' ऐसा बड़ा अन्वर्थक नामकरण किया है। हिंदी के कवि भूषण तो दिल्ली बादशाह के कृपाछत्र को धिक्कारते हुए हिंदु छत्रपति का गुणगान करने दौड़ते हुए दक्षिण में आ गये थे।

"काशिजी की कला जाती, मथुरा मस्जिद होती,

शिवाजी न होता तो सुन्नत होत सब की!"

ऐसा यथावत वर्णन किया है। "हिंदु धर्म आप के कारण ही बच पाया है। देवधर्म भी बचे हैं, राजपूतों का मान, क्षात्रधर्म रक्षक ही है तू!" इस प्रकार गाकर प्रशंसा की है। डॉ. मुरली मनोहर जोशी की काव्यमयी भाषा में, "ऐसा कहा जा सकता है कि उन दिनों सह्याद्रि के आँचल में मानो एक महान् यज्ञ कुण्ड स्थापित हुआ था। उसमें स्वराज्य–यज्ञ सम्पन्न हुआ। उस यज्ञ के होता थे – जीजाबाई तथा शाहजी। भारतीय जन प्रसाद भोक्ता थे, दादाजी कोंडदेव पुरोहित थे। समर्थ श्री रामदास उद्‌गाता थे। ज्ञानेश्वर, नामदेव, एकनाथ, तुकाराम आदि विविध सन्तों की वाणी उस यज्ञ के मंत्र थे और तेजस्वी यज्ञ पुरुष थे छत्रपति शिवाजी महाराज।"

अन्यों की बात छोड़िए, स्वयं गुरू समर्थ रामदास ने ही शिष्य का गौरव गान किया है।

"आचारशील विचारशील न्यायशील धर्मशील
सर्वज्ञ सुशील जाणता राजा।" (जाणता याने ज्ञानी)
"यशवंत कीर्तिवंत वरदवतं सामर्थ्यवंत
पुण्यवंत नीतिवंत जाणता राजा।"

– ऐसा कहा है।

शिवाजी के मरणोपरांत, गलत राह पर चल रहे संभाजी को श्री समर्थजी ने उपदेश दिया –

"शिवरायाचे आठवाचे रूप,
शिवरायाचा आठवावा प्रताप,
शिवरायाचा आठवावा साक्षेप,
भूमंडली।" (आठवावे/वा याने स्मरण करिए)

यह सब देखने के पश्चात्, शिवाजी महाराज याने भारतीय नभोमंडल में चमकता सितारा मात्र नहीं, बल्कि, समस्त विश्वगगन के महापुरुषों में भी अद्वितीय बनकर, अपनी अंतर्दीप्ति फैलाता अमर नक्षत्र ही है, ऐसा क्यों न कहें?

..... ४ .....

अनेक आंग्ल तथा पुर्तगाली इतिहासकारों ने शिवाजी की तुलना अल–सिकंदर, सीज़र, हॉनिबाल जैसे विश्वविख्यात रणयोद्धाओं से की है। तथापि उन सबको पहले से ही सुसज्जित, प्रशिक्षित सेना तथा सेनाधिपति उपलब्ध थे। पहले से ही चले आये स्वतंत्र राज्य, राजकोष आदि सब कुछ था। लेकिन शिवाजी महाराज ने तो इनमें हरेक का निर्माण स्वयं ही गरीब बेचारे मावलों के बलबूते किया तथा उन्हीं मावला लड़कों के हाथों से तब समस्त हिंदुस्थान में मशहूर ऐसे मुगल, पठान, राजपूत सेनानियों का पराभव किया।

अब यश–अपयश की दृष्टि से देखा जाय तो हॉनिबाल आखिर तक असफल ही रहा। सीज़र को उसके विश्वासपात्र अनुयायियों ने ही मार

डाला और भारत जीतने से पहले ही युद्ध में जख्मी होकर अपने देश को लौटते समय मार्ग में ही अल–सिकंदर की मौत हुई। नेपोलियन तो रणविक्रमों के साथ अनेकमुख प्रतिभा होते हुए भी मिस्र, रशिया, वाटरलू आदि प्रमुख संघर्षों में पराभूत हुआ। अंत में, उसने शत्रुओं के कैद में कराहते हुए प्राण छोड़े।

जगत के महान सेनाध्यक्ष भी जिनका सामना नहीं कर सकेंगे, ऐसी विकट परिस्थिति से भी अनेक गुना अधिक भयंकर माहौल में भी सहजता से सामना कर, पूर्ण रूप से विजयशाली रहे ऐसे एकमात्र पुरुष–पुंगव याने छत्रपति शिवाजी महाराज!

उन सबके तथा शिवाजी छत्रपति के जीवनोद्देश्यों एवं चारित्र्य की गणना की तो स्वर्ग–नरक इतना अंतर हैं। वे सब सेनापति–धुरंधर अतिरेकी एवं वैयक्तिक महत्वाकांक्षा से प्रेरित थे। उस आत्माकांक्षा को पूर्ण करने के लिए वर्णनातीत परपीड़न, दौर्जन्य, संहार, अत्याचार करने से पीछे नहीं हटे। वे जहाँ गये वहाँ की संस्कृति–सभ्यता को उन्होंने धूमिल बना दिया। उनकी सेना के पदाघातों से लक्षावधि मानवी जीव चकनाचूर हो गये। उन्हें शाप देते, अपने ही रक्त एवं आँसुओ में गिर के वे रौंदे गये। अत्याधिक राष्ट्रीय दुरभिमान के, दुराक्रमण के, साम्राज्यशाही के, आसुरी संपत्ति के प्रतीकों जैसे उन विदेशी व्यक्तियों ने अपना रौब जमाया। परंतु शिवाजी महाराज के जीवनोद्देश्य तो उन सब से पूर्णतः भिन्न थे। उस प्रकार के आसुरी अत्याचारों, आक्रमणों आदि को मिटाने के लिए ही उन्होंने खड्ग धरा था। धर्मान्धता, विध्वंस इत्यादि का नाश कर, शांति–न्याय–धर्म की पुनः प्रतिष्ठापना करने के लिए उन्होंने अपनी भवानी झलकायी। दैवी संपत्ति के प्रतीक होकर वे चमक उठे।

व्यक्तिगत चारित्र्य की दृष्टि से देखा जाए तो वह सब विदेशी सेनानी भोगी–विलासी, स्त्री–लोलुप तथा मानवीय शील–संस्कृति–संभ्यताओं से मीलों दूर थे। परंतु छत्रपति शिवाजी के चारित्र्य के बारे में तो उनके कट्टर विरोधी भी आश्चर्य से, गौरव से अपनी उँगलियां दाँतों तले दबा लेते हैं, इतने धवल चारित्र्य के वे पुरुष थे!

उनके साथ तुलना करने अब विदेशों से किसे लाया जाए?

हाल ही के कुख्यात हिटलर, लेनिन जैसे व्यक्तियों के हाथ तो लक्षावधि निरपराधियों के रूधिर से कलंकित हुए है। शिवाजी महाराज के साथ उनकी तुलना करने की सोच भी नहीं सकते!

इस संदर्भ में इंग्लैंड के एक सार्वजनिक संस्था के जागृतिक वीरों के बारे में चलायी हुई चिकित्सक तुलना बड़ी अर्थपूर्ण है। "विश्व का सर्वश्रेष्ठ वीरपुरुष कौन?" ऐसा प्रश्न उस संस्था ने विविध देशों को भेज दिया। हॉनिबाल, सीजर, अल–सिकंदर, नेपोलियन प्रभृतियों के बारे में अधिकृत जीवन–चरित्र प्राप्त कर तुलनात्मक अध्ययन चलाया। अंत में, शिवाजी ही उस लोकोत्तर पदवी के लिए सर्वदृष्टि से योग्य पुरुष हैं; ऐसा उसने निर्णय दिया।

फिर भी भारत में ही याने उस महापुरुष के स्वगृह में ही, उसके वंशजों से ही उस युगपुरुष के बारे में अपस्वर सुनायी देता है, यह कितने आश्चर्य तथा अपमान की बात है! इस देश के ही कुछ लोगों की शिवाजी के बारे में एक बगावतखोर, डकैत, एक छोटे राज्य का बागी सूबेदार अथवा अधिक से अधिक महाराष्ट्र तक ही सीमित एक व्यक्तित्व इत्यादि कल्पनाएं, याने विधि की कैसी घोर विडंबना है। प्रथम व्याख्यान के प्रारंभ में ही स्वामी विवेकानंद को प्रश्न करने वाला विद्याविभूषित शिष्य इसी मनोवृत्ति का प्रतीक है।

ऐसी विकृति एवं विपर्यास का कारण सूर्यप्रकाश के समान स्पष्ट है। इस भूमि के पुत्रों के सीने में स्वाभिमान तथा स्वातंत्र्य की लालसा, स्वधर्म एवं संस्कृति की निष्ठा तथा अपने महापुरुषों की गौरव–स्मृति ज्वलंत होने पर हिंदुस्थान के ऊपर अपने साम्राज्य की पकड़ पर ही कुठाराघात होगा, यह आंग्ल राज्यकर्ताओं को अच्छी तरह से मालूम था। इसलिए उन्होंने एक नये 'इतिहास' का निर्माण किया। यहाँ के प्राचीन वैभवकाल को उन्होंने एक 'अंधकार–युग' ऐसा कहा। परकीय आक्रमणकारी मुसलमान तथा ब्रिटिश – इनके काल का सुदीर्घ तथा अतिरंजित वर्णन किया। विदेशी आक्रांताओं के विरोध में संघर्ष करने वाले सभी देशभक्तों को

उन्होंने बगावतखोर, लुटेरे ऐसा कहकर झिड़काया। यही विकृत इतिहास पाठ्यपुस्तकों द्वारा हमें पाठशालाओं तथा कॉलेजों में घुलाकर पिला दिया। हमने भी उसे ही वेदवाक्य की मान्यता प्रदान की। हमारे अनेक भारतीय इतिहास–लेखकों ने भी इन सफेद लोगों की पगडंडी पकड़कर आंग्ल, पुर्तगाली तथा मुसलमान इतिहासकारों के दूषित कथन को आधारभूत मानकर स्वीकार किया। समकालीन हिंदू इतिहासकार, कवि, ग्रंथकर्ताओं के साक्ष्याधारों का धिक्कार किया। राणा सांगा से भी बाबर को, राणा प्रताप से भी अकबर को प्राधान्य मिला। 1857 का स्वातंत्र्य समर 'सिपाहियों का दंगा' हुआ। झांसी की रानी, तात्या टोपे, नानासाहेब पेशवा आदि सब 'राजद्रोही' हुए। तो फिर ऐसे 'इतिहास' में शिवाजी ही एकमात्र राष्ट्रपुरुष होकर कैसे रहेगा?

उसमें भी शिवाजी! अभी–अभी उदित हुए प्रज्वलायमान ऐसे इस देश का स्वातंत्र्य–सूर्य! अरिदमन, यशस्साधन का मूर्तिमंत रूप! ऐसे व्यक्ति का स्मरण सुरक्षित रखना याने हिंदुस्थान पर अपने साम्राज्य को आगे बढ़ाने के अपने सपनों को तिलांजलि देने जैसा ही था। शिवाजी के देहावसान के पश्चात् चार लाख मुगली फौज के साथ आए प्रत्यक्ष औरंगजेब की ही कब्र खड़ी करने की दिव्य–दाहक ऐसी स्मृति थी वह! तो फिर ब्रिटिशों के खुद लिख रखे ऐसे इतिहास में सह्याद्रि के सिंह को 'चूहा' बनाया गया तो क्या आश्चर्य?

फिर भी उस अलौकिक तेज को अप–प्रचार के अंधकार में आवृत्त कर आँखों से ओझल करना संभव नहीं हुआ। उसके बारे में जनसामान्य के मन–मस्तिष्क में बद्धमूल हुई अप्रतिम श्रद्धा को नष्ट नहीं कर सके। इस कारण, कुछ राजकीय नेताओं ने शिवाजी के नाम का अपने लिये अनुकूल रीति से उपयोग करने की चेष्टा की है। कुछ ने 'हिंदु–मुसलमान एकता के लिए' शिवाजी ने प्रयत्न किया, ऐसा कहा और कुछ रशिया–भक्तों ने 'धनवानों के विरोध में गरीबों की क्रांति जगाने वाले साम्यवादी' ऐसा वर्णन किया। और कई नेताओं ने शिवाजी की देशभक्ति पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए धैर्य न रखने वाला एक 'पथभ्रष्ट देशभक्त' ऐसा कहा! इसी

तरह हर एक ने उस धीमान व्यक्तित्व पर अपने ही स्वार्थ का रंग पोतने का प्रयत्न किया। कर्नाटक में भी कुछ 'आधुनिक इतिहासकारों' का जन्म हुआ है। आजकल के कर्नाटक–महाराष्ट्र के 'सीमा झगड़े' में शिवाजी महाराज को खींचते हुए उन्हें महाराष्ट्र तक सीमित एक प्रांतीय व्यक्ति के रूप में वर्णन करने की लत लग गयी है। अब तक के कथन के पश्चात्, शिवाजी को प्रांतो के बीच की सीमाएँ कभी भी मान्य नहीं थी, यह बात अंधे को भी साफ दिखायी दे इतनी स्पष्ट है। समस्त हिंदु जगत के अंतिम छोर तक अपनी सूक्ष्म दृष्टि फिराने वाला राष्ट्रपुरुष था वह! इसी कारण उनके देहावसान के बाद भी, शिवाजी के पुत्र राजाराम को कर्नाटक के केलदी में आश्रय मिला। लाखों की फौज लेकर दक्षिण में उतर आये स्वयं औरंगजेब की आंखों के सामने शिवाजी के पुत्र का संरक्षण करने एक महिला कमर बांध कर खड़ी रहती है, याने वह अपने ऊपर कितनी बड़ी आफत ओढ़ ले रही थी! फिर भी केलदी की रानी ने आगे–पीछे न देखते हुए, राजाराम को आश्रय दिया। कारण, शिवाजी द्वारा साकार हुए हिंदु स्वराज्य–स्वधर्म के बारे में रानी के अंतःकरण में भी वैसी ही अप्रतिम श्रद्धा जागृत हुई थी। अब आजकल शिवाजी के नाम पर 'शिवसेना' खड़ी कर 'अ–महाराष्ट्रियों' पर आग उगलने वाले कुछ महाराष्ट्रीय आंदोलनकर्ता हमारे खंडन के नहीं करुणा के पात्र हैं।

अब कुछ लोग तो शिवाजी को 'लुटेरा', 'डकैत' ऐसा ही संबोधित करते हैं। परंतु क्या इस आक्षेप में कुछ तथ्य है? लूट याने किस की लूट? परकियों से छीनी हुई चीजें फिर से वापस हासिल करना क्या लूट होती है? शत्रुओं का निपात करने उनके शस्त्र, संपत्ति आदि छीनना क्या 'डकैती' है? यदि हाँ, तो जगत के सब राष्ट्रों के अब तक के सभी स्वातंत्र्य–संघर्षों को उलटा–पुलटा कर लिखना होगा! अब तक के सब स्वातंत्र्य–समरों को तथा इसी कारण संबंधित देशों के स्वातंत्र्य–वीरों द्वारा तत्कालीन स्थानीय परिस्थिति के अनुसार अनुसरित साधनों को भी धिक्कारना पड़ेगा! फिर शिवाजी महाराज ने तो परकीय दासता में रहने वाले धनवान हिंदुओं से भी खंडनी 'वसूल' की, 'लूट' की, यह सही है।

वास्तव में अपने मुक्ति के लिए खड़े राष्ट्रोद्धारक को उन्हें स्वयं ही आगे आकर द्रव्यसहाय करना चाहिए था। वह उन्होंने नहीं किया, यह उनका अपराध है! राज्य को अपने–अपने हिस्से की धनसेवा अर्पित न करने वाले श्रीमंतों पर नाना विध के 'कर' लादकर, उसे 'लूट' न करने वाला एक देश इस विश्व में है क्या? वास्तव में शिवाजी महाराज ने राज्यलक्ष्मी के मुक्ति के साथ–साथ धनलक्ष्मी को भी परकियों के पीडक हाथों से मुक्त कर, स्वतंत्रता–देवी की सेवा में लाकर खड़ा किया।

शिवाजी पर 'फरेबी', 'कपटी' ऐसा दोषारोपण करने वाले हिंदु नहीं है, ऐसा नहीं। शिवाजी ने अफज़ल खान का कपट से वध किया ऐसा कहने वाले है। परंतु, शिवाजी ने यदि उस दिन खान का उस प्रकार वध नहीं किया होता, तो इतिहास में न शिवाजी का स्मरण किया जाता, न ही स्वयं वह आलोचक बच पाता! युद्धनीति याने शत्रु का पारिपत्य करना, 'शत्रु ने दगा दिया' ऐसा कहने वाले को राज्य पद से तत्काल हटा देना चाहिए, ऐसा आर्य चाणक्य ने स्पष्ट कहा है। आज शत्रुओं से अधिकाधिक वंचित होकर दुनिया के सामने पराभव का कलंक लेकर, स्वातंत्र्य का संकोच कराते जाने वाले हमारे धरिणों के लिए शिवाजी की शत्रुभंजक, विजगीषु नीति अस्वीकार्य हुई, तो क्या आश्चर्य?

..... ६ .....

अपने संबंध में पोते गए इन सब विकृत रंगों को साफ कर, शिवाजी महाराज का व्यक्तित्व अपने उज्जवल निज–रूप में प्रकाशमान होते ही आया है। आज भी उनका स्मरण स्वराज्य–संस्थापक, स्वधर्मी उद्धारक के दिव्य स्वरूप में ही, शुद्ध भारतीय अंतःकरणों को पुलकित करते आ रहा है। स्वामी विवेकानंद जैसे वीर संन्यासी के भावपूर्ण उद्‌गार आरंभ में हमने सुने हैं। 'बाजी–प्रभु' नाम से उमड़ आये योगी अरविंद के काव्य–प्रतिभा को भी छत्रपति शिवाजी का स्मरण ही प्रेरणाप्रद बना था। अरविन्द की काव्य प्रतिभा और कविवर रविन्द्रनाथ टैगौर की भावपूर्ण रसधारा के लिए भी छत्रपति शिवाजी का स्मरण प्रेरणा स्रोत बना।

आधुनिक भारत के स्वातंत्र्य–सेनानी सुभाषचंद्र बोस ने भी स्वातंत्र्य युद्ध छेड़ने के लिए भारत से बाहर जाने के पूर्व अपने मित्र विजयरत्न मजुमदार के साथ अपना मनोगत खोलकर बताया, "भारत के स्वातंत्र्य समर के लिए एकमात्र आदर्श के रूप में आज हमें शिवाजी का ही स्मरण करना चाहिए!" स्वातंत्र्यवीर सावरकर 'अभिनव भारत' – इस क्रांतिकारी संगठन के सदस्यों को शिवाजी के भावचित्र के सामने ही खड़े कर शपथ–प्रदान कराते थे। लोकमान्य तिलक ने सामान्य जनता के हृदय में स्वातन्त्र्य की ज्योति प्रज्ज्वलित करने हेतु शिवाजी उत्सव प्रचलित किया। आज देशभर में इस भूमि की प्राचीन गरिमा तथा सही अर्थ में स्वराज्य–स्वधर्म प्रतिष्ठापनार्थ अपना जीवन चंदन के समान घिस रहे सहस्रों ध्येयवादी युवकों को स्फूर्ति देने वाले पूज्यनीय डॉ. केशवराव हेडगेवार के लिए भी यही महापुरुष स्फूर्तिदेवता थे। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के माध्यम से उन्होंने छत्रपति शिवाजी के राज्यारोहण के उत्सव का सही सन्देश समाज के मन को पहुँचाने हेतु उसे 'हिन्दु साम्राज्य दिनोत्सव' का रूप देकर प्रचलित किया। एतद् द्वारा उन्होंने यह सही दृष्टि दी कि शिवाजी महाराज का कार्य न अपने स्वयं के लिए राज्य स्थापना करना था या न 'मराठा' राज्य स्थापित करने के लिए था अपितु वह पूरे हिन्दुस्थान के विमोचन के महाध्येय से अभिमंत्रित था।

आज भी अपने देश की परिस्थिति शिवाजी के दिनों से अधिक भिन्न नहीं है। अपना देश चारों ओर से प्रबल शत्रुओं से घिरा हुआ है। अंदर भी उन शत्रुओं के हस्त हमारे स्वातंत्र्य का घात करने के लिए लगे है। इस देश के अनेक नेतागण तथा कुछ राज्यों के प्रमुख भी शत्रुओं के हस्तक बने हैं। भारत के स्वधर्म–स्वराज्य का भक्षण करने की ताक में खड़े विधर्मी–विदेशी शक्तियाँ, विचारधाराएं रात–दिन आक्रमण में निरत ही है। तथापि, भारत की जनकोटि तथा यहाँ के जननेता इस भूमि के जीवन वैशिष्टयों एवं आदर्शो की प्रज्ञा गँवाकर जड़देह बनकर सो गया है। देश का तारुण्य ध्येयशून्य बनकर दिग्भ्रांत हुआ है। अपनी राष्ट्रीय एकता–अस्मिता–भद्रता को बचाने के लिए भारत के कोटि–कोटि पुत्रों के तन–मन–प्रज्ञा का पराक्रम निष्ठा–कर्त्तव्यों द्वारा झकझोरते हुए संगठित

करने की आवश्यकता आज कहीं अधिक है। उस जीवन–ध्येय का जागरण किए बिना इस देश की शक्ति कभी भी खड़ी नहीं हो सकती। जीवन के किसी भी क्षेत्र में वह कदम आगे नहीं बढ़ सकता। राष्ट्रीय प्रेरणा, राष्ट्रीय चारित्र्य का निर्माण नहीं हो सकता। इस देश के हृदय में वैसा प्रचंड चैतन्य एवं एकता जगाने की जादू किस के नाम में छिपी है? किसके जीवन में बाल्य–काल से ही परम पवित्र भारतीय धार्मिक–सांस्कृतिक जीवनादर्श साकार हो उठे थे? सामान्य लड़कों में असामान्य रणधीरों का सृजन करने की अप्रतिम प्रतिभा किस में हो सकती है? "क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे" (स्वतः के सामर्थ्य के आधार पर ही महापुरुष कार्यसिद्धि पाते है, न कि बाहरी उपकरणों से), इस महापुरुष–लक्षण जैसे साधनोपकरणों की शून्यता से कर्त्तत्व, कार्य साधनाओं का ब्रह्माण्ड ही जिसने निर्माण किया, राज्य–धर्म–समाज इन सबके आचार–विचारों में भी जो क्रांतदर्शी हुआ, विगत एक सहस्र वर्षों के हमारे राष्ट्रीय इतिहास के जीवन–मरण के संघर्ष युग से हमे सीखने लायक, मतिपाठ यशप्रद राष्ट्रीय जीवनशैली का स्वतः के जीवन में अनुसरण का यथार्थ रूप से जो युगावतार कहलाने का पात्र बना, किसी एक देश के लिए या किसी एक काल के मात्र नहीं समस्त मानवता के लिए एवं सदा के लिए अमर अलंकार बनकर जो प्रकाशमान हो सका है, जिसका पराक्रम, नीति, चारित्र्य, कौशल, धर्मज्ञता आदि सद्गुण–समुच्चय जीवन के पग–पग पर भी भगवान श्रीकृष्ण का स्मरण दिलाता है, वैसे शिवराय से अलग कोई और हो सकता है?

इसीलिए, साक्षात् समर्थ रामदास जी की बातें ही, राष्ट्रजीवन के तारकमंत्र के रूप में आज भारत के घर–घर में हर बच्चे को मनन करवाना चाहिएः

"सुमिरन करिए शिवराज के रूप का,
सुमिरन करिए शिवराज के प्रताप का!"

।।शुभम्।।

(चरित्र–कथन समाप्त)

..... ५ .....

किंतु बार–बार मावल के अमीन से बीजापुर की फरियाद आती ही गयी। उसके जवाब में, सुल्तान ने अपने सब देशमुख, देशपांडेओं को एक धमकी भरा फरमान जारी किया, "दंगाफसाद करते हुए शिवाजी ने कई किलों को अपने कब्जे में कर लिया है, ऐसी फरियाद आयी है। प्रांतों के देशपांडे और देशमुख अपनी चौथ, वसूली सब उसको ही सौंप रहें हैं; यह सब तुम्हारे मुल्क में भी हो रहा है ऐसा हमें मालूम हुआ है। इसके बाद यदि तुमने बीजापुर आदिलशाह के साथ ईमानदारी से बर्ताव नहीं किया तो बीजापुर दरबार तक खींचते हुए लाकर, तुम्हारा सर कलम किया जायेगा। होशियार!"

शिवाजी के बालमित्रों में दादाजी नरसप्रभु देशपांडे भी एक था। उसके वृद्ध पिता को भी यह फरमान मिला। उसे पढ़ते ही उस वृद्ध की आँखों के सामने अंधेरा छा गया। उसे भली–भाँति पता था कि बगावतखोरों के नसीब में कितनी घोर दुर्दशा है। वह अपना सिर छिपाते हुए कहीं निकल पड़ा। फरमान आने से उसके पुत्र को किंचित् मात्र भी चिंता या भय नहीं था। किंतु घटित प्रसंग यथावत् उसने शिवाजी को बता दिया। इस बारे में किशोर शिवाजी की धारणा ही उसके विचारों की परिशुद्धता एवं राजोचित गंभीरता के लिए एक भव्य साक्षी बन गयी।

"हमने विद्रोह किया है, यह सच नहीं है। श्री रोहिडेश्वर ने हमें अब तक यश दिया है, आगे भी स्वराज्य के मनोरथ को भी वही साकार करेगा। श्री रोहिडेश्वर के समक्ष ही हम सब प्रतिज्ञाबद्ध हुए हैं। यह राज्य–निर्माण हो, ऐसी ईश्वरेच्छा ही है। पिताश्री को धीरज देना।" यह पत्र पढ़कर नरसप्रभु के पिता को पुनः मन की स्थिरता एवं शांति प्राप्त हुई। अपने सोलहवें वर्ष में ही शिवा द्वारा लिखित, ईशप्रेरणा, आत्मविश्वास, विजिगीषु भाव से भरपूर इस पत्र की एक–एक पंक्ति इतिहास में अजर–अमर बन कर रह गयी है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

अतीव वृद्धवय के कारण दादाजी कोंडदेव तब बहुत बीमार थे। उनका अंतिम क्षण समीप आ गया। उन्होंने कुछ कहने के लिए अपना मुँह

खोला, परंतु बोलना बड़ा कष्टदायक था। अतः निकट जाकर उनके मुँह से कान लगाकर शिवा सुनने लगा। उस भीष्म पितामह के अंतिम उद्‌गार थे, "जतन करो, जतन करो!" स्वराज्य के बारे में वह बात बतायी गयी थी। वही शिष्योत्तम के लिए गुरु का अंतिम संदेश था। शिवाजी के नयनों में आश्वासक भाव देख कर, उन्होंने अपनी आँखें सदा के लिए मूँद ली। देवता की सुंदर मूर्ति बनाकर, उसके पूर्ण होने के बाद उसे भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हुए उसी में अपने जीवन की कृतकृत्यता देखने वाले दादाजी पंत का जीवन धन्य हुआ। जाने के पूर्व स्वराज्य–सेवा के लिए अपनी आखिरी देन के रूप में उन्होंने अपने पुत्र को शिवा के अधीन किया और चल बसे।

बीजापुर के दरबारी फरमान के प्रत्युत्तर में 'कोंडाणा' जैसा एक दुर्गम दुर्ग बीजापुर के हाथों से छीनकर शिवाजी ने अपने अधीन कर लिया। बापूजी मुद्‌गल देशपांडे नामक शिवाजी के एक शेर मित्र ने वह किला जीत लिया, बिना खून का एक कतरा भी बहाये और वह भी सिर्फ एक दिन में! कैसे ? अपने मीठे बोल से, वहाँ के किलेदार को भुलावे में लाकर!

अब बीजापुर बादशाह का चेहरा चिंताक्रांत हो गया। उधर इन खबरों का सिलसिला भी वहीं पर रुका नहीं, वह बढ़ता ही गया। कल शिरवल गया, आज सुभानमंगल हाथ से फिसला और न जाने अब कल किसकी बारी ? फिर भी बादशाह ने कोई फैसला नहीं किया। वह और भी सोचने लगा। क्या थी इसकी वजह ? सोचते रहने के बजाय फौरन फौज भेजकर एक ही प्रहार में बादशाह ने उस बगावत को क्यूं नहीं कुचल डाला ? कुछ ही घंटों में समाप्त हो जानेवाले उस काम के लिए इतनी देरी क्यों ? सही मायने में चिंता का उतना ही भारी कारण था – शाहजी राजा! बेंगलूर में डेरा डाले बैठे शाहजी राजा के पास तब 15,000 की सुसज्जित सेना थी। बचे–खुचे हिंदू राजाओं, सरदारों के मन में भी उनके प्रति प्रेम, आदर तथा गौरव का भाव था। ऐसी हस्ती के फर्जंद पर हाथ उठाया तो वह सरदार–ए–आजम चुप बैठ भी पायेगा? और यदि उसने

करने में जुट गया।

शिवाजी तथा उसके किशोर साथियों के शौर्य एवं युद्धकुशलता की वह पहली अग्निपरीक्षा बन गयी। अपने साथियों के सामने आवेशपूर्ण भाषण देकर शिवाजी ने उनके हृदय में स्थित स्वराज्यनिष्ठा की ज्वालाओं पर प्रेरणा का तैल उड़ेल दिया। सबके अंतःकरणों में रणोत्साह उमड़ने लगा। शिवाजी ने हरेक को उसके लिए निर्धारित काम बाँट दिया। उस दिन की सत्त्वपरीक्षा में हरेक वीर योद्धा बेजोड़ रीति से उत्तीर्ण हुआ। शिरवल तथा पुरंदरगढ़ के दोनों युद्धों में बीजापुर की सेना का संपूर्ण निःपात हुआ। फतेह खान बुरी तरह से परास्त हो गया; अपना पता छोड़े बिना ही उसने पलायन किया। स्वराज्य के 'छोकरों' ने फतेह खान जैसे भीमपराक्रमी सरदार की फौज के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। यह सब घटित हुआ अगस्त १६४६ ई. के दरमियान। तब शिवाजी की आयु थी केवल १८ वर्ष।

इस युद्ध में शिवाजी को एक असह्य आघात भी पहुँचा। उसका दाहिना हाथ बाजी पासलकर रणदेवी को आहुति चढ़ गया। सह्याद्रि के सदाहरित स्नेह से पोषित एवं विकसित हृदयकमलों से प्रथम पुष्प स्वराज्य–देवता की पूजा में अर्पित हुआ।

यहाँ फतेह खान का पराभव हो रहा था तभी बेंगलूर से एक आनंददायी वार्ता भी आयी। शिवाजी के बड़े भाई संभाजी ने फरहाद खान की कमर तोड़कर उसे भगा दिया था। अब बचा था शाहजी राजा की रिहाई का पेचीदा सवाल! अपने बारे में बादशाह के मन में जो गुस्से और इंतकाम की आग है, वह पिता शाहजी राजा पर बरस पड़ी तो ? शिवाजी चिंता में डूब गया। तभी एक विलक्षण उपाय उसके मस्तिष्क में चमक उठा। मानो जीजामाता के मंगलसूत्र पर ही म्लेच्छ राक्षसों ने हाथ डाला था। ऐसे संकट की घड़ी में बाहुबल के साथ शिवाजी महाराज का बुद्धिबल भी उतनी ही प्रखरता से झलक उठा। तुरंत दिल्ली के मुगल बादशाह शाहजहाँ को शिवाजी ने पत्र लिखा, "मैं तथा मेरे तीर्थरूप पिताजी दोनों ही आपके तख्त की खिदमत करने के लिए बेताब हैं।

उसके लिए आपके फरमान का इंतजार है। लेकिन बीजापुर के बादशाह ने दगाबाजी करते हुए, हमारे तीर्थरूप को आदबखाने (कारागार) में डाल दिया है। आदिलशाह के बंदीखाने से उनकी रिहाई होते ही हम आपकी खिदमत में हाजिर होंगे।"

बीसी पार करने के पहले ही, इस युवा योद्धा की राजकार्य–कुशलता की समस्त विश्व के इतिहास में है कोई तुलना या मिसाल ?

तब तक अफजल खान ने शाहजी को बेड़ियाँ पहनाकर बीजापुर के रास्तों से जुलूस निकाल कर आदबखाने में डाल दिया था। तब शाहजी राजा को भी साफ दिखाई दे रहा था कि उनका बचकर निकलना नामुमकिन है। इसी बीच, शिवाजी ने दिल्ली के बादशाह को चोरी–छिपे एक पैगाम भेजा है, इसकी भनक किसी तरह से बीजापुर सुल्तान के कानों तक आ पहुँची। बीजापुर के आदिलशाह का घमंड तोड़ने के लिए शाहजी और शिवाजी जैसे सूरमा सरदार हमारा साथ देने आ रहे हों, इससे बढ़कर शाहजहाँ के लिए खुशी की दूसरी कौन–सी बात हो सकती थी ? शिवाजी के गले के लिए फेंका फाँसी का फंदा अब बीजापुर सुल्तान के सिर पर मंडराने लगा। "हमारे सरदार शाहजी को तुमने क्यूं गिरफ्तार किया है ? उसे जल्द से जल्द रिहा नहीं किया, तो आप की खैरियत नहीं होगी!" ऐसा एकाध जबरदस्त फरमान यदि दिल्ली के शहंशाह से आया तो क्या होगा ? इसकी फिक्र आदिलशाह को खाये जा रही थी। दिल्ली की फौज को यहाँ बुलाकर शिवाजी और संभाजी ये दोनों शैतान उनके साथ मिल गये, तो उसका अंजाम क्या होगा? यह सोच–सोच कर आखिर इस झमेले से छुटकारा पाने का सुल्तान ने एक अफलातूनी इलाज ढूँढ निकाला, शाहजी को आदबखाने से बा–अदब रिहा करना! वाह, आदिलशाह की मर्दानगी!

जीजाबाई के कुंकुम का भाग्य बच गया। तब ज्येष्ठ मास की पूर्णमासी थी; इसी तिथि पर सावित्री ने साक्षात् यमराज पर विजय पाकर अपने पति सत्यवान की रक्षा की थी। कारागार में मृत्युदेवता से 'भेंट' अवश्य होगी, ऐसा सोचने वाले शाहजी राजा को सुल्तान की ओर से नये